आधुनिक कविता :
प्रकृति और परिवेश

आधुनिक कविता
प्रकृति और परिवेश
डॉ॰ हरिचरण शर्मा

इस यात्रा मे इन्तजार के पल
हर बार समझा जाते है:
जिन्दगी समझौता नहीं;
समर्पण की निरंतरता है।

हरि

पूर्वा

एक महल था जिसमे खिडकी-दरवाजे तो क्या रोशनदान तक नही थे, किन्तु उसकी दीवारो पर जड़े रत्नो की कान्ति फर्श पर चमकते पत्थरो से मिलकर जो वैभव बिखेरती थी उससे सारे कक्ष जगमगाते रहते थे। उसमे रहने वालो के पास अकल्पनीय सौन्दर्य था। फिर भी उन्ह जब कभी रोशनी की जरूरत होती तब वे अपने महल के उस निचले हिस्से मे चले जाते जहाँ हीरे–जवाहरात और अशर्फियो के खजाने थे और वहाँ से रोशनी भर लाते थे। उनकी जिन्दगी एक कहानी थी, पर वे थे कि उसे कविता की शक्ल म ढालना चाहते थे, भले ही ऐसा करने मे उन्हे अशर्फियाँ लुटानी पडती, कमसिनो की अदाओं का बाजार लगाना पडता। कमी कुछ थी नही, अत वे निरतर ऐसा किए जा रहे थे। एक दिन इस महल के नीचे बसी बस्ती में आग लग गई जो जोर पकडती हुई महल तक पहुँच गई। आग जलती रही, लपटें बढती गई और अचानक नजर उठाकर देखा तो लगा कि उस महल मे खिडकी-दरवाजे निकल आये हैं। महल वाले देखते रहे और उनके देखते-देखत ही कुछ लोग उसम आने-जाने लगे। ये लोग महलों की तारीफ भी करते और उन्ह गिराने की भी सोचते, पर सिर्फ सोचते। अपने सोच को कभी क्रिया का रूप देते भी थे तो अपनी नाकामयाबी पर अफसोस जाहिर करके रह जाते।

समय की सुइयाँ आगे बढी। महल खाली हुए और स्मृतियो के सग्रहालय बनकर रह गए। जब वे सग्रहालय बने तो उन्ही की बगल में आधुनिक नक्काशी से सजे हुए कुछ मकान बने और बनते चले गये। इस बार के बने मकानों मे खिडकियाँ, दरवाजे और रोशनदान सब थे। बाहर से हवा भी आती थी। इतना ही क्यो तरह-तरह के फूलो पर तैरती रगीन तितलियाँ, बदलते हुए बादलो के रग, बिजलियो का नर्तन, सन्ध्या का झुटपुटा, तारो जडी रातें, ओस मे नहायी हुई हवा, सुनहरे रगो का स्पर्श पाकर खिलते हुए कमल, गुलाब, सूरजमुखी, बेला और न जाने कितनी तरह के फूल, उषा की मुस्कान, चाँदनी का लहरिल सागर और पक्षियो के कलरव से गूँजते हुए कितने ही रगीन और मादक दृश्य इन मकानो से देखे जा सकते थे, किन्तु दोपहर नही देखी जा सकती थी क्योकि खिडकियाँ बन्द कर दी जाती थी ताकि सपनो की दुनियाँ मे सच्चाइयाँ प्रवेश न कर सकें। सपनो के रगमहल की तरह चमकते इन मकानो मे ये लोग अकेले भी नही रह सकते थे। अत इन्होने सहचरी के रूप मे नारी को गगाजल से नहलाकर, पराग से सँवार कर अपने मकानो के अहाते के कुसुम वन में बैठा रखा था और ताकीद कर दी थी कि वे सुबह शाम के वक्त भी

खिड़कियों से न झाँकें। क्या पता कोई दोपहर के सूरज की किरण छिपी रह गई हो और वह सोने से रूप का पिघला बार ताँबे में बदल दे।

वक्त कुछ और बदला। सच्चाइयाँ दोपहर का ही नहीं, सुबह-शाम भी घूमती नजर आने लगीं। अब इनसे बचना मुश्किल था। अचानक एक दिन वे सच्चाइयाँ चिकने मकानों में रहने वाले एक आदमी को दिख गईं। पहली बार उसके साथ एक सलवटें पड़ी और सौन्दर्य देखने-भर की अभ्यस्त पुतलियों में हलचल हुई और वह आदमी मकान से निकलकर मैदान की ओर भागा। उस बदहवास भागते देख कुछ लोग और मकानों से निकल भागे कुछ रास्ते में साथ हो लिए और भागते-भागते एक एक मैदान में जाकर रुके जहाँ की जमीन पथरीली थी। पर इससे क्या ? वहाँ तो पहले से ही कुछ लोगों की भीड़ जमा थी जो हाथों में कुदाल और फावड़ा लिए अपने पसीने के बल पर एक समतल और रहने लायक जगह बनाना चाहते थे। यह भीड़ बढ़ती गई, लपटों की आग फैलती गई और हर आदमी जीने का अधिकार पाने के लिए हर तरह का संघर्ष करने को तैयार हुआ। सारा माहौल समता, बन्धुत्व और मानवता की बड़ी-बड़ी बातों से गूँज उठा। इस गूँज में प्रचार अधिक रहा चिल्लाहट अधिक रही। फलतः पद्धति आकर्षणहीन होती गई और बड़ी अच्छी-अच्छी बात भी सही ढंग से न कही जाने के कारण अप्रभावी सिद्ध हुई।

खैर ! संघर्ष की जमीन तो तैयार हो ही गयी थी इसलिए इस बार वक्त कुछ अधिक तेजी से बदला। मकान मकान नहीं रहे घर हो गये। हरेक मन घर चाहने लगा और सोचने लगा कि आदमी छोटा हो या बड़ा रोटी, कपड़ा और घर तो सभी को चाहिए। इसी सोच की श्रृंखला में कुछ कड़ियाँ और आ मिलीं आदमी अपनी लघुता के प्रति आश्वस्त हुआ, अतीत को व्यतीत और भविष्य को अनिश्चित मानकर उसकी नजर वर्तमान और वर्तमान के भी उस क्षण पर जा टिकी जिसमें वह जीता है। जिजीविषा बढ़ी और उसी मात्रा में संघर्ष, प्रश्न और समस्याएँ बढ़ीं, किन्तु आदमी का हौसला पस्त नहीं हुआ। वह आस्था का सम्बल लिए बढ़ता रहा, बढ़ रहा है। सारी चुनौतियों को स्वीकार करता हुआ परिवेश का हिस्सा बनता हुआ और जिन्दगी की निर्मम-कोमल सभी वास्तविकताओं का साक्षात्कार करता हुआ भी अपने अस्तित्व के प्रति विद्रोही मन लिए किन्तु अपने लायक सही जगह और जीवन मूल्य तलाशता हुआ काफी आगे आ गया है। आज वह कितना भी छोटा क्यों न हो उसका अस्तित्व किसी चाँद से कम नहीं है। उसका व्यक्तित्व सतत जागरूक है।

इस आदमी उसके निरंतर परिवर्तित होते रहे परिवेश और उसके व्यक्तित्व को वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक राजनीतिज्ञ इतिहासकार, धर्मशास्त्री, दार्शनिक और कवि-कलाकारों ने हर बार पढ़ा है हर तरह अपने-अपने कोण से देखा-जाना है

अनुक्रम

1

- आधुनिक : आधुनिकता
- आधुनिकता एक विश्लेषण
- समसामयिकता
- आधुनिक काल : प्रारंभ और नामकरण
- काल-विभाजन के सूत्र

जब यह पहचान गहरी होने लगती है और मनुष्य अपने समय, जीवन और युग के प्रति सतर्कता व प्रबुद्धता बरतता है तब सही अर्थ मे वह आधुनिक होने लगता है। आधुनिक होने की इस स्थिति मे भावुकता कम होने लगती है और विवेक जाग्रत होने लगता है। परिणामस्वरूप जीवन-दृष्टि व्यावहारिक और यथार्थपरक होने लगती है। ऐसी स्थिति मे वैज्ञानिक और बौद्धिक चेतना को 'आधुनिक' का दूसरा महत्वपूर्ण तत्व स्वीकार किया जा सकता है।

जो आधुनिक है उसे नवीन से सदैव लगाव रहता है क्योंकि देशकाल के प्रति सचेतन लगाव और बौद्धिकता की प्रक्रिया मनुष्य को नित नये सन्दर्भों से जुडने के लिए प्रेरित और प्रोत्साहित करती रहती है। काफी दूरी तक आधुनिक और नये साथ-साथ चलते रहते हैं। जो है वह ठीक है या नही की भूमिका पर आधुनिक का निर्माण होता है। कोई भी आधुनिक परम्परा का विरोध नही करता है, किन्तु परम्परा को स्थिर तथ्य के रूप मे स्वीकार करके कोई भी आधुनिकता विकसित नही हो सकती है, यह बहुत बडा सच है। परम्परा को प्रवाह मानने के कारण आधुनिक दृष्टि निरन्तर परिवर्तन की अपेक्षा करती है। पुराने का त्याग, सशोधन, नवीनीकरण और पुन परीक्षण, नये की आकांक्षा, वैचित्र्य के प्रति आकर्षण और विवेकी दृष्टि आधुनिकता के अनिवार्य तत्व हैं। ऐसी स्थिति मे रूढियो के प्रति विद्रोह और प्रयोगशीलता के आयामो का विकास और स्वीकार आधुनिक के लिए अनिवार्य हो जाता है। आधुनिक का यह अर्थ समय से बँधा हुआ नही है। अत इस अर्थ के अनुसार आधुनिक एक ऐसी विशिष्ट धारणा का वाचक है जिस पर समय का अ कुश नही है। इस अर्थ को न तो वर्तमान से पूरी तरह सयुक्त और सम्बद्ध मान सकते हैं और न पूरी तरह विच्छिन्न और कटा हुआ ही। आधुनिक युग मे अपनी उपस्थिति बताता हुआ भी कोई आधुनिक न हो तो आश्चर्य नही होना चाहिए क्योंकि आधुनिक धारणा से सम्बन्धित है।

'आधुनिक' का एक अर्थ और है जिसे सकुचित अर्थ माना जा सकता है। इस अर्थ के अनुसार 'आधुनिक' वह है जो वर्तमान के बोध से सयुक्त और अतीत से एकदम विच्छिन्न है। इस भूमिका पर आधुनिक की धारणा मात्र वर्तमान सापेक्ष है और यथार्थ का तीव्र और सही ज्ञान ही इसका प्रमुख आधार है। विज्ञान का विकास आधुनिक जीवन; बल्कि कहें कि आज के जीवन, का उल्लेखनीय सत्य है। विज्ञान के विकास ने प्रादेशिक सीमाओं को तोड दिया है। देश और काल की बाधाओं का ज्ञान तिरोहित होने लगा है और शक्ति-सघर्ष की प्रक्रिया बडी तीव्रता से घटित हो रही है। बडे-बडे राष्ट्रो मे न जाने किस तरह सतुलन कायम है नही तो कभी भी किसी भी क्षण विनाश की विभीषिकाएँ हमे लील लेंगी। अन्तरिक्ष मे विजय पाने की होड लगी हुई है। "जैविक धरातल पर जीव विज्ञान की उद्भावनाओ के फलस्वरूप और चेतना या अन्तश्चेतना के क्षेत्र मे मनोविश्लेपण शास्त्र के शोध परिणामो के प्रभाव ो अन्तर्जीवन अर्थात् अनुभूत्यात्मक जीवन का स्वरूप ही बदल गया है चेतना-प्रवाह

1 आधुनिक काल : प्रारंभ, नामकरण और अन्तर्विभाजन

आधुनिक : आधुनिकता

'आधुनिक' शब्द अनेक अर्थों मे प्रचलित है। इसका पहला और सामान्य अर्थ समय सापेक्ष है। इसके अनुसार 'आधुनिक' एक विशेष कालावधि का सूचक और परिचायक है। इस समय सापेक्ष अर्थ का एक पहलू उस अर्थ से भी जुड़ा हुआ है जो वर्तमान का अवबोधक है। वर्तमान की धारणा के समय सापेक्ष होने के कारण आधुनिक का अर्थ भी प्रत्येक युग मे बदलता रहता है। जब यह प्रत्येक युग मे बदलता रहता है तो इसका सामान्य अर्थ यही हो सकता है कि वह अतीत या पुरातन से भिन्न नवीन का द्योतक है। अर्थ की इस भूमिका पर आधुनिक हमारे अपने वर्तमान से कट जाता है। यो तो प्रत्येक युग अपने समय का आधुनिक युग होता है, किन्तु जैसे ही कुछ नया घटित होता है, उसके साथ वह आधुनिक समाप्त होकर दूसरे नये को आधुनिक की सज्ञा प्राप्त हो जाती है। जो आज प्राचीन है या पुरातन की गध से गधित मान कर छोड़ दिया गया है, निश्चय ही वह भी अपने समय मे आधुनिक रहा होगा। आज जिसे हम आधुनिक काल कहते हैं, वह भी अपनी आधुनिकता के कई चरण पूरे कर चुका है। भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग जिस अर्थ मे आधुनिक थे, ठीक वही अर्थ छायावादी या छायावादोत्तर काव्य-प्रवृत्तियो पर लागू नही हो सकता। 18 वी शती की आधुनिकता 19वी शती मे और 19 वी शती की आधुनिकता 20 वी शती की आधुनिकता से भिन्न रही है।

'आधुनिक' का दूसरा अर्थ किसी विशिष्ट दृष्टिकोण का सूचक है। यह मध्ययुगीन वैचारिकता से भिन्न नये जीवन-मूल्यो का वाचक है। इसमे पहला अर्थ—ऐतिहासिक अर्थ, भी शामिल है। मेरी धारणा है कि आधुनिक के मूल मे ऐतिहासिक चेतना को विस्मृत नही किया जा सकता है। वैचारिक भूमिका पर 'आधुनिक' शब्द एक मिश्र धारणा का द्योतक है। इसके विकास और निर्माण मे अनेक तत्वो का मेल है। इनमे प्रमुख तत्व है देश और काल के प्रति सचेतन सम्बन्ध की स्थापना के लिए ललक। यो तो प्रत्येक काल का व्यक्ति अपने समय से जुड़ा रहता है, परन्तु जुड़ना किस तरह का है और किस स्तर पर है? यह ध्यातव्य है। एक स्थिति तो वह होती है जिसमे मनुष्य का समयबोध उसके जीवन में इस तरह घुन जाता है कि वह उसे अलग से न तो पहचानता है और न वैसी कोशिश करता है। दूसरी स्थिति वह है जिसमे मनुष्य अपने अस्तित्व के प्रति सतर्क रहकर अपनी पहचान लेकर आता है।

जब यह पहचान गहरी होने लगती है और मनुष्य अपने समय, जीवन और युग के प्रति सतर्कता व प्रबुद्धता बरतता है तब सही अर्थ में वह आधुनिक होने लगता है। आधुनिक होने की इस स्थिति में भावुकता कम होने लगती है और विवेक जाग्रत होने लगता है। परिणामस्वरूप जीवन-दृष्टि व्यावहारिक और यथार्थपरक होने लगती है। ऐसी स्थिति मे वैज्ञानिक और बौद्धिक चेतना को 'आधुनिक' का दूसरा महत्वपूर्ण तत्व स्वीकार किया जा सकता है।

जो आधुनिक है उसे नवीन से सदैव लगाव रहता है क्योंकि देशकाल के प्रति सचेतन लगाव और बौद्धिकता की प्रक्रिया मनुष्य को नित नये सन्दर्भों से जुडने के लिए प्रेरित और प्रोत्साहित करती रहती है। काफी दूरी तक आधुनिक और नये साथ-साथ चलते रहते हैं। जो है वह ठीक है या नही की भूमिका पर आधुनिक का निर्माण हाता है। कोई भी आधुनिक परम्परा का विरोध नहीं करता है, किन्तु परम्परा को स्थिर तथ्य के रूप मे स्वीकार करके कोई भी आधुनिकता विकसित नही हो सकती है, यह बहुत बडा सच है। परम्परा को प्रवाह मानने के कारण आधुनिक दृष्टि निरन्तर परिवर्तन की अपेक्षा करती है। पुराने का त्याग, सशोधन, नवीनीकरण और पुन परीक्षण, नये की आवाक्षा, वैचित्र्य के प्रति आकर्षण और विवेकी दृष्टि आधुनिकता के अनिवार्य तत्व हैं। ऐसी स्थिति मे रूढियो के प्रति विद्रोह और प्रयोगशीलता के आयामो का विकास और स्वीकार आधुनिक के लिए अनिवार्य हो जाता है। आधुनिक का यह अर्थ समय से बँधा हुआ नही है। अत इस अर्थ के अनुसार आधुनिक एक ऐसी विशिष्ट धारणा का वाचक है जिस पर समय का अंकुश नही है। इस अर्थ को न तो वर्तमान से पूरी तरह सयुक्त और सम्बद्ध मान सकते हैं और न पूरी तरह विच्छिन्न और कटा हुआ ही। आधुनिक युग मे अपनी उपस्थिति बताता हुआ भी कोई माधुनिक न हो तो आश्चर्य नही होना चाहिए क्योंकि आधुनिक धारणा से सम्बन्धित है।

'आधुनिक' का एक अर्थ और है जिसे सकुचित अर्थ माना जा सकता है। इस अर्थ के अनुसार 'आधुनिक' वह है जो वर्तमान के बोध से सयुक्त और यतीत से एकदम विच्छिन्न है। इस भूमिका पर आधुनिक की धारणा मात्र वर्तमान सापेक्ष है और यथार्थ का तीव्र और सही ज्ञान ही इसका प्रमुख आधार है। विज्ञान का विकास आधुनिक जीवन, बल्कि कहे कि आज के जीवन, का उल्लेखनीय सत्य है। विज्ञान के विकास ने प्रादेशिक सीमाओ को तोड दिया है। देश और काल की बाधाओ का ज्ञान तिरोहित होने लगा है और शक्ति-सघर्ष की प्रक्रिया बडी तीव्रता से घटित हो रही है। बडे-बडे राष्ट्रो म न जाने किस तरह सतुलन कायम है नहीं तो कभी भी किसी भी क्षण विनाश की विभीषिकाएँ हमे लील लेंगी। अन्तरिक्ष मे विजय पाने की होड लगी हुई है। "जैविक धरातल पर जीव विज्ञान की उद्भावनाओ के फलस्वरूप और चेतना या अन्तश्चेतना के क्षेत्र में मनोविश्लेषण शास्त्र के शोध परिणामो के प्रभाव

के नैरन्तर्य की सिद्धि के साथ-साथ भावनात्मक और वैचारिक प्रत्यय बिखरने लगे हैं।"[1] नतीजा सामने है—तर्कशास्त्रखण्डन की भूमिका पर आ गया है और राग-चेतना की स्वतन्त्रता निषेधात्मक स्वर से प्रश्न बन गई है। प्रचलित आदर्श टूट गये हैं और मूल्य ह्रासोन्मुख हो गये हैं। अत यह धारणा जोर पकड़ती जा रही है कि अतीत विलीन हो गया है, भावी अनिश्चित और अदृष्ट है। सत्य यदि कहीं है तो वह वर्तमान की सीमाओं मे ही विचर रहा है। उसका अनुभवन यदि हो सके तो वह महनीय उपलब्धि होगी। कारण अनुभव ही सच्चाई है जिसका सम्बन्ध न तो भूत से है और न भविष्य से। वह तो वर्तमान मे ही केन्द्रित है। इस धारणा के कारण क्षणवाद को एक नया रग देकर अपनाया जा रहा है। कीर्कगार्द ने आस्था के सहारे और सार्त्र ने अनास्था एव नास्तिकता के कारण क्षण-सपृक्त जीवन के सहारे अस्तित्ववादी दर्शन की स्थापना की है।

अस्तित्ववाद ने मानव-अस्तित्व को ही सत्य और प्रामाणिक माना है। यद्यपि यह सही है कि अपनी सहजता मे यह अस्तित्व-बोध एक सकट के बोध को जन्म दे रहा है। सकट का यही बोध हमारी चिन्ता को बढ़ा रहा है और अनुभूतियो को शुष्क बनाता हुआ जीवन की सरसता मे अनेक प्रश्नो और तज्जन्य विषमताओ के रग घोल रहा है। इससे जीवन जटिल, सकटग्रस्त, चिन्ता विजड़ित और भारवाही होता जा रहा है। सामाजिक भूमिका पर मनुष्य अपने को सदर्भच्युत, अजनबी, आत्मनिर्वासित, अलग और अकेला महसूस करने लगा है। उसके सम्बन्ध पुन परीक्षित हो रहे हैं और नाते-रिश्तो मे जीवन की नवागत अनुभूतियो की घुसपैठ के कारण सकीर्णता, अविश्वास, अनपहचान और अपरिचय का बोध गहराता जा रहा है। अस्वीकार की मुद्रा तेज हो रही है और मनुष्य की राग-चेतना के सूत्र न केवल टूट रहे हैं, अपितु कई-कई टूक होकर जहाँ-तहाँ बिखर गये हैं। इस स्थिति मे जो जीवन-दर्शन बन रहा है या बना है वह दो रूपो मे दिखाई दे रहा है: अस्तित्ववादी रूप मे और निराशाविजड़ित वैज्ञानिक मानववाद के रूप मे। ये दोनो रूप ही आधुनिकता के लक्षण बनकर स्वीकार किये जा रहे हैं। आधुनिकता की यही व्याख्या और स्थिति पश्चिमी जगत् के नये विचारको और उनसे प्रेरित भारतीय युवा मानस मे घर किये हुए है। 'आधुनिक' का यही अर्थ वर्तमान सदर्भ मे स्वीकार किया जा रहा है।

'आधुनिक' का यह निराशाविजड़ित अर्थ अपने मे सीमित व सकुचित है। यह ठीक है कि विज्ञान के प्रभाव, उसकी नवीनतम उपलब्धियो और अन्तर्जीवन मे अचेतन अवचेतन मन का उद्घाटन आदि ऐसी घटनायें हैं जिनसे निराशा और विनाश की स्थिति ही स्पष्ट हो सकती है। इतने पर भी इन स्थितियो का एक दूसरा शिव पक्ष भी है या हो सकता है। खतरे के निशान तक पहुँचे हुए विश्व मे विनाशलीला की आशका गलत नही है, किन्तु इससे सावधान होना तो ठीक है, किंकर्तव्यविमूढ होकर

1. डॉ० नगेन्द्र : आस्था के चरण पृष्ठ 218

सिर थाम कर बैठना कभी भी काम्य नहीं हो सकता है। हमारी धारणा है कि युग-बोध को आधुनिकता का तत्व तो माना जा सकता है, किन्तु निराशा और अवसाद की भीषण एवं भयावह कल्पना में डूबे रहकर मात्र उसे ही वर्तमान युग-बोध मानना अनुचित है, अकाम्य है। अवसाद की घनी काली परतों को चीरकर नवोदित रागारुण का स्वीकार और तत्प्रेरित आस्था की किरणों से अभिषेक अभी भी सम्भव दीखता है। अतः आधुनिकता को परिभाषित करते समय जीवन का निषेध कभी भी आधुनिकता नहीं बन सकता है। ऐसी स्थिति में डॉ० नगेन्द्र का यह मत उचित है "जीना वर्तमान में ही होता है, अतीत या अनागत में नहीं, लेकिन मनुष्य वर्तमान में अतीत के संस्कार और अनागत की कल्पना के साथ ही जीता है। अतः भूत से उच्छिन्न और भविष्य से पराङ्मुख आधुनिकता की धारणा वाग्विलास मात्र है। जिस प्रकार जीवन के लिए वर्तमान का भोग अनिवार्य है, उसी प्रकार साहित्य के लिए भी वर्तमान की अनुभूति आवश्यक है, किन्तु जिस प्रकार जीवन की स्थिति पूर्वापर क्रम से टूटकर संभव नहीं है उसी प्रकार कला की सर्जना भी अतीत के संस्कार और अनागत के स्वप्न के बिना संभव नहीं हो सकती है।"[1] वस्तुतः 'आधुनिक' की व्याख्या में व्यापक दृष्टि और गतिशील चिन्तना का विशेष महत्व है। युगबोध, परम्परा का आत्मसात् या नवीनीकरण, जीवन की विविधता और अपने परिवेश के सहारे विकास करने की आकांक्षा ही आधुनिकता के जीवन्त लक्षण हैं। ये ही जीवन के सही लक्षण भी है। जो जीवन के लक्षण नहीं हैं वे आधुनिकता के लक्षण क्यों और कैसे हो सकते हैं? निश्चय ही नहीं।

आधुनिकता: एक विश्लेषण

आधुनिकता की व्याख्या में कुछ विद्वान् तो पुरातन से बिल्कुल हटकर आधुनिकता की बात करते हैं तथा कहते हैं कि आधुनिकता अपने में अलग महत्त्व रखती है। उसकी पुरातन निरपेक्ष व्याख्या करना ही उसे सही रूप में समझना है। इसके विपरीत दूसरे वे लोग हैं जो आधुनिकता की व्याख्या अतीत की समकक्षता और सापेक्षता में ही करना उचित समझते हैं। वास्तविकता यह है कि नये जमाने के साथ चलने वाले कुछ फैशन परस्त और चौंकाने वाले आलोचक भले ही अतीत या पुरातन से सम्बन्ध विच्छिन्न करने में अपनी शान समझते हों, लेकिन कोई भी प्रबुद्ध चिन्तक इस बात को कभी अस्वीकार नहीं कर सकता कि अतीत से कटकर भी आधुनिकता जैसी कोई वस्तु हो सकती है। अतीत की सापेक्षता में आधुनिकता को देखने से उसकी मौलिकताएँ कभी मिट नहीं सकती हैं। अतः आधुनिकता का वास्तविक अर्थ विगत सांस्कृतिक मूल्यों को अपने [illegible] कर मानव की वर्तमान स्थिति और उसके भविष्य विषयक दायित्व की [illegible] को स्वीकार करना है। आज के संघर्षगामी जीवन में मनुष्य के [illegible] नये ढंग

1 डॉ० नगेन्द्र आस्था के चरण पृष्ठ 221

से अनुभव कर रही है। अनुभूति और सवेदना का यह नयापन आधुनिकता का ही एक अग है।

ऐसा कोई भी युग नहीं रहा जो अपने समय मे आधुनिक न कहलाया हो, किन्तु यह सही है कि अपनी आधुनिकता के प्रति इतना सचेत कोई भी दूसरा युग नही रहा जितना कि आज का युग। कारण स्पष्ट है। आज का युग जिस सकट से गुजर रहा है वह बहुत व्यापक है। धर्म, विज्ञान, भाषा, नैतिकता और दर्शन के क्षेत्र मे जो "सकट उपस्थित हुआ है वह बडा गम्भीर है। यही सकट मनुष्य और सवेदनशील कवि को आधुनिकता की ओर खीच रहा है। अत यह कहना उचित ही है कि सकट का बोध और आधुनिकता का बोध बहुधा अभिन्न रहते हैं। यही सकट का बोध हमे वर्तमान के प्रति जागरूक बनाता है।[1] सास्कृतिक विघटन और सामाजिक अराजकता की परिस्थितियो ने मानव मात्र को एक ऐसे मोड पर लाकर खडा कर दिया है जहाँ वह आधुनिकता के अतिरिक्त और कुछ सोच ही नही सकता है। यही कारण है कि आज का मानव आधुनिक के प्रति विशेष सचेत है।

आधुनिकता को अधिक व्याख्या के स्तर पर खडा करते समय यह तथ्य भी विस्मरणीय नही कि आधुनिकता का मूल्य ऐतिहासिक दृष्टिकोण के साथ ही है। पुरातन युग और ऐतिहासिक बोध को मानसिक स्तर पर भोगकर ही आधुनिकता को प्राप्त किया जा सकता है।[2] जो आधुनिकता ऐतिहासिक बोध के अभाव म अवतरित होती है वह सकीर्ण आधुनिकता है इस श्रेणी की आधुनिकता परम्परा से चिढती है तथा सतही अभिव्यक्ति की ओर उन्मुख रहती है। मानवीय सदर्भ मे यदि हम आधुनिकता को देखें तो स्पष्ट होगा कि वह प्रगति मे आस्था रखती है। अत आधुनिकता के लिए हमारी दृष्टि म मानव सापेक्षता तथा नैतिक और आचरणिक क्षेत्र मे परिवर्तित नवीन बिन्दुओ के प्रति सजगता आवश्यक है। इतना ही नही हमारी दृष्टि सपूर्ण युग-बोध और सपूर्ण परिवेश से सम्पृक्त रहकर ही नवीन मानव-मूल्यो को शक्ति सम्पन्न करती हुई आधुनिकता को प्राप्त कर सकती है। इसका अर्थ यह हुआ कि आधुनिकता ऐतिहासिक बोध के परिप्रेक्ष्य म प्रगति की ओर

---

1 डॉ० धर्मवीर भारती का लेख 'आधुनिक साहित्य बोध' पृ 7

2 To be 'Unhistorical' is the prometheansin and in this sense moedrn man lives in sin A higher level of conciousness is like a burden of guilt But, as I have said only the man who has out grown the stages of conciousness belonging to the past and has amply fulfilled the duties appointed for him by the world, can achieve a full consciousness of the present In Search of Soul P 228–229

K–C G Jung–Modern Man

उन्मुख रहती है तथा युग बोध को स्वीकार करती हुई मानव को अधिक दायित्वशील और सचेतन बनाती है।

मनुष्य को आधुनिक बोध की आवश्यकता क्यों है? जब हम इस पर विचार करते हैं तो प्रतीत होता है कि इस युग मे या कहें कि पिछले वर्षों में विज्ञान ने जहाँ मानव के जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन ला दिया है, वहाँ इससे भी अधिक जीवन-दृष्टि और भाव-भूमि मे परिवर्तन कर दिया है। मनुष्य के स्वभाव मे जो परिवर्तन आया है उसे देखकर कहा जा सकता है कि उसकी दृष्टि बदल गई है, वस्तुओं को निरखने-परखने का दृष्टिकोण बदल गया है और सबसे अधिक 'जीने का ढग' बदल गया है। अत इसमे कोई सन्देह नहीं कि विज्ञान जहाँ भौतिक परिवर्तन लेकर आया है, वहाँ वह अपनी भौतिकताओं से रूढ मान्यताओं मे क्रान्ति भी कर रहा है। परिणाम यह निकला है कि विज्ञान ने धर्मशास्त्रो में दी गई सृष्टि-कल्पना और मानव-जीवन-विषयक व्याख्याओ को प्रमाण, परीक्षण और तर्क के अभाव में स्वीकार करने से एकबारगी इन्कार कर दिया है। इतना ही नहीं, उसने परीक्षणो व तर्कों के आधार पर यह बताने का प्रयत्न किया है कि भौतिक जगत का नियन्ता कोई अलौकिक पुरुष नहीं है। नैतिक मान्यताएँ मनुष्य द्वारा निर्मित और प्रचारित हैं जिन्हें वह सुविधा और आवश्यकता के लिए समय समय पर गढता रहा है। अत आज यह आवश्यक नही कि हम इन्ही बने-बनाये मूल्यों को मानें अपितु चाहें तो अपने अनुकूल अर्थात् युग-बोध के अनुकूल इन्ह बना सकते हैं या बदल सकते हैं।

नि सन्देह विज्ञान की इस नवीन जीवन-दृष्टि ने विजय प्राप्त की और विश्वास के स्थान पर परीक्षण, श्रद्धा के स्थान पर तर्क और आस्था के स्थान पर विश्लेषण को महत्व दिया जाने लगा। सारे मूल्यों का अवमूल्यन होने लगा—एक विराट अराजकता, एक घातक अन्धकारमय शून्य। मूल्यो के इस विघटन ने कैन्सर की तरह मानवीयता को अन्दर से खोखला बनाना शुरू कर दिया। प्रकृति पर ज्यो-ज्यो विजय प्राप्त होती गई, मनुष्य त्यो त्यो अपने को हारता गया।[1] विज्ञान के इस बढ़ते हुए प्रभाव ने दर्शन को भी आक्रान्त कर लिया और जब इस सास्कृतिक वैषम्य की स्थिति को विज्ञान और दर्शन नही अनुभव कर पाये तो साहित्य ने इसे अनुभव किया। सम्पूर्ण विश्व-साहित्य में विरोध, वैषम्य और शून्यता का आभास देखा जा सकता है। विश्व साहित्य की बात इसलिए कहना उचित जान पडता है कि विश्व के विभिन्न देश प्रदेश इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीति और सस्कृति व साहित्य की दृष्टि से कभी भी इतने अन्तरावलंबित नही रहे जितने आज हैं। इसी कारण साहित्य भी विश्व स्तरीय-विकास की प्रक्रिया मे आगे बढ रहा है।

औद्योगिक पूँजीवाद के कारण भी एक विचित्र स्थिति उत्पन्न हो गई है। प्रेस, प्रकाशन और पुस्तक व्यवसाय ने साहित्य को भी लाभ-हानि और क्रय-विक्रय के तराजू म तोलना प्रारम्भ कर दिया है। परिणामत इस व्यावसायिक प्रक्रिया

1 डॉ० भारती आधुनिक साहित्य बोध, पृ० 13

मे साहित्यिक कृतियाँ भी उत्पादन और विनिमय के क्षेत्र मे उतर कर मूल्यो की सूची मे एक आर्थिक पहलू और जोड रही है। यह स्थिति अच्छी नहीं है। एक ओर अनपढ, विराट भीड का दबाव और उसके कारण लेखक के भावस्तर और अभिव्यजना शिल्प का सकट, दूसरी ओर औद्योगिक पूँजीवाद की चरम व्यावसायिक दृष्टि, जो हर साहित्यिक कृति को बिक्री की दृष्टि से ही जाँचन का आग्रह करती है और तीसरी ओर राज्य का यह दावा कि मानव-सत्य का ज्ञाता, मूल्यो का अन्वेषक और नीति का निर्णायक केवल मनुष्य है। इन विविध अवरोधो से आच्छन्न आधुनिक साहित्य म विघटन की सवेदना स्पष्ट ही और तीखी होती है।[1]

स्पष्ट है जब इन परिस्थितियो मे चारो ओर विघटन, वैपम्य और अराजकता हो तो साहित्य भटकाव, कडवाहट और विद्रोह के दौरान अपनी स्थिति कैसे सुरक्षित रख सकता है? यही कारण है कि सवेदनशील कवि आधुनिक युग की इस विषमता को देखता हुआ नवीन परिप्रेक्ष्य मे आधुनिक बोध को अपनाकर चल रहा है। दूसरे, इसके अतिरिक्त और कोई चारा भी तो नही। इस सदर्भ म अब यह भी कहा जा सकता है कि आधुनिकता कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो अतीत से एकदम कट कर सामने आई हो अथवा भारतीयता से अलग रह कर पाश्चात्य अनुकरण पर विकसित हुई हो। वह तो एक ऐसा बोध है जो वर्तमान जीवन की नवीन गतिविधियो के कारण जन्मा है और अपनी इस प्रक्रिया मे वह ऐतिहासिक बोध से अपना सम्बन्ध रखता है, चाहे यह सम्बन्ध सास्कारिक ही क्यो न हो। एक अँग्रेजी समीक्षक जी एस फ्रेजर की यह मान्यता ठीक ही है कि आधुनिकता को अपनी सुरक्षा के लिये अतीत से सम्बन्ध रखना चाहिये।[2] अतीत या पुरातन इतिहास जिस दिशा की ओर सकेत करता है उससे आगे बढने के लिये युगबोध की जानकारी आवश्यक है। कवि युग से अलग हट कर अपना काम नही चला सकता है और न अतीत से एकदम हटकर ही, क्योकि नये के लिए अतीत की जानकारी सदैव अपेक्षित होती है। इस जानकारी के बाद हम यह भी स्वीकार कर सकते है कि प्रत्येक पीढी कुछ अपनी समस्याएँ लेकर आती है, अपना परिवेश लेकर आती है। अत आधुनिकता और नये युग बोध का महत्व है क्योकि यह प्रगति और विकास का परिचायक तत्व है। सभी आधुनिकताएँ सापेक्षित होती है। आत्यन्तिक आधुनिकता नाम की कोई वस्तु नही

---

1 आधुनिक सा० बोध म डा० धर्मवीर भारती का लेख पृ० 15

2 'Paradoxically enough one of the main marks of 'Modernism' in Literature is often alively imaginative interest in the past for its own sake"

—The Modern Writers and its World by G S Fraser, Page, 12

को बधन मे बांधना है जो आधुनिकता का लक्षण नही है। ऐसी स्थिति मे इतिहास बडा हो सकता है, व्यवस्था बडी हो सकती है और यह भी हो सकता है कि ये सभी ऐसे व्यक्तित्व पर छा जावें, किन्तु व्यक्तित्व पूर्ण स्वतन्त्रता का मानक नही बन सकता है, फिर किसी भी आधुनिकता की बात करना ही बेमानी है।

आधुनिकता कोई सम्यता मात्र नही है, जो बाजार की सडको पर बदलते हुए कपडो के डिजायनो, पहनने के तौर-तरीको और सजावट के नये-नये ढगो मे ही सीमित हो या किसी रेस्तरा की खान-पान-पद्धति मे ही समाई हुई हो। वह तो एक दृष्टि है, अनुभूति है जो वर्तमान को सतर्कता से भोगने के लिए शक्ति और सामर्थ्य देती है तथा जीने की नई चेतना प्रदान करती है। आधुनिकता की समस्या पुरातनता की भी समस्या है। एक तो वह है जो बीत गया है या बीतने की तैयारी मे है और दूसरा वह है जो अभी प्रसव की पीडा का अनुभव करता हुआ जन्मने की तैयारी मे है। आधुनिकता बीतने की प्रक्रिया से गुजरते हुए के रहे-सहे अंश को भी भोगकर नये जन्म लेने वाले तत्त्वो को भी आत्मसात् करले तभी आधुनिकता है। सच है, जो पुराने को भोग चुके हैं वे ही नये को भोगने की बात कर सकते हैं। अतः आधुनिकता के लिए पुरातन का बोध सदैव अपेक्षित रहता है।

आधुनिकता रोमाटिक दृष्टि के साथ अपना ताल-मेल नही बिठा सकती है क्योकि रोमानी दृष्टि प्रत्येक वस्तु को रेशमी आवरण से देखने को बाध्य करती है। वह सही रूप मे देखने-दिखाने मे विश्वास नही करती है। आधुनिकता इसके विपरीत 'रियलिस्टिक एप्रोच' है जो तर्क-विवेक और 'फ्री मूड' से ही सभव है। यही कारण है कि आधुनिकता सेंटीमेन्ट्स को महत्त्व प्रदान नही करती है। सचमुच ही व्यक्ति-स्वातन्त्र्य और स्वाभिमान आधुनिकता के अनिवार्य उपादान हैं और ये दोनो ही सेंटीमेन्ट्स-विरोधी तत्त्व हैं।

कहने की आवश्यकता नही कि आज 'आधुनिकता' का अर्थ बाहरी रूपाकार तक ही सीमित कर दिया गया है। परिणामत उसकी गुणात्मकता उभर कर नही आ सकी है। इसीलिए हम बाहर से भले ही बदले हुए दिखाई देते हो, भीतर से बदलने का कोई सकेत पूरी की पूरी पीढी मे कम ही दिखाई देता है। यही कारण है कि आज भी हममे न तो निर्णय का भाव जग सका है और न आत्म-परीक्षण व आत्मनिश्चय का। फिर यथार्थ के प्रति सजग रहने की बात ही दूर पड जाती है। हाँ, कुछ विचारशील कवि और चेतन व्यक्ति ही सही मानियो मे आधुनिक हैं। ऐसा लगता है कि जैसे हम आधुनिकता की बात ज्यादा करते है, उसका लक्षण हम मे प्रायः नही है। यह ठीक ऐसे ही है जैसे हम नयी कविता, नयी कविता तो चिल्लाते है किन्तु उसका सही मर्म समझने के लिए पूर्वाग्रहो से मुक्ति पाना ही नही चाहते है, अपने बने-बनाये पैमाने से ही सब कुछ नापना चाहते हैं, भले ही इस माप मे पैमाना टूट जाये या ओछा पड जाये।

मैंने आधुनिकता के सन्दर्भ मे ऐतिहासिक बोध व परम्परा-बोध की बात उठाई है, उसका यह अर्थ नहीं कि मैं प्राचीन और नवीन को मिलाना चाहता हूँ, बल्कि इतना ही है कि बिना इतिहास या परम्परा का अनुभव किये हम नयी बात नहीं कह सकते हैं। किसी भी नयी स्थापना के लिए गुंजाइश तभी होगी जबकि हम पुराने को जो जबरदस्ती जी रहा है या जिसका मरना 'ओवरड्यू' है, जान लें, उसे पूरी तरह भोग लें। भोगने के अनतर उसे तोडना है। अत उसे नकारा नही जा सकता है, किन्तु यह और भी ठीक है कि हर नया सिद्धान्त पुराने की टूट-फूट से ही बना है और इस टूट फूट मे नये को हमेशा पुराने की जानकारी रही है। हाँ, यह बात अलग है कि प्रतिष्ठित हो जाने के बाद वह पुराने को भूल गया हो या विकास की प्रक्रिया मे अपनी उद्दाम इच्छा शक्तिसे आगे बढ गया हो। यही आधुनिकता की सबसे बडी माँग है।

समसामयिकता

समसामयिकता का प्रश्न भी आधुनिकता के साथ ही उठाया जाता है। आधुनिकता और समसामयिकता का बोध परस्पर एक दूसरे से प्रेरित होते हैं। समसामयिकता भी आधुनिक युग का ही बोध है। आज जीवन जिस तीव्रता से आगे की ओर बढ रहा है उसका अनुभव सामयिक बोध का ही एक पहलू है। इस तीव्र गतिशील जीवन मे मानव प्रत्येक छोटे से छोटे क्षण की अनुभूति को आत्मसात् करने का प्रयास करता है। वह उन क्षणों को सुरक्षित रखना चाहता है जो जीवन की गतिशीलता से जुडे हैं तथा जो हर क्षण हमे प्रभावित करते रहते हैं। समसामयिकता इसी क्षणानुभूति को ग्रहण करने मे सहायक सिद्ध होती है। वर्तमान के महत्व की अनुभूति समसामयिकता से ही सम्बन्धित है। प्रत्येक मानव किसी न किसी अ श मे 'वर्तमान' की अनुभूति करता है। जो वर्तमान से अलग रहते हैं उनकी दृष्टि भविष्यधर्मी होती है। यह स्वप्नद्रष्टा की सी स्थिति है और जो अतीत से ही अपने आपको जोडे रहते हैं वे समय से पीछे रहते हैं तथा उनकी दृष्टि न तो यथार्थ की गतिशीलता को पकड सकती है और न वर्तमान की जीवित अनुभूति को ही पकड पाती है। इससे समसामयिकता का महत्व स्पष्ट हो जाता है।

समसामयिकता आधुनिकता को बल प्रदान करती है। आधुनिकता के सदर्भ म हम जिस सवेदना की बात करते हैं वह किसी हद तक समसामयिकता मे भी दिखाई देती है, किन्तु इससे यह समझना भूल होगी कि समसामयिक और आधुनिक एक ही अर्थ व्यक्त करते हैं। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि हम समसामयिक होकर आधुनिक से अपना सम्बन्ध तोड सकते हैं, किन्तु आधुनिक होकर समसामयिक बने रहना शत प्रतिशत सभव नही है। प्रत्येक युग म आधुनिकता के उपकरण अलग-अलग रूपो म दिखाई देते हैं। अत जो पहले आधुनिक था, वह आज नही है और जो आज आधुनिकता के दौर से गुजर रहा है वह शायद

बल इस स्थिति मे न रह पायेगा। इस तरह इन दोनो म बराबर अन्तर बना रहता है।

समसामयिकता से हमारा तात्पर्य देश-काल के दायित्व के साथ-साथ उस क्षण की तीव्रानुभूति की पकड़ से है जो परिस्थिति से उत्पन्न है तथा जो सामयिक औचित्य की रक्षा करने मे सबसे अधिक अपनी भूमिका अदा करती है। समसामयिक आधुनिक दुनिया से ही सम्बन्ध रखता है तथा अपनी रचनाओ मे इसी बोध को व्यजित करता है।[1] अत समसामयिकता सघर्षों से सपृक्त होकर भी प्रमुखत उन शक्तियो और मूल्यो को स्वीकार करती चलती है जो एक दूसरे से सघर्ष कर रहे हान हैं। समसामयिकता के इस विवेचन के पश्चात् जो निष्कर्ष सामने आते हैं। वे इस प्रकार हैं—

1 जीवन मे प्रत्येक क्षण का महत्व है और प्रत्येक छोटे से छोटे क्षण को उसकी समग्रता मे अनुभूत करते चलना समसामयिकता का पहला सदर्भ है। कारण यह है कि अनुभूति का जो आधुनिक स्तर है वह जीवन की छोटी से छोटी अनुभूति और उसम निहित सत्य के प्रति जागरूक रहने की बात कहता है। अब वह समय नही जबकि क्षणानुभूति के प्रति ममत्व रखने वाला व्यक्ति किसी महान् गाथा मे तोष पाये क्योंकि जीवन की गतिशीलता म ठहराव नहीं, धैर्य नही।

2 वर्तमान जीवन का नैतिक दृष्टिकोण भी समसामयिकता के सदर्भ मे ही घटित होता है। समसामयिकता के आग्रह म वर्तमान के उन आयामो को मानवीय सवेदन और अनुभूति मिलती है, जो हो सकता है कि अपने परिवेश मे बडे ही छोटे हो, किन्तु जिनकी प्रेषणीयता समूचे जीवन को प्रभावित कर सकती है। समसामयिकता के प्रति जागरूक मानव-चेतना को उन पक्षो के साथ ही विकसित होने म पूर्णता और प्रौढता मिल सकती है।[2]

3 आज देश काल का रूप बदल रहा है, उसे पहचानना और उसके साथ चलना प्रत्येक समसामयिक कवि का पुनीत कर्तव्य है। कला या साहित्य का औचित्य इस बात मे है कि वह देश-काल के बदलते हुए रूप को अभिव्यक्ति दे। इसके लिए समसामयिकता को ग्रहण-करके चलना आवश्यक है। देश-काल का दायित्व मानवीय दायित्व को आकार देता चलता है। समसामयिकता मे ऐसी सच्चाई है जो एक विशिष्ट स्थिति की अनुभूति को अर्थ दे सकती है। अत हम वर्तमान में जीते हुए भी जिस स्थिति मे साँस लेते हैं उसके प्रति सतर्क एव सचेत रहकर जीना बहुत आवश्यक है। इसकी अभिव्यक्ति के निमित्त समसामयिकर्ता की पकड भी उतनी ही जरूरी है।

---

1 "The contemporary belongs to the modern world, represents in his work and accepts the historic forces moving through it, its values of science and progress" Stephen Spender · The struggle of the Modern P 77

2 लक्ष्मीकान्त वर्मा नयी कविता के प्रतिमान पृ० 275

4 यथार्थ की तीव्रता या गतिशीलता समसामयिकता के सदर्भ मे ही आकार पाती है। कल्पना लोक से उतर कर यथार्थ की ठोस भूमि पर कदम रखने से मानवीय सभावनाओ के किसी न किसी पक्ष को समसामयिकता के स्तर पर रखकर ही देखा जा सकता है। तात्पर्य यह है कि समसामयिकता ऐसा बोध है जो मानवीय सम्भावनाओ के प्रति स्पष्ट और सही दृष्टि को विकसित करता है।

5 आज जीवन जब इतना गतिशील है तो आवश्यक है कि हम इसे पहचानें और सक्रिय होकर तत्परता से अपनाते चलें। जीवन की गति की तीव्रता ही अधिकाधिक गतिशील तत्वो को लकर चलती है। अत जीवन की गतिशीलता को सुरक्षित रखने क लिए ही आत्माभिमान और आत्मबोध के अस्तित्व को उपेक्षित दृष्टि से नहीं देखा जा सकता है। इस बिन्दु पर पहुँचने क बाद यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि समसामयिकता मे ही आत्माभिमान और आत्मबोध का अस्तित्व आकार पाता है।

6 एतिहासिक बोध या विकासशील सभ्यता के तत्वो के अनुरूप अपने आपको नय रूप म ढालते चलना ही आधुनिकता है। सपूण समाज आधुनिक नही हो सकता है। कुछ सजग चेतना सम्पन्न और भविष्य द्रष्टा ही आधुनिकता की ओर अग्रसर होत हैं। इस दृष्टि से आधुनिकता वर्तमान के सदर्भ मे वह विकसित बोध है जो भविष्य की ओर उन्मुख होता है। आधुनिकता बडी तीव्रता से समसामयिक के प्रति सचेत रहती है, किन्तु वह उसके नव विकसित मूल्यो को स्वीकार नही करती है, जबकि समसामयिकता उन सभी शक्तियो और मूल्यो को स्वीकार करती चलती है जो एक दूसरे से सघर्ष करते हैं।

7 आधुनिकता एक युग विशेष का भाव है जबकि समसामयिकता वर्तमान से उत्पन्न स्थिति विशेष का आयाम है। इससे स्पष्ट है कि आधुनिकता का आयाम विस्तृत है और समसामयिकता की सीमा सकीर्ण और सकुचित। आधुनिक होते हुए भी आवश्यक नही कि हम विचारो म भी समसामयिक हो। आधुनिकता की विस्तृत परिधि म समसामयिकता की अपेक्षा नहीं होती है किन्तु आधुनिक भाव-बोध की बहुलता का परिचय समसामयिकता या तत्परतायुक्त गतिशीलता के अभाव म सभव नही है। कई बार कुछ मित्रो से बातचीत हुई और उन्होने बताया कि वर्तमान मे जीवित या समसामयिक सदर्भ मे उपस्थित व्यक्ति भी समसामयिक है क्योकि वह उस बिन्दु पर तो उपस्थित है ही। मैं समझता हूँ यह उनका भ्रम है। कारण यह है कि समसामयिकता या आधुनिकता कोई मात्र काल सापेक्ष तत्व नही है वह तो गुणात्मक बोध है। अनुभूति की तीव्रता का गहन क्षण है। अत जो केवल काल से समसामयिक है और विचारो म पुराना है उसकी स्थिति न तो आधुनिक की है और न समसामयिक की ही है। समसामयिक के लिए वर्तमान क्षण की तीव्रता की पकड आवश्यक है।

अत समसामयिकता मे एक ओर जीवन के प्रति क्रियाशील होने का भाव है तो दूसरी ओर अतीत और भविष्य दोनो से अलग हटकर युग-बोध की स्थिति

विशेष अथवा क्षण विशेष के प्रति ममत्व का भाव है। आधुनिकता मे हम ऐतिहासिक बोध को हृदयगम करते हुए अतीत और भविष्य के रूढ आग्रहो से अलग हटकर एक युग विशेष से सम्पृक्त दिखाई देते हैं तथा इस सपृक्त चेतना को आधार बनाकर ही वास्तविकता को देखते और समझते हैं। इस स्थिति का सम्बन्ध नयी कविता से गहरा दिखाई देता है।

आधुनिक काल का प्रारम्भ और नामकरण

किसी भी काल का सीमाकन और प्रारम्भ निर्धारित करना आसान नहीं है। कारण एक काल दूसरे से कब अलग हुआ, किस बिन्दु पर आकर पार्थक्य हुआ इसका निर्णय ठीक-ठीक वैज्ञानिक सत्य के रूप मे नही किया जा सकता है। परिवर्तन की प्रक्रिया जितनी अनिवार्य और अहम होती है उतनी ही धीमी और अलक्षित भी रहती है। काफी समय तक एक काल की प्रवृत्तियाँ दूसरे नवीन काल की प्रवृत्तियो के साथ-साथ समानातर गति से चलती रहती हैं। आधुनिक काल भी इसका अपवाद नही है। रीतिकाल एकदम अपनी प्रवृत्तियो के साथ कब अस्त हो गया ? और नवजागरण की चेतना कब उभर आई इसे ठीक-ठीक बता पाना एक दुष्कर कार्य है। आधुनिक काल की भाव चेतना का उन्मेष जिस धरातल पर हुआ वह एकदम न तो नवीन युग था और न पुरातन ही। हिन्दी साहित्य के इतिहास मे प्रत्येक काल खण्ड का प्रारभ इसी नियम की चोट सहता रहा है।

आधुनिक काल मे विकसित भाव सचेतना के बीज तो 19 वी शताब्दी के कुछ पूर्व ही देखे जा सकते हैं, किन्तु परिवर्तन और तत्प्रेरित परिप्रेक्ष्य का स्वरूप पूरी तरह 19 वी शताब्दी के उत्तरार्ध मे ही सामने आया। इस समय जो आधुनिक दृष्टि विकसित हुई उसके पुरोधा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ही बने। यही कारण है कि भारतेन्दु के अविर्भाव से ही आधुनिक काल का प्रारभ मान लिया गया। भारतेन्दु का जन्म वर्ष सन् 1850 है, किन्तु तब से ही आधुनिक काल का प्रारभ मानना उचित नही है। इसका प्रमुख कारण यह है कि इस समय की नवीनता और परिवर्तित स्थितियो की न तो कोई मूल्यवत्ता है और न अर्थवत्ता ही है। फिर यह समय वह समय नहीं जबकि दो विभिन्न प्रवृत्तियो मे से एक दूसरी से अपना पार्थक्य घोषित करती हो। कुछ मनीषी 1857 से आधुनिक काल का प्रारभ मानते है। इस मत के समर्थको का मत है कि नवीन सामाजिक, राजनीतिक चेतना के सवहन के कारण सन् 1857 को यह गौरव दिया जा सकता हैं।

भारतेन्दु ने 1868 से काव्य-सर्जना का श्रीगणेश किया था। यह वह वर्ष था जबकि समूचा समाज रूढियो, अ धविश्वासो और मृत परपराओ की शृ खला मे निरन्तर जकडा होने कारण मुक्ति और नवजागरण के लिए कसमसा रहा था। आचार्य शुक्ल ने रीतिकालीन कविता की अन्त्येष्टि सन् 1843 म की गई मान तो ली, किन्तु उसके तुरन्त बाद से लगभग बीस वर्षो तक नवजागरण का कोई स्वर

और स्वरूप न उभर पाया। ऐसी स्थिति और नवजागरण की भूमिका सन् 1870 के आस पास दिखाई देती है और तब से अब तक वह निरन्तर गतिमान रही है। उसन अनेक सोपानो और पडावो से गुजरते हुए व युगबोध को आत्मसात करते हुए नित नवीन स्थितियो को स्वीकार किया है। अत मेरी धारणा है कि आधुनिक काल का प्रारम्भ सन् 1868 या 70 से मानना ही समीचीन है। करीब बीस वर्षों के समय को (1843-1868) आधुनिक काल की पीठिका म रखना चाहिए। यही वह पीठिका है जिस पर आधुनिक युग की नीव का पहला पत्थर रखा गया। सन् 1857 म दो विरोधी शक्तियो सामतवादी और पूँजीवादी, के मध्य टकराहट हुई। जब सामन्तवाद की समग्र सभावनाएँ नि शेष हो गई तो प्रबुद्ध वर्ग के मानस मे हलचल प्रारम्भ हुई। परिणामत अग्रेज शासको के मन म भी भारत की आजादी व उसकी नवीनता का अर्थ समझ म आने लगा। स्थिति बदली तो मान्यताएँ भी परिवर्तित होती चली गई। यद्यपि यह तो ठीक है कि सन् 1800 ई० म ही फोर्ट विलियम कालज की स्थापना हो चुकी थी। 1817 म कलकत्ता बुक सोसाइटी का प्रदर्शन किया गया। इसके लगभग 6 वर्ष बाद 'आगरा कालेज' की स्थापना हुई। इसस हिन्दी ग्रथो के सकलन और सपादन की प्रक्रिया प्रारभ हुई। ऐसी स्थिति म स्पष्ट है कि आधुनिक काल का प्रारम्भ सन् 1868 से ही स्वीकार किया जा सकता है। हाँ सन् 1843 से 68 तक के समय को आधुनिक काल की पीठिका मान जा सकता है। इस समय (भारतेन्दु के लेखन से पूर्व) आधुनिकता का स्वरूप सिर्फ बनना प्रारम्भ हुआ था। वह सश्लिष्ट रूप धारण नही कर पाई थी। राष्ट्रीय भावना सामाजिक जागृति और एक प्रकार की स्वतत्र भावना का विकास भी उक्त सन् से ही माना जा सकता है। यही वह समय है जबकि पाश्चात्य जीवन और साहित्य का प्रभाव जीवन जगत और साहित्य मे प्रविष्ट होने लगा था। अत आधुनिककाल का प्रारम्भ सन् 1868से ही मानना सगत एव व्यावहारिक प्रतीत होता है। इस काल की प्रारभिक सीमा इस तथ्य को भी पुष्ट करती है कि जीवन निष्प्राणता एव जडता को छोडकर जीवन्त और नया होने लगा था। अत जहाँ तक इस काल के नामकरण का प्रश्न है वह अनक कारणो से सार्थक साभिप्राय और औचित्यपूर्ण प्रतीत होता है।

'आधुनिक' शब्द म कालसापेक्षता उतनी महत्वपूर्ण नही है जितनी कि उसकी भाव चेतना की गुणात्मकता। साथ ही आधुनिक जिस नवीनता का प्रतिबोधित करता है, वह रूढियो और जडता से मुक्ति की नवीनता है। मध्यकालीन बोध जिस अलौकिकता से आक्रात होने क कारण स्वतत्रचेता और जागरूक नही बन पाया था वही अब समय की शिला पर अपना विवेक लेकर आ खडा हुआ था। एक वाक्य म वह अपने पर्यावरण के प्रति सतर्क हो गया—उसका मन चाक चौबद और चौकस हो गया। इन सभी अनुभूतियो की अभिव्यजना आधुनिककाल के प्रारभिक चरणो म देखी जा सकती है। अत विवेच्यकाल के लिए यह नाम सार्थक एव साभिप्राय है।

अपनी पहचान कराता है। चौथा कारण यह है कि साहित्य का इतिहास साहित्यकारों का इतिहास न होकर सृजित साहित्य में विकसित प्रवृत्तियों का इतिहास होना है। अतः नामकरण प्रवृत्तियों के आधार पर ही किया जाना चाहिए। ऐसा करने से किसी काल विशेष की सम्वेदना को भी पकड़ा जा सकता है और उन स्थितियों और सन्दर्भों को भी समझा-समझाया जा सकता है जो उस काल-खण्ड की गौण प्रवृत्तियों से जुड़े रहते हैं।

आधुनिक कविता का यह अन्तर्विभाजन अध्ययन की सुविधा के आधार पर किया गया है। साथ ही मैंने यह अनुभव किया कि जो-जो तत्व और प्रवृत्तियाँ किसी दशक विशेष या काल विशेष में प्रमुख रही है, उन्हीं के आधार पर उस काल-खण्ड का नामांकन और मूल्यांकन किया जा सकता है। ऐसा करके लगभग सौ वर्षों की कविता के विकासात्मक इतिहास को समझा जा सकता है।

□

2

- ☐ परिवेश
- ☐ प्रवृत्ति विश्लेषण
    - राष्ट्रीयता
    - सामाजिक चेतना
    - भक्तिभावना और शृंगारिकता
    - प्राकृतिक सुषमा
    - प्रेम-भावना
    - हास्य-व्यंग्य
- ☐ अभिव्यंजना शैली
- ☐ समाकलन

. . स्थिति कुछ और बदली। सामाजिक चेतना प्रबुद्ध हुई, अनेक बाह्याचारों का खण्डन किया गया, धर्म और दर्शन के क्षितिज पर क्रान्ति और आन्दोलनों के रग उभरते गये। अंग्रेजों ने भारतीयता के समूल नाश का जो सामान जुटाया था, वह छिन्न-भिन्न होने लगा। देशवासी कमर कस कर ब्रिटिश शासन की जडें हिलाने के लिए सघर्ष और क्रान्ति की आग मे कूद पडे। इस जन चेतना का प्रत्यक्ष प्रभाव भारतेन्दुयुगीन कवियों पर पडा। स्वय भारतेन्दु इसके पुरोधा बने। उनके काव्य का धरातल भक्तिवादी और रीतिवादी प्रवृत्तियों से ही पूरित नहीं है, उसमे समकालीन परिवेश के बिम्ब भी जहाँ तहाँ अ कित हुए हैं और इन बिम्बो का रग जन जीवन से चुराया गया है।

2 पुनर्जागरण की कविता : भारतेन्दुयुगीन काव्य

परिवेश :

हिन्दी साहित्य के आधुनिककाल का प्रथम चरण जागरण की भावना से आन्दोलित था। 1707 ईसवी मे औरंगजेब की मृत्यु के बाद पतनोन्मुख मुगल शासन को जबरदस्त धक्का देकर अंग्रेजी राज्य स्थापित हो गया था। इस नव-स्थापित शासन का शिकंजा न केवल मजबूत था, अपितु क्रूर और कठोर भी था। यह वह समय था जिसे हिन्दी कविता में रीतिकाल की अभिधा प्राप्त है। परम्परा से प्रचलित आदर्श, प्रतिमान, धारणाएँ और जीवन-सूत्र जीवित तो थे, किन्तु अपनी विशिष्टिता और मौलिकता का रंग खो चुके थे। कोई भी ऐसी शक्ति, धारणा और विश्वासमयी सत्ता उभर नहीं पा रही थी जो तत्कालीन जीवन के प्रवाह का रुख मोड पाती। फलत जीवन और साहित्य यथावत चलते रहे और रीति का आग्रह प्रबल से प्रबलतर होता गया। 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक समस्त जीवन जड और निष्प्राण हो गया था। जनता और शासकों के मध्य जो खाई खुद गई थी, वह अब दुर्लंघ्य हो गई थी। सामाजिक इकाई लुप्त हो गई थी, किन्तु दुर्भाग्य कि जनता ने इसे दैवीय प्रकोप और प्रतारणा समझकर अपनी विवशता और परवशता को अपने जीवन का तत्व स्वीकार कर लिया था। परिणाम स्वरूप जीवन मे विकलता बढ गई और धीरे-धीरे वह रूढिबद्धता मे पर्यवसित होकर भारतीय जीवन का कवच बनती गई।

स्थिति और बदली। गौरांग शासको और उनके प्रतिनिधियो का जाल फैलता गया और उसने समस्त जीवन का आच्छादित कर लिया। मुगलो और मराठो की बची-खुची शक्ति भी अंग्रेजो के दमन-चक्र का मुकाबला न कर पाई। सामन्तवर्ग झुकता चला गया, राजा अपने मुकुट उतारते गये। ऐसी हालत मे देश अपनी सत्ता तो खो ही बैठा, उसकी सास्कृतिक विरासत भी छिन्न-भिन्न होती चली गयी। भारत-वासी अपने ही घर म बेघर और आत्मपीडित व निर्वासित अनुभव करने लगे। अचानक एक भाव कौंधा—व्यापक बधुत्व और मुक्ति का। परिणाम स्वरूप सन् 1857 म विद्रोह की आग भडक उठी। स्वतन्त्रता सग्राम की यह पहली लडाई एक प्रमुख घटना बनी जो लगभग 1 वर्ष तक चलती रही। किन्तु कब तक चलती ? अंग्रेजी सेना के दमनचक्र और भारतीय राजा-महाराजाओ के विश्वासघात ने मिल-कर आजादी के इस यज्ञ को असफल बना दिया। भारतीय इतिहास मे इतनी बडी घटना हो तो गई, किन्तु आश्चर्य होता है कि भारतेन्दु युग के कवियो की वाणी से इस सम्बन्ध में एक भी बोल नही फूटा।

स्थिति कुछ और बदली। सामाजिक चेतना प्रबुद्ध हुई। विक्टोरिया का शासन काल आया। अंग्रेजी सभ्यता, भाषा और साहित्य के प्रचार-प्रसार को बढावा मिला। भारतीय समाज अंग्रेजों के रग मे रगने लगा। ठीक इसी समय कतिपय प्रबुद्ध मनीषियो की सुप्त आत्मा ने अंगड़ाई ली, अग्नि की लपटो मे अपने सतीत्व और यौवन को झोंकने की प्रथा का विरोध हुआ। राजाराम मोहनराय ने सती प्रथा के लोमहर्षक दृश्यो से क्षुब्ध होकर उसे अवैध करार देते हुए जागरण का मत्र फूंका। इसी क्रम मे अनेक बाह्याचारो का खण्डन किया गया। धर्म और दर्शन के क्षितिज पर क्रान्ति और आन्दोलनो के रग उभरते गये। अंग्रेजों ने भारतीयता के समूल नाश का जो सामान जुटाया था वह छिन्न भिन्न होने लगा। देशवासी कमर कस कर ब्रिटिश शासन की जडें हिलाने के लिए सघर्ष और क्रान्ति की आग मे कूद पडे। प्रकाशचन्द गुप्त ने ठीक ही लिखा है "आधुनिक युग का आरम्भ उत्पादन, यातायात और वितरण के नये साधनो के साथ हुआ। अंग्रेजो ने एक ओर तो देशी उद्योग-धधो का समूल नाश किया, दूसरी ओर विदेशी पूंजी से नये उद्योग धधे भी शुरू किये। रेल, तार, डाक आदि का आरम्भ उन्होने अपनी राजनैतिक और आर्थिक सत्ता कायम करने के लिए किया। वे एक नयी सभ्यता-सस्कृति के दूत बन गये, किन्तु उनका चक्र सुदर्शन चक्र की भाँति उलटकर उन्ही के मर्मस्थल पर लगा।" अंग्रेजों के कुचक्र को तोडने मे सभी भारतीय प्राण पण से जुट गये। अनेक भारतीय सस्थाओ ने भी जागरण के इस सघर्ष मे अपने अपने ढग से भूमिका निभाई। 'इन्डियन एसोसियेशन', 'इन्डियन नेशनल कांग्रेस', 'ब्राह्म समाज', 'आर्य समाज', 'प्रार्थना समाज', 'थियोसोफीकल सोसाइटी' और 'रामकृष्ण मिशन' व 'सनातन धर्म सभा' आदि सस्थाओ के माध्यम से भी जन जीवन म व्याप्त जडता को समूल नष्ट करने का कार्यक्रम तैयार किया गया। इन सभी के प्रयत्नो से नवीन बोध विकसित हुआ।

सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के प्रयत्नो से चलाई गई **इन्डियन ऐसोसिएशन'** नामक सस्था ने भारतवासियो म राष्ट्रीयता की भावना का मत्र फूंका। अनेक देश व्यापी आन्दोलन चलाये गये। **'इन्डियन नेशनल कांग्रेस'** की स्थापना हुई तो सही किन्तु प्रारम्भिक रूप मे यह सफल न हो सकी। बाद मे बालगगाधर तिलक के प्रभावी व्यक्तित्व की छाया मे इसने पर्याप्त कार्य किया। राष्ट्रीयता और स्वातन्त्र्य बोध का प्रसार इसी सस्था ने किया और आगे चलकर इसी सस्था ने गाधी जी के नेतृत्व मे आजादी की सौम्य मूर्ति के दर्शन कराये।

'ब्रह्म-समाज' एक धार्मिक सस्था थी जिसकी नीव राजाराम मोहनराय ने डाली थी। यह एक क्रातिकारी सस्था थी। इसने धार्मिक अ धता, सामाजिककुरीतियो और आडम्बर पूर्ण बाह्य आचरणो को दूर करने का कार्य किया। कन्या-जन्म पर शोक मनाने, उसकी हत्या कर देने, विधवा विवाह निषेध, सती प्रथा और बलि-प्रथा जैसी विविध कुरीतियो का खुला विरोध किया गया। **'आर्य समाज'** के प्रवर्तक दयानद

सरस्वती भी धर्म और समाज के नाम पर चलने वाले पाखड और अधविश्वासो के दुश्मन व कट्टर विरोधी थे। उन्होने शुद्धता और पवित्रतावादी आन्दोलन चलाया तथा पश्चिमीकरण का खुलकर विरोध किया। परिणाम स्वरूप स्वजाति अभिमान और राष्ट्रीय चेतना की लहरें, जनमानस मे हिल्लोलित व तरगित हो उठी। नारी-शिक्षा की भूमिका तैयार की गई। 'रामकृष्ण मिशन' की स्थापना प्रसिद्ध सत और वेदान्ती रामकृष्ण परमहस ने की और बाद मे इसी सस्था को विवेकानद का सहयोग भी प्राप्त हुआ। इन मनीषियो के प्रयत्नो से जनमानस की जडता दूर हुई और राष्ट्रीय आन्दोलन को गति प्राप्त हुई। विवेकानद ने वेदान्त के आध्यात्मिक ज्ञान को पश्चिम मे फैलाकर यह प्रमाणित कर दिया कि भारत अस्तित्वहीन व पराधीन भले ही हो, किन्तु उसकी आध्यात्मिक क्षमता अनुपम है–सर्वोपरि है। इसके साथ ही विवेकानद ने प्रजातत्र, आदर्श, समानता, बधुत्व और विज्ञान के पाश्चात्य प्रदेय को ग्रहण करने पर विशेष बल दिया।

महाराष्ट्र मे 'महादेव गोविन्द रानाडे' ने धार्मिक एकता और सामाजिक जागृति के लिए जो अनेक सस्थायें प्रवर्तित की उनमे 'प्रार्थना समाज' का महत्व सर्वोपरि है। अन्तर्राष्ट्रीय महत्व की इस सस्था ने धार्मिक सकीर्णताओ को दूर किया, सामाजिक सुधार किया और जन मानस मे भारतीय सस्कृति और राष्ट्रीयता का प्रचार-प्रसार और प्रवर्धन किया। 'थियोसोफीकलसोसाइटी' के सहारे भी भारतीय सभ्यता एव सस्कृति के प्राचीन स्रोतो और दर्शनो के प्रसार और ग्रहण का कार्य किया गया। सामाजिक चेतना, जातीय स्वाभिमान और राष्ट्रीयता के विकास मे 'थियोसोफीकल सोसाइटी' का योग अविस्मरणीय है। कहने का तात्पर्य यह है कि इन सभी सस्थाओं और अनेक मनीषियो व चिन्तको के सगठित प्रयास से स्वतत्रता, रूढियो के पाश से मुक्ति, साहसिकता और नवीन उपलब्धियो के निमित्त सुदृढ आधार तैयार हो गया। परिणाम स्वरुप सामाजिक परिप्रेक्ष्य बदला। नारी चेतन हुई। बाल विवाह सती-प्रथा और वृद्ध विवाहो का विरोध हुआ और नारी के अस्तित्व की पहचान का वातावरण बना। निश्चय ही यह प्रगति का प्रथम द्वार था जो जनजागरण के आँगन मे खुलता था।

इस पुनर्जागरण की जन चेतना का प्रत्यक्ष प्रभाव भारतेन्दु युगीन कवियो पर पडा। स्वय भारतेन्दु इसके पुरोधा बने। उनके काव्य का धरातल भक्तिकालीन और रीतियुगीन प्रवृत्तियो से ही पूरित नही है, उसमे समकालीन परिवेश के बिम्ब भी अकित हुए हैं। इन बिम्बो का रग जनजीवन से चुराया गया है तो उनकी पृष्ठभूमि मे रीति और भक्ति के जो भाव हैं, वे भी इनमें स्वेद-कण बनकर यत्र-तत्र काव्य चेतना को आर्द्र किये हुए हैं। अत उपर्युक्त परिवेश मे विकसित और सृजित काव्य पुरातन और नवीन के सधिस्थल पर खडा है। यह वह काव्य-क्षितिज है जो दूर से देखने पर मिला हुआ और पास जाने पर अपना पार्थक्य

स्पष्ट कर देता है। राष्ट्रीय और नवजागरण की चेतना से उत्प्रेरित इस काव्य धारा की प्रमुख प्रवृत्तियों को अग्र संकेतित सूत्रों से समझा जा सकता है।

प्रवृत्ति विश्लेषण

पुनर्जागरण काल की कविता का काव्य फलक अत्यन्त विस्तृत है। इसकी काव्य-प्रवृत्तियाँ और तत्सम्बन्धित कथ्य भक्तिकाल और रीतिकाल की गंगा जमुनी तरंगों से भी तरंगित हैं और अपने परिवेश में प्रवाहित जन-चेतना की सरिता के जल से भी आर्द्र है। यही कारण है कि आलोच्य कविता की प्रमुख प्रवृत्तियों में राष्ट्रीयता, सामाजिक चेतना, भक्तिभावना, शृंगारिकता, प्रकृति जगत की सौन्दर्य राशि, प्रेम-भावना, हास्य-व्यंग्य और अभिव्यंजन की नवीन शैली को लिया जा सकता है।

राष्ट्रीयता—शृंगार की सरिता में निमज्जित रीतियुगीन काव्य में राष्ट्रीय प्रेम और पौरुष का अलख जगाने वाले भूषण का काव्य क्षेत्रीय भावना से आगे नहीं जा पाया था। भारतेन्दु युगीन कवियों ने भारतीय अतीत के गौरव को तो शब्दबद्ध किया ही है, वे क्षेत्रीय सीमाओं का अतिक्रमण करके समूचे राष्ट्र की धमनियों में प्रवाहित रक्त में राष्ट्रीयता का रंग घोलने में भी समर्थ हुए है। यही कारण है कि 'हमारो उत्तम भारत देश' के गायक 'राधाचरण गोस्वामी' और 'धन्य भूमि भारत सब रतननि की उपजावनि' के निवेदक 'प्रेमघन' का स्वदेशानुराग राष्ट्रीयता की भावना का ही पोषक है। इस काल के कवियों ने भारत के उत्कर्ष अपकर्ष के लिए जिम्मेदार परिस्थितियों पर प्रकाश डालते हुए जन-जीवन में राष्ट्रीयता का बीज बोया है। ब्रिटिश शासनाधिकारियों के भय से उनकी वंदना करने वाले कवियों की आत्मा से जब अज्ञान का आवरण हटा तो वे राष्ट्रीयता की ओर उन्मुख हुए। उनके हृदयों में नव चेतना का संचार हुआ तथा उन्होंने अपने ज्ञान के आधार पर पहली बार अनुभव किया कि हम पिस रहे हैं। इसी संदर्भ में उन्होंने भारत के अतीत की ओर भी दृष्टि डाली तथा "हा कवहूँ वह दिन फिर ह्वै है, वह समृद्धि वह शोभा" जैसी पंक्तियाँ लिखी। इस कविता में कहीं-कहीं देश-भक्ति के संदर्भ में ही अपने राजनैतिक अधिकारों की माँग है तो कहीं धनाभाव से जर्जरित भारत की कारुणिक झाँकी है तो कहीं मातृभूमि की प्रशस्तियाँ भी लिखी गई हैं। स्पष्ट ही भारतेन्दु युग की राष्ट्रीयता दो बिन्दुओं पर खड़ी दिखाई देती है। एक तो विदेशी शासन को समूल उखाड़ फेंकने के लिए उसकी आर्थिक, धार्मिक और राजनैतिक नीतियों पर प्रहार करती है और दूसरे देश को नवजागरण का संदेश देकर कुम्भकर्णी निद्रा से जगाने का मंत्र फूँकती है।

स्वयं भारतेन्दु ने तत्कालीन समाज से बड़ी जोरदार अपील की है और सामाजिक रूढ़ियों को तोड़कर समयानुकूल सुधार का आह्वान किया है। निश्चय ही देशभक्ति का जो भाव मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत भारती' में लक्षित हुआ है, उसकी

भूमिका भारतेन्दु प्रेमघन, प्रतापनारायण मिश्र, राधाकृष्णदास की कविताओं से ही निर्मित हो गई थी। भारतेन्दु की 'विजयिनी विजय वैजयन्ती', प्रेमघन की 'आनद अरुणोदय', प्रतापनारायण मिश्र की 'महापर्व', नया सम्वत् और राधाकृष्णदास की 'भारत बारहमासा' व 'विनय' शीर्षक से रचित कविताएँ देशभक्ति व राष्ट्रीयता के रगो से रजित है। हा, यह राष्ट्रीयता कभी व्यग्यात्मक शैली मे और कभी अतीत के प्रेरक प्रसगो के पुनराख्यान के रूप म अभिव्यक्त हुई है। भारतेन्दु की ये पक्तियाँ देखिये जिनमे अँग्रेज शासको की दमन-नीतियो का प्रत्यक्ष अकन करते हुए नवजागरण और राष्ट्रीयता का उल्लेख किया गया है

> भीतर भीतर सब रस चूसै, हँसि-हँसि के तन मन धन मूसै।
> जाहिर बातन में अति तेज, क्यो सखि सज्जन नहीं अँगरेज ॥

इन कवियो की कविता मे एक ओर तो देश प्रेम और राष्ट्रीयता का सगीत है तो दूसरी ओर राजभक्ति का प्रशस्तिसूचक बिगुल भी है। 'प्रेमघन' ने 'राजभक्ति भारत सरिस और ठौर कहुँ नाहिं'' कहकर विदेशी शासको की प्रत्यक्ष स्तुति की है। भारतेन्दु की 'भारतभिक्षा', 'विजय वल्लरी' और 'रिपनाष्टक' जैसी कविताएँ भी इसी श्रेणी मे आती हैं। इतने पर भी यह राजभक्ति राष्ट्रद्रोह का कारण नही प्रतीत होती है। इन्हे तो राजनैतिक चेतना की सवाहक कविताएँ मानना चाहिए। यह ठीक है कि इन कवियो ने जनजागरण की केवल पहली सीढी पर ही कदम बढाये हैं—जागरण का सदेश ही दिया है, कमर कस कर साम्राज्यवाद को समूल उखाडने की सही ट्रेनिग नहीं दी है, इतने पर भी यह तो माना ही जा सकता है कि राष्ट्रीय भावना के विकास के लिए पृष्ठभूमि तैयार करने का काम इन कवियों द्वारा ही किया गया।

सामाजिक चेतना—पुनर्जागरण के इस युग मे सामाजिक जीवन जो रीतिकाल मे उपेक्षित उपल बन गया था, वही अपनी समस्याओ के साथ पहली बार काव्य क्षितिज पर अवतरित हुआ। भारतेन्दु युगीन कविता अपने समय की और उस काल के जीवन की झाँकी प्रस्तुत करती है। उस समय आर्थिक और राजनैतिक पराभव से जनता जो कष्टमय जीवन बिता रही थी उसका मार्मिक, किन्तु यथार्थ चित्रण 'बालमुकुन्द गुप्त' और प्रेमघन की कविताओ म मिलता है

1. मन ही गयो बिलाय कछु अब रह्यो न बाकी।
   उदय हेतु हम बेच चुके माँ चूल्हे चाकी ॥

   [देवी स्तुति पृष्ठ 22]

2. हम करें नौकरी बहुत तलब कम पाते।
   ये किसी तरह से अब तक पेट जिलाते ॥
   इस मँहगी से नित एकादशी मनाते।
   लड़के वाले सब घर में हैं चिल्लाते ॥

भारतेन्दु युग मे बाह्याडम्बरो, बाल विवाह और विधवा-विवाह का विरोध किया गया। इतना ही क्यो नारी शिक्षा विधवाओ की दुर्दशा और अस्पृश्यता को लेकर अनेक सहानुभूतिमूलक कविताएँ भी लिखी गई। 'बहुत हमने फैलाये धर्म बढाया छुआछूत का कर्म' कहकर भारतेन्दु ने वर्णाश्रम धर्म का विरोध किया तो प्रतापनारायण मिश्र की दृष्टि बाल-विधवाओ की करुण और दीन-हीन दशा की ओर गई और उनकी वाणी से ये शब्द फूट पडे "कौन करेजो नहि कसकत सुनि बिपति बाल विधवन की।" स्पष्ट ही इन कवियो की सामाजिक चेतना का एक पक्ष सुधारवादी था और दूसरा यथार्थवादी।

आर्थिक पराभव का चित्रण भी इस काल खण्ड के कवियो ने ईमानदारी से किया है। भारतीय अर्थ व्यवस्था के विशृखलित और कमजोर पक्ष को सुदृढ आधार प्रदान करने के लिए इस काल खण्ड के कवियो ने स्वदेशी उद्योगो और स्वदेशी वस्तुओ के प्रयोग पर आग्रहपूर्वक बल दिया है। 'भारतेन्दु' की 'प्रबोधिनी' कविता मे विदेशी वस्तुओ के बहिष्कार का स्वर है तो प्रतापनारायण मिश्र की 'होली' कविता के सहारे भारतीय समाज की करुण वेदना का अकन मार्मिक शब्दावली म किया गया है। इतना ही नहीं भारतेन्दु ने तो पाश्चात्य सभ्यता के सपर्क में देश के सास्कृतिक उत्थान की अनिवार्यता अनुभव करते हुए ब्रिटिश शासन द्वारा किये जा रहे आर्थिक शोषण का सकेत यह कहकर किया है "अँगरेज राज सुख साज सजे सब भारी। पै धन बिदेस चलि जात यहै अति ख्वारी"। इतना ही नहीं समकालीन समाज की पीडा और आँसुओ से गीली तसवीर इन पक्तियो मे व्यक्त हुई है

> 'तबहि लख्यौ जहँ रह्यौ एक दिन कचन बरसत।
> तहँ चौथाई जन रूखी रोटिहुँ को तरसत॥
> जहँ आमन की गुठली अरु बिरछन की छालें।
> ज्वार चून महँ मेलि लोग परिवारहि पालैं"॥

भक्ति-भावना और शृंगारिकता :

भारतेन्दु युग की कविताओ मे जहाँ नवजागरण और समसामयिक जीवन का स्वर है, वही उसमे भक्तिकालीन भक्ति व रीतियुगीन शृगार का गगा-जमुनी मेल भी देखा जा सकता है। धर्म और भक्ति की भावनाओ की अभिव्यजना म य कवि पूरी तरह पारपरिक रहे हैं। इन कवियो की भक्ति के तीन रूप हैं—वैष्णव भक्ति, निर्गुण भक्ति और स्वदेशानुराग प्रेरित ईश्वर भक्ति। हाँ, उल्लेखनीय तथ्य यह है कि निर्गुण भक्ति और वैष्णव भक्ति का पारपरिक स्वरूप ही यहाँ है। भक्ति और देश प्रेम को एक ही बिन्दु पर लाकर अभिव्यक्त करने की शैली निश्चय ही मौलिक व नवीन कही जायेगी। निर्गुण भक्ति मे परपरा का अनुपालन करते हुए इनमे से कुछ कवियो ने विषयासक्ति की निन्दा, ससार की नश्वरता और मायामोह की व्यर्थता प्रतिपादित की है। वैष्णव भक्ति मे राम और कृष्ण की भक्ति के साथ साथ कतिपय

देवी-देवताओं का भी स्तवन किया गया है। यों राम-भक्ति की अपेक्षा कृष्ण-भक्ति परक रचनायें अधिक लिखी गयी हैं। भारतेन्दु की कृष्ण-भक्ति प्रसिद्ध ही है। उन्होंने स्पष्ट स्वीकार किया है "मेरे तो साधन एक ही है, जगनदलला वृषभानु दुलारी"। इन्होंने सख्य और विनय भाव की भक्ति को स्वीकार किया है। इनके काव्य मे मध्यकालीन कृष्ण भक्ति काव्य की तन्मयता और सरसता से ससिक्त माधुर्य-भक्ति का ही प्राधान्य है। यों कही कही साम्प्रदायिक भावना का भी समावेश मिलता हैं, किन्तु आपवादिक रूप से। सामान्यत अन्य धर्मों के प्रति उनका दृष्टिकोण उदार ही रहा है

भारतेन्दु के अतिरिक्त 'प्रेमघन' की 'अलौकिक लीला' 'अम्बिकादत्तव्यास' की 'कंस बध' राधाकृष्ण दास की विनयप्रेरित 'कृष्ण स्तुति' और घनाराम दूबे की 'कृष्ण रामायण' इस काल की प्रमुख कृष्ण-भक्ति- परक रचनाएँ हैं। रामभक्तिमूलक रचनाओ मे बिहार के 'हरिनाथ पाठक की ललित रामायण' अक्षयकुमार की 'रसिक विलास रामायण' और बाबू तोताराम की 'राम-रामायण' रचनाएँ प्रसिद्ध है। कही-कही इस काल की भक्ति भावना उर्दू-शैली मे भी अभिव्यजित हुई है।

रसो मे शृगार को इस कविता धारा मे देखा जा सकता है। प्रतापनारायण मिश्र इस क्षेत्र मे अपवाद है। भारतेन्दु प्रेमघन और राधाकृष्ण दास की शृगार-परक रचनाओ पर रीतिकालीन नायक-नायिका भेद, नख शिख वर्णन, षटऋतु वर्णन और भक्तिकालीन माधुर्य भावना व उर्दू कविता की वेदना का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। भारतेन्दु ने प्रेमसरोवर प्रेममाधुरी, प्रेम तरग प्रेम फुलवारी आदि मे भक्ति और शृगार का वर्णन किया है। इसी शृखला मे 'प्रेमघन' की 'युगल मगल स्तोत्र' और 'वर्षा बिन्दु' और 'बेनीद्विज व 'जगमोहन सिह की शृगार सिक्त रचनायें भी अत्यन्त सरस, तन्मयकारी और निश्छल व्यजनाओ से भरपूर है। भारतेन्दु के प्रेम भावयुक्त और शृगार सिक्त इस सवैये, को देखिये जिसमे घनानद की सी सरसता और मनुहार दिखाई देती है

आजु लौं न मिले तो कहा हम तो तुमरे सब भाँति कहावें।
मेरो उराहनो है कछु नाहिं सबै फल आपुने भाग को पावें।।
जो हरिचन्द भई सो भई अब प्रान, चले चहैं तासों सुनावें।
प्यारे जू है जग की यह रीति बिदा को समें सब कठ लगावें।।

इसी प्रकार प्रेम की निश्छलता, सरसता और रागात्मकता की दृष्टि से जगमोहनसिंह द्वारा रचित यह सवैया भी देखिये

अब यों उर आवत है सजनी, मिलि जाउँ गरे लगि कै छतियाँ।
मन की करि भाँति अनेकन औ मिलि कीजियरी रस की बतियाँ।।
हम हारि अरी करि कोटि उपाय, लिखी बहु नेह भरी पतियाँ।
जगमोहन मोहनी मूरति के बिन कैसे कटैं दुख की रतियाँ।।

काव्य-रूप की दृष्टि से इस युग मे प्रमुखत मुक्तक ही लिखे गये हैं। राम-भक्ति और कृष्ण-भक्ति से प्लावित कतिपय प्रबन्ध आपवादिक रचनाएँ ही हैं। प्रगीत मुक्तकों की रचना की दृष्टि से यह काल पर्याप्त समृद्ध कहा जा सकता है। ठुमरी, मलार, दादरा, ईमन आदि राग-रागिनियो मे प्राचीन पद-शैली की काव्य-रचना इसका प्रमाण है।

भाषायी चेतना की दृष्टि से यह काव्यधारा पर्याप्त महत्व की अधिकारिणी है। भारतेन्दुयुगीन कविता की भाषा ब्रजभाषा के लालित्य पूर्ण और कमनीय रूप से सज्जित है। यद्यपि इन कवियो की भाषा सूर, पद्माकर और घनानद की श्रेणी में तो नही आती है, किन्तु उसमें रागमयी स्वच्छन्दता, प्रभावपरकता और लोकोक्ति-सौन्दर्य पर्याप्त दिखाई देता है। एक ओर ब्रजभाषा का ललित प्रयोग और दूसरी ओर खडी बोली का प्रयोग इस काल की भाषायी चेतना के दो छोर हैं। इसके साथ ही हिन्दी भाषा के उत्थान और विकास के लिए भारतेन्दु ने पर्याप्त श्रम किया, किन्तु इसका अर्थ यह नही कि वे उर्दू के एकान्त विरोधी थे। 'फूलो का गुच्छा' मे उर्दू शब्दावली का प्रयोग देखने योग्य है। इसी प्रकार 'प्रेमघन' और प्रतापनारायण मिश्र की भाषा में भी उर्दू की रगत पूरी नजाकत के साथ देखी जा सकती है। यो निश्चित भाषायी प्रयोगो का प्रभाव देखना हो तो प्रेमघन की मिर्जापुरी और प्रतापनारायण मिश्र के कनौजिया भाषा प्रयोगो को लिया जा सकता है।

ब्रजभाषा के स्थान पर खडी बोली का प्रयोग करने वाले कवियो मे राधा कृष्ण दास, बालमुकुन्द गुप्त और प्रेमघन आदि का नाम लिया जा सकता है। यह ठीक है कि भारतेन्दु युग मे हिन्दी उर्दू का सघर्ष जोरो पर था, किन्तु यह भी सही है कि लोकोन्मुखी चेतना के कारण भारतेन्दु युग के कवि भी इस चिन्ता मे थे कि कैसे ही कोई ऐसी भाषा प्राप्त हो जिसे व्यापक भूमिका प्रदान की जा सके। निश्चय ही यह खडी बोली ही थी जिसका प्रयोग इस काल के कवियो ने भले ही कम किया हो, परन्तु किया अवश्य। यही पर एक बात कह देना अप्रासगिक न होगा कि पुनर्जागरण युग के ये कवि भाषा की शुद्धता के उतने पक्षपाती नही थे जितने कि हिन्दी या खडी बोली के महत्वाकन के। यही कारण है कि इन कवियो ने इतर भाषायी प्रयोगो से भी हिन्दी का भण्डार भरा है। इस प्रसग में 'अज्ञेय' का यह मत उचित ही प्रतीत होता है : "भारतेन्दु हिन्दी के नवयुग के प्रवर्तक हुए। इसका कारण उनकी लोकोन्मुखता ही थी। यह भाषा-क्रान्ति का दूसरा चरण था जिसका ध्येय था साधारण जन की भाषा का अ गीकार। अत शब्द-चयन की दृष्टि से, भारतेन्दु युग का लेखक शुद्धिवादी नही था। वह उर्दू, फारसी, सस्कृत, अन्य प्रादेशिक भारतीय भाषा, लोक-भाषा, कही से भी कोई भी उपयोगी शब्द या प्रयोग ले लेने को तैयार था।'[1] इस विवेचन के बाद यह कह सकते हैं कि द्विवेदी युग मे मैथिलीशरण गुप्त आदि कवियो ने खडी बोली को जो गरिमा प्रदान की उसकी भूमिका भारतेन्दु युग मे ही तैयार हो गई थी।

1 अज्ञेय हिन्दी साहित्य एक आधुनिक परिदृश्य पृष्ठ 50

अलंकरण की दृष्टि से पुनर्जागरण युग की कविता में रीतिकालीन चमत्कृति और अनुसरणवृत्ति नहीं देखने में आती है। हाँ, स्वयं भारतेन्दु की कुछेक कविताओं जैसे 'यमुना की छवि' में उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक और अनुप्रास के साथ-साथ श्लेष और यमक का प्रयोग प्रभावित करता है। इस कविता का पर्याप्त भाग पद-शैली में लिखा गया है। छंदों में पुराने छंदों दोहा, सोरठा, चौपाई, कुंडलिया, वंशस्थ, हरिगीतिका, वसन्ततिलका, रोला, कवित्त, सवैया, मंदाक्रान्ता और शिखरिणी का प्रयोग इस कालखण्ड की रचनाओं में सुलभ है। कतिपय उर्दू छंदों का प्रयोग भी भारतेन्दु आदि कवियों ने किया है।

स्पष्ट ही पुनर्जागरण युग में लिखी गई कविता प्रमुखतः राष्ट्रीय सचेतना की वाहक थी। इसने नवीन चेतना, लोकमंगलकारी दृष्टि, जातीय स्वाभिमान और सुधार-परिष्कार की दिशा में पर्याप्त कार्य किया। इस धारा के कवियों में सर्वाधिक प्रभावी व्यक्तित्व के धनी भारतेन्दु ही थे।

समाकलन

प्रत्येक युग की अपनी सृष्टि और दृष्टि होती है। सृष्टि दर्पण होती है जिसमें मनुष्य और समाज अपनी छवि देखता है। फिर कवियों की सृष्टि में तो पूरा का पूरा जीवन प्रतिबिम्बित रहता है। जीवन का यह प्रतिबिम्ब सदैव एक सा नहीं दिखाई देता क्योंकि उसे दिखाने वाला दर्पण भी बदलता रहता है। पुनर्जागरण काल के कवियों के पास जो दर्पण रहा है उसमें दो छवियाँ—दो-दो जीवन एक साथ दिखाई देते हैं। एक छवि रीतियुगीन शृंगार और वैभव विलास की है जिसके पास भक्ति का एक आकार दिखाई देता है। दूसरी छवि वह है जो इसी के पार्श्व में खड़ी है और समसामयिक जीवन की गतिविधियों, स्थितियों और मनस्थितियों के रंगों से दीप्त और अनुरंजित है। इन दोनों छवियों के कारण ही आलोच्य काल में परंपरा और नवीनता का अद्भुत मेल दिखाई देता है। यह मेल ही हमें यह कहने और मानने को विवश करता है कि इस काल में जो भावाभिव्यक्तियाँ हुई हैं, उनमें एक ऐसा का सूत्र है जो कभी पतला और कभी मोटा होता रहा है। अस्तु इस काल के कवि एक ओर रीतियुगीन परिपाटी का दामन पकड़े हुए हैं तो दूसरी ओर घोर शृंगार की प्रतिक्रिया स्वरूप भक्ति-भाव वलयित आदर्श का और जब ये दोनों परिपाटियाँ उनके हाथ से छूटी हैं तो निश्चय ही वे सुधारवादी जीवन-दृष्टि को प्रतिबिम्बित करने वाली कविताओं का आईना लेकर सारे समाज में घूमते फिरे हैं। प्रवृत्तियों का यह संघर्ष इन कवियों को न केवल उलझाता रहा है, अपितु हरेक का स्वाद भी चखने को विवश करता रहा है। अतः राजभक्ति और देशभक्ति दोनों चलती रही हैं। एक से दूसरी को शक्ति और प्रेरणा भी मिलती रही है। विक्टोरिया की सदाशयता प्रेरित नीतियों के कारण किये गये स्तुति गान राष्ट्र विरोधी नहीं माने जा सकते हैं, अपितु उन्हें ईमानदार कलाकारों की सत्यता ही स्वीकार करना बेहतर है।

भारतेन्दु युगीन काव्य रीति और भक्ति की पीठ पर खड़ा होकर जागरण का बिगुल बजाता हुआ भी अवांछित व्यवस्था और पराश्रित मनोवृत्तियों का उच्छेदन नहीं कर सका। वह उस तान को नहीं सुना सका जो जीवन को कर्म-यज्ञ बना देती है। यह अधूरा काम द्विवेदीयुगीन कविता ने पूरा किया। जागृति के नवोन्मेष, सुधार-परिष्कार और अनुकरणीय जीवनादर्शों की नियामिका यह कविता पावनता, संयमशीलता, सदाचार और त्याग की कविता है। इसके कवि त्यागी हैं; पर विरागी नहीं; अनुरागी हैं; पर भोगी नहीं। स्वामी विवेकानन्द के मुख से कर्मठ वेदान्त और लोकमान्य तिलक के मुख से कर्मयोग का संदेश सुनकर ये जीवन की ओर गये हैं; उससे भागे नहीं हैं। अतः यह वैरागियों और अनासक्तों का काव्य न होकर गृहस्थों का काव्य है। यदि ऐसा न होता तो ये कवि प्रवृत्ति; कर्मयोग और नारी-सम्मान की कविताएँ न लिखते।...............असल में इस युग की कविता का एक प्रबल सांस्कृतिक सन्दर्भ है और वह इसकी बहुत बड़ी शक्ति है। इसी का परिणाम है कि इस युग में नवीन मानवतावादी दृष्टि विकसित हुई; सामान्य मानव को गौरव मिला और अद्वितीय ही नहीं, क्षुद्र भी कविता का विषय बना।...............

3 जागृति के नवोन्मेष और परिष्कार की कविता : द्विवेदी युगीन काव्य

भारतीय जन मानस में स्वदेशानुराग और जागरण का जो बीज पड़ा था, वही अंकुरित होकर द्विवेदी युग मे वृक्ष बन गया है। 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' यदि अपने समय के जागरूक और सचेतन कवि-कलाकार थे तो उनके बाद के कवियो ने जागृति और उन्मेष को परिष्कार की दिशा प्रदान की। पुनर्जागरण का सबसे महत्वपूर्ण प्रदेय भारतीय जन-जीवन मे जागृति, स्वदेशानुराग और नवचेतना का मंत्र फूंकना था। निस्सदेह इस कार्य मे ये सभी कवि जो कि भारतेन्दु मंडल के कवि कहे जाते हैं, पर्याप्त सफल रहे हैं। जैसे ही भारतेन्दु का अवसान हुआ वैसे ही हिन्दी-कविता मे पुन परिष्कार-प्रेरित युगान्तर आया। आधुनिक हिन्दी-कविता मे नवीन भावो के अभ्युत्थान का श्रेय यदि भारतेन्दु को दिया जा सकता है तो उन भावो के अभ्युत्थान को परिष्कृत करने का श्रेय आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी को प्राप्त है।

परिवेश :

जिस समय पुनर्जागरण युग समाप्त हुआ उस समय हिन्दी कविता मे नवचेतना की लहर निरन्तर भारतीय जीवन के बाह्य और आन्तरिक तटों का स्पर्श करती जा रही थी, किन्तु ब्रिटिश शासन अपनी कूटनीतिक चालों से भारतीय जन-मानस मे अपने अनुकूल परिवर्तन के बीज बो रहा था। सन् 1857 का गदर जहाँ भारतीय जीवन मे उत्क्रान्ति लेकर आया, वहीं ब्रिटिश शासक कुछ अधिक सक्रिय भी हो गये। उन्होंने अनुभव किया कि यदि भारतवासियो पर शासन करना है और उनके मानस में अंग्रेजियत के प्रति आसक्ति जगानी है तो मात्र शोषण दमन और कठोर शासन से काम नही चलेगा। इसके लिए भारतीयो के जीवन को, दृष्टिकोण को और उनकी जीवनपद्धति को गहराई से समझना पड़ेगा। यही कारण है कि जब महारानी विक्टोरिया का समय आया तो उसने अपेक्षाकृत अधिक सहृदयता से काम लिया। उसने सदाशयता अपनाते हुए घोषणा की कि भारतवासियो के प्रति उचित व्यवहार किया जाए। इसके साथ ही उसने कुछ ऐसे संकेत भी दिये जिससे भारतीय जन-जीवन मे सुधार का युग आया। यद्यपि यह ठीक है कि उसके द्वारा घोषित उदारतापूर्ण नीतियाँ केवल नीतियाँ बनकर रह गयी। तदनुकूल आशाजनक परिणाम सामने नही आये। परिणामस्वरूप भारतीय जनता मे असंतोष, विक्षोभ और निराशा के भाव घर करते गये।

आर्थिक दृष्टि से भारतीयो ने अंग्रेजो की जिस नीति को सहा और देखा वह अनुकूल नही थी। अपनी अर्थ-व्यवस्था को सुदृढ बनाने के लिए अंग्रेज भारतीयों पर अत्याचार करते रहे। वे यहाँ से कच्चा माल बाहर भेजते और वहाँ से बने

माल की खपत भारत में किया करते थे। इस प्रकार भारत का धन विदेशों में जाता रहा। यहाँ के उद्योग-धन्धे चौपट होने लगे और भारत को निर्धनता का मुख देखना पड़ा। एक ओर तो अंग्रेजों की आर्थिक नीति ऐसी थी जो भारतीय जीवन को अपगु बना रही थी और दूसरी ओर निरन्तर पड़ने वाले अकालों के कारण हमारे देश की आर्थिक स्थिति खराब होती जा रही थी। राजनीतिक और आर्थिक क्षितिज पर जो घटनाएँ घटित हुईं, उनसे पीड़ित और मर्दित होकर भारतवासियों ने पूर्ण स्वतन्त्रता की माँग की। सौभाग्यवश भारतवासियों को गोपालकृष्ण गोखले और बालगंगाधर तिलक जैसे मनस्वी और कर्मठ नेता भी मिल गये। इसी क्रम में भारतीयों की जागृति का दौर भी प्रारंभ हो गया और उन्होंने 'स्वराज्य एवं स्वतंत्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' की घोषणा कर दी। ऐसे विक्षुब्ध करने वाले एवं असतोष को बढाने वाले वातावरण का प्रभाव तत्कालीन साहित्यकारों पर भी पड़ा। यद्यपि भारतेन्दु बहुत पहले ही नवजागृति के अग्रदूत बनकर आ चुके थे, किन्तु वे केवल देश की हीन एवं गहित स्थिति पर आँसू बहाकर रह गये। स्वयं भारतेन्दु ने 'भारत दुर्दशा' का अंकन मात्र किया है। ये लोग ब्रिटिश शासन के प्रति कोई ठोस प्रतिक्रिया व्यक्त नही कर पाये। स्थिति कुछ और आगे बढी और जागृति के नवोन्मेष और परिष्कार के युग में आविर्भूत कवियों ने देश की दुर्दशा को देखकर क्रियात्मक रूप से स्वतन्त्रता प्राप्ति का कार्यक्रम बनाया। इस युग मे जितने कवि हुए वे सभी आत्मोत्सर्ग, आत्मत्याग, बलिदान और अपने जीवन के परिष्कार के विश्वासी थे। परिणामस्वरूप हिन्दी-कविता ने भारतेन्दुकालीन जागृति को स्वस्थ एवं संतुलित दिशा प्रदान करने के साथ-साथ परिष्कृति का मार्ग भी सुझाया। इस परिष्कार और नवोन्मेष से प्रेरित होकर जिस काव्यधारा का प्रादुर्भाव हुआ उसे हिन्दी साहित्य के समीक्षकों ने 'द्विवेदी-युगीन कविता' का नाम दिया है।

ब्रिटिश शासक अपने स्वार्थों की पूर्ति करना चाहते थे। अतः उन्होंने राजनैतिक और आर्थिक दृष्टिकोण के साथ-साथ शैक्षणिक धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों मे भी कूटनीति से काम लिया। यह इसी कूटनीति का परिणाम था कि अंग्रेजों ने भारतवासियों को अंग्रेजी की शिक्षा देना प्रारंभ कर दिया। अंग्रेजी की शिक्षा किसी सत् उद्देश्य से प्रेरित होकर नही दी जा रही थी। इसके पीछे भी अंग्रेजों की वह मनोवृत्ति काम कर रही थी जिसके आधार पर वे भारतीयों को न केवल बाह्य रूप से अपितु भी मानसिक स्तर पर—आतरिक रूप से गुलाम बनाये रखना चाहते थे। यह निर्विवाद है कि मानसिक दासता के कार्यक्रम मे अंग्रेजों को एक सीमा तक सफलता भी प्राप्त हुई। यह ठीक है कि अंग्रेजी शिक्षा के माध्यम से भारतवासी वर्क, मिल, स्पैन्सर और रूसो आदि उदार विचारकों एवं मनीषियों की रचनाओं से परिचित हुए। यह परिचय भारतवासियों के हृदय में उदित स्वतन्त्रता एवं राष्ट्रीयता की भावनाओं का पोषक बनकर आया। एक ओर तो उपर्युक्त उदारवादी चिन्तकों ने भारतवासियों की स्वातन्त्र्य भावना एवं राष्ट्रीय

चेतना को विकसित होने में योग दिया दूसरी ओर 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में विभिन्न संस्थाओं जैसे आर्य समाज ब्रह्म समाज थियोसोफिकल सोसायटी और इंडियन नेशनल कांग्रेस आदि की स्थापना ने भारतीय सभ्यता संस्कृति धर्म और समाज के पुनरुत्थान की प्रेरणा प्रदान की। इन दोनों प्रकार के सहयोगों से आलोच्य युग में राष्ट्रीयता, स्वातन्त्र्य भावना और भारतीय जीवन में सुधारों का कार्य शुरू हुआ। गोपालकृष्ण गोखले बालगंगाधर तिलक लाला लाजपतराय स्वामी श्रद्धानन्द और मदनमोहन मालवीय आदि नेताओं और निःस्वार्थ समाज सेवियों ने अपनी विचारधारा से भारतवासियों के स्वाभिमान को जागृत किया। ऐसी स्थिति में भारतीय जनमानस में एक नवीन क्रान्ति ने जन्म लिया। इस क्रांति का प्रभाव तत्कालीन कवियों और कलाकारों पर भी पड़ा। भारतेन्दु ने कविता के द्वारा जिस जागृति को प्रसारित किया था उसी को इस काल के अनेक कवियों जैसे अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त महावीर प्रसाद द्विवेदी गयाप्रसाद शुक्ल सनेही लोचन प्रसाद पांडे और नाथूराम शर्मा शंकर आदि ने सुधार और परिष्कार की दिशा में आगे बढ़ाया।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी इस काल खण्ड के ऐसे मनस्वी चिन्तक और सर्वाधिक प्रभावी व्यक्ति थे जिनके प्रयत्न से हिन्दी-कविता का यह युग परिष्कार की दिशा में कार्य करने लगा। इसमें कोई शक नहीं कि हिन्दी-मन्दिर के संस्कार और परिष्कार में आचार्य द्विवेदी ने अपना समग्र जीवन तिल तिल कर गला दिया। गद्य और पद्य दोनों ही क्षेत्रों में आचार्य द्विवेदी का प्रभाव बढ़ता चला गया। यह ठीक है कि द्विवेदी जी स्वयं उच्चकोटि के साहित्यकार नहीं थे किन्तु उन्होंने उच्च कोटि के साहित्यकार अवश्य पैदा किये। इसका श्रेय उनकी लोह-लेखनी को प्राप्त है। वस्तुतः द्विवेदी जी सर्जक की अपेक्षा नियामक अधिक थे। उनकी कलम और बौद्धिक क्षमता ने कविता में परिष्कार ला दिया। परिष्कार की इस दिशा में न केवल भावों का परिष्कार हुआ अपितु विचारणा और भाषा भी निरन्तर परिष्कृत होती चली गयी। इस परिष्कार का सर्वाधिक प्रभाव भाषा पर पड़ा। परिणामस्वरूप हिन्दी अपने व्याकरणिक सौष्ठव और सौन्दर्य से सज-सँवर कर कविता में आने लगी।

नामकरण और सीमांकन

आचार्य द्विवेदी अपने समय के सम्माननीय व्यक्ति थे। यह सम्मान उन्हें यों ही नहीं मिल गया था। वे अपनी सूक्ष्म बुद्धि और सजग प्रतिभा के कारण इस सम्मान के अधिकारी बने। जब तत्कालीन कवियों को सही दिशा मिल गयी और वे परिष्कार की दिशा में पर्याप्त सफल होने लगे तो आधुनिक साहित्य के समीक्षकों एवं हिन्दी साहित्य के रचयिताओं ने द्विवेदी जी की प्रतिभा और परिष्कार प्रेरित प्रतिभा के आधार पर ही इस काल खण्ड का नाम द्विवेदी युग रख दिया। स्पष्ट ही यह नाम द्विवेदी जी के प्रति

सम्मान और कृतज्ञता का ही द्योतक है, युग की मूल भावना का संकेतक नहीं। यह युग सन् 1900 से 1918 तक माना जाता है। यों कुछ लोग इस युग की सीमा-रेखा कुछ पहले से भी मानते हैं। ध्यान से देखें तो भारतेन्दु युग की समाप्ति सन् 1895 में हो गई थी। तभी से हिन्दी कविता मे जागृति और सुधार का युग भी प्रारम हो गया था, किन्तु इसका विधिवत प्रारंभ सन् 1900 से ही माना जा सकता है। आचार्य शुक्ल ने इस काल विशेष को गद्य काल के नाम से अभिहित करके द्वितीय उत्थान कहा है। हमे यह नाम उचित प्रतीत नही होता। यदि किसी व्यक्ति के नाम पर ही इस काल का नामकरण करना जरूरी हो तो निश्चय ही द्विवेदी युग कहना ही सटीक एव औचित्य-पूर्ण है। हाँ, यदि कर्ता को ध्यान म न रखें और प्रवृत्तियो को ही ध्यान मे रखा जाये जो उचित भी है तो इस काल खण्ड को जागृति के नवोन्मेष और परिष्कार का युग कहना अधिक सगत प्रतीत होता है। नवोन्मेष और परिष्कार शब्दो की सीमा मे इस काल खण्ड की समस्तप्रवृत्तियाँ सिमट जाती हैं। क्षेत्र चाहे भाव का हो या भाषा का, गद्य का हो या पद्य का, शब्द चाहे उर्दू फारसी के हो या अंग्रेजी बगला के, भावों में कल्पनाशीलता हो या इतिवृत्तात्मकता, हर क्षेत्र मे इस कालखण्ड के रचनाकारो ने नवोन्मेष और परिष्कार का कार्य ही किया है। ऐसी स्थिति में प्रवृत्ति के आधार पर इसे जागृति का नवोन्मेष और परिष्कार युग कहना ही उचित प्रतीत होता है।

इस युग का सम्बन्ध बीसवीं शताब्दी के प्रथम दो दशको से है। यह वह समय था जब कि लोग मनमानी कर रहे थे। भाषा और भाव के क्षेत्र मे अराजकता फैली हुई थी, और कुछ शुद्धतावादी और सुधारक व्यक्तित्व भारतीय जीवन को सही दिशा प्रदान कर रहे थे। ऐसी स्थिति मे द्विवेदी जी ने अपने साहित्यिक एव सस्कारी व्यक्तित्व के द्वारा तत्कालीन काव्य एव साहित्य को सुनिश्चित एव सुदृढ़ आधार प्रदान किया। भारतेन्दु युग की समस्या-पूर्तियो और तुक बदियो से लोग ऊब चुके थे, भक्ति और रीति की सीमाओं मे बँधी हुई अभिव्यजना-शैली एव भावधारा अब रूचि को अपने मे अधिक समय तक नही बाँधे रह सकती थी। ब्रजभाषा अपना आकर्षण खो चुकी थी। आचार्य द्विवेदी ने अपने परिष्कारी प्रयत्नो से हिन्दी-कविता को विषय वैविध्य, छद वैविध्य और काव्य-रूपो के वैविध्य की ओर मोड दिया था। यही कारण है कि द्विवेदी जी की प्रेरक एव प्रोत्साहित करने वाली मनोवृत्ति के कारण मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, नाथूराम शर्मा और सियारामशरण गुप्त आदि कवियो ने सुधारवादी दृष्टिकोण को अपनाकर काव्य-सर्जना की। इस युग की कविता मे ये सभी भाव देखे जा सकते हैं। भाषा का परिष्कार, शैली की विविधता, प्रबन्ध और मुक्तक दोनो का सृजन तथा पौराणिक प्रसंगो के आधार पर नवोन्मेष एव सामाजिक परिष्कार इस समूची काव्यधारा मे दिखाई देता है। इसकी प्रवृत्यात्मक विवेचना करते हुए डॉ० शिवदान सिंह चौहान ने लिखा है—इन कवियो की दृष्टि मूलत: बहिर्मुखी है इसलिए यह राष्ट्र और जीवन की समसामयिक हलचलो मे निरन्तर रमती चली गई है। वह अन्त मुंखी होकर व्यक्ति चेतना की अगम गहराइयो मे नही उतर पाई है। विशेषकर

लोक प्रचलित पौराणिक आख्यानो, इतिहास वृत्तो और देश की राजनैतिक घटनाओ से इस काल के कवियो ने अपने काव्य की विषय-वस्तु को सजाया है । इन आख्यानो, वृत्तो और घटनाओ के चयन मे उपेक्षितो के प्रति सहानुभूति, देशानुराग और सत्ता के प्रति विद्रोह का स्वर मुखरित हुआ है । यह एक प्रकार से राजनीति मे राष्ट्रीय आन्दोलन और काव्य मे स्वच्छन्दतावाद की प्रवृत्ति के बीच पलने और बहने वाली कविता की बहिर्मुखी धारा है जिसने हिन्दी भाषी जनता का आधुनिक युग के व्यक्ति समाज सम्बन्धी गहरे तात्विक प्रश्नो के प्रति नही तो राजनीतिक पराधीनता और राष्ट्रीय सघर्ष की आवश्यकता के प्रति सचेत बनाने मे बहुत बडा काम किया" ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि इस युग की कविता का प्रमुख उद्देश्य देशानुराग तो था ही, राष्ट्रीयता और जन चेतना मे परिष्कार लाना भी था। ये दोनो ही प्रवृत्तियाँ इस कालखण्ड की कविताओ मे शीर्ष पर देखी जा सकती हैं। यो और भी अनेक ऐसी विशेषताएँ हैं जो इस काव्यधारा के प्राणो म प्रवाहित होती हुई उस युग की स्थिति, मनोवृत्ति और जीवन-चेतना पर प्रकाश डालती है । उनका विवेचन आगे किया जा रहा है ।

प्रवृत्ति विश्लेषण

द्विवेदी युग मे लिखित कविता की प्रमुख विशेषताओ मे राष्ट्रीयता, मानवता, नीति और आदर्श, हास्य-व्यग्य, वर्ण्य विषयो का विस्तार, विविध काव्य-रूपो का प्रयोग, भाषा परिष्कार, छन्द वैविध्य और परम्परित प्रसगो पर आधारित नवीन भाव-बोध जिसे जन-जीवन की प्रवृत्तियो से जोडा गया है, को लिया जा सकता है। ये प्रवृत्तियाँ जागृति के नवोन्मेष और परिष्कार से युक्त कविता धारा मे गहराई से मिलती है। इन प्रवृत्तियो का क्रमिक विवेचन इस प्रकार है

राष्ट्रीयता और देश–भक्ति

आलोच्य काव्यधारा की सर्वप्रमुख विशेषता राष्ट्रीयता और देश भक्ति से सम्बन्धित है। यद्यपि भारतेन्दु राष्ट्रीय चेतना का अलख जगा चुके थे, किन्तु उसे ठोस आधारप्रदान करने का कार्य इसी कालखण्ड के कवियो ने किया। यो भी भारतेन्दुकालीन राष्ट्रीयता प्रारभिक राष्ट्रीयता ही कही जा सकती है । उसमे विकास के वे चरण और सोपान नही दिखाई देते है जो आगे चलकर विकसित हुए। मेरी धारणा है कि भारतेन्दु युग मे जिस देश भक्ति का बीज पडा था, वह यहाँ आकर अँकुर छोडने लगा और फैलकर काफी बडा भी हो गया। भारतेन्दु युगीन राष्ट्रीयता ने रोटी कपडे और भाषा के सीमित क्षेत्र के सहारे अपनी अधपकी भावनाओं को अभिव्यक्त किया जबकि इस काल के कवियो ने जातीयता और हिन्दुत्व का बल पाकर इसे फैला दिया। राष्ट्र के जीवन की समसामयिक हलचलो को अपने मे समेटती द्विवेदी युगीन राष्ट्रीयता ने

चली गई " ।[1] स्वय आचार्य द्विवेदी जी ने अपनी एक कविता "सरगौ नरक ठिकाना नाहि' 'म कल्लू' को काव्य का विषय बनाया है तो'अविद्यानद के व्याख्यान' म विदेशीयता का रसिक शकर जी के व्यग्य का निशाना बना है ।

आलोच्य काल मे हरिऔध की 'मोर का उठाना' पृथ्वीनाथ भट्ट की 'मौत का डडा' गोपाल शरणसिंह की 'उलाहना' और 'हृदय की वेदना' और रामचरित उपाध्याय की 'विविध बिडम्बना' आदि कविताओ में साधारण से साधारण विषयों को कविता का विषय बनाया गया है । दीनता और हीनता की प्रतिमा कृषको और विधवाओ की पीडा का करुण विगलित अ कन गुप्त जी की 'किसान' और सियाराम शरण जी की 'अनाथ' मे देखा जा सकता है । 'सनेह' की 'कृषक क्रन्दन' कविता मे कृषक जीवन का कारुणिक और व्यथा-विगलित चित्र पूरी मार्मिकता के साथ प्रस्तुत किया गया है । इन कविताओ के सृजन की पृष्ठभूमि म मानवीय करुणा और सहानुभूति ही प्रेरक शक्ति बनकर आई है । स्पष्ट है कि आलोच्य युग मे जनसाधारण और मानव की साधारणता का प्रभावी और सोद्देश्य अकन हुआ है ।

आदर्श और नैतिकता :

रीतिकाल के बाद उसकी पीठ पर अवतरित काल मे जो सास्कृतिक घटना सर्वाधिक उल्लेखनीय है, यह है स्वामी दयानद का पवित्रतावादी सदुपदेश । स्वामीजी ने आदर्श, मर्यादा, बुद्धि और नैतिकता पर बल दिया । उन्होंने भारतीय मानवता को वीरता और सयम का सदेश देते-देते सदाचार, मर्यादा और बुद्धिवाद का उपदेश भी दे डाला । वस्तुत वे देश को पौराणिक सस्कारो, रहस्यवादी उलझनो, शृ गारिकता की सँकरी गलियो और रसिकता के कु जो से निकालकर कर्म और विवेक की जमीन पर खडा करना चाहते थे । परिणामस्वरूप आदर्श और नैतिकता का प्रसार हुआ । आदर्श चरित्र और अविस्मरणीय पात्र व उनसे सम्बद्ध घटनाएँ काव्य मे आने लगी । सत् आदर्शों की प्रतिष्ठा हुई, कर्त्तव्य पालन, त्याग, उच्चादर्शों और आत्म गौरव का श्वेत और उज्जवल रग समूचे काव्य मे फैलता चला गया । एक प्रकार से कविता शुभ्रवसना, किन्तु कर्मयोगिनी बनकर अपनी अमल धवल काति से सहृदयो के मन मे श्रद्धा, प्रेम, और आदर्श प्रेरित नैतिकता का दीप्त प्रकाश विकीर्ण करने लगी ।

यही कारण है कि जागृति के नवोन्मेष और परिष्कार के इस युग म आदर्श और नैतिकता से प्रेरित होकर काव्य सर्जना हुई है । स्वय मैथिलीशरण गुप्त ने भारत-भारती म काव्य का उद्देश्य-चित्रित करते हुए लिखा

केवल मनोरजन न कवि का कर्म होना चाहिए,
उसमे उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए।

1, डॉ० रामसकल राय द्विवेदी-युग का काव्य पृष्ठ 397

क्यों आज 'रामचरित मानस' सब कहीं सम्मान्य है।
सत्काव्य युत उसमे परम आदर्श का प्राधान्य है।।

इन्ही आदर्शों और नैतिक मानो से प्रभावित होकर गुप्त जी ने ही नही, हरिऔध, सियारामशरण, रामनरेश त्रिपाठी, रामचरित उपाध्याय और गोकुल चन्द शर्मा ने क्रमश साकेत, रंग मे मग, विकट-भट, जयद्रथ बध (मैथिलीशरण), 'प्रिय-प्रवास' (हरिऔध), मिलन (रामनरेश त्रिपाठी) गाधी गौरव (गोकुलचन्द शर्मा) और रामचरित चिन्तामणि आदि आदर्श परक काव्यो की सर्जना की। अनेक फुटकर कविताएँ भी रची गई जिनमे आदर्श और नैतिकता का पूर्ण प्रसार किया गया है।

नवचेतना का स्वर भारतेन्दु मे भी था, किन्तु, उसमे फिर भी शृंगार की रसिकता के पर्याप्त पक्के छीटे थे। इस काल मे आकर पवित्रतावाद और आदर्श का प्रभाव इतनी तेजी से बढा कि रसिकता के पक्के छीटे उनकी गरिमा को देखकर स्वत ही फीके पडते चले गये। द्विवेदी जी के नैतिक और सदाचार पूर्ण आदेशो व निर्देशों मे प्रेम और शृंगार की भावनाएँ दब गई और उनके स्थानापन्न होकर नैतिकता, विवेक, सदाचार और आदर्श आते गये। रस और प्रेम भाव के स्थान पर 'मेटर आँफ फैक्ट' को प्रोत्साहन मिला। 'साकेत', 'प्रियप्रवास' और 'मिलन' जैसी कृतियो मे प्रेम का उदात्तीकृत रूप व्यजित हुआ है। जो 'राधा' कृष्ण की बशी की धुन सुनकर कभी बावली घूमती थी, वही सारी मस्ती छोडकर आदर्श का परिधान ओढ कर कल्याणमयी विश्व-सेविका बन गई है। इस स्थिति मे पहुँचकर वह यही कहती दिखाई देती है "प्यारे जीवें जगहित करें, गेह चाहे न आवें"। इसी आदर्श की भूमिका पर उर्मिला और यशोधरा जैसी नारियाँ भी खडी हैं। स्पष्टीकरण के लिये ये पक्तियाँ देखिये

"हे मन ! तू प्रिय पथ का विघ्न न बन" —'साकेत'

"सखि ! वे मुझसे कहकर जाते
तो क्या वे मुझको अपनी पथ-बाधा ही पाते।
प्रियतम को प्राणों के पण मे ।।
हमीं भेज देती हैं रण मे
क्षात्र धर्म के नाते
सखि ! वे मुझसे कहकर जाते !!
(यशोधरा)

मानव-प्रेम सिंचित धार्मिकता :

इस कालखण्ड के कवियो ने मानव-प्रेम से सिंचित् धार्मिक भावो को भी साग्रह अपनाया है। उसमे व्यापकता का समावेश हुआ है। मानवतावाद के आदर्श-भावो के कारण इस काल की कविताओ मे पीडितो, दलितो, शोषितो और दुर्बलो के प्रति सहानुभूति प्रकट की गई है। इन कवियो की धार्मिक भावना ने इन्हे कुछ

ऐसा विश्वास दिलाया है कि मानव-सेवा ही सच्ची ईश्वर सेवा है। वस्तुत : इन कवियों का ईश्वर-प्रेम, मानव प्रेम मे और मानव प्रेम ही विश्व प्रेम और विश्व-बधुत्व म पर्यवसित हो गया प्रतीत होता है। ठाकुर गोपालशरण सिंह ने लिखा है -

जग की सेवा करना ही बस है सब सारो का सार।
विश्व-प्रेम के बधन ही मे, मुझको मिला मुक्ति का द्वार ।।

विश्व प्रेम की भूमिका पर खडे होकर ईश्वर की पूजा करने वाले इन कवियों ने अनेक कविताओ मे दलितों, पीडितो और दुर्बलो के प्रति अन्याय और अत्याचार करने वाली सामन्ती सभ्यता की कटु आलोचना की। राम और कृष्ण जैसे अवतारी पुरुष मानव प्रेम से भरकर प्रस्तुत किये गये हैं। वे समग्र प्रकृति मे व्याप्त हो गये। इस प्रकार धार्मिक चेतना मे रहस्यात्मकता का पुट भी आता चला गया। धार्मिकता और रहस्यात्मकता की इस प्रवृत्ति को लक्षित करके डॉ० केसरीनारायण शुक्ल ने लिखा है - "भारतेन्दु युग की धार्मिक कविता से यह निस्संदेह उन्नत है। उपदेशात्मक प्रवृत्ति को छोडकर कवियो ने मानवतावाद को ग्रहण किया। उदारता और व्यापक मनोदृष्टि इस समय की धार्मिक कविता के विशेष लक्षण हैं। अन्योक्तियाँ सौन्दर्यपूर्ण हैं और उनम काव्यत्व है। इन कवियो के रहस्यात्मक मुक्तक गीतों ने तृतीय उत्थान की कविता को अधिक प्रभावित किया। कवियो की यह सफलता साधारण नही है। विश्व प्रेम और जन-सेवा की भावना के द्वारा तृतीय उत्थान (छायावाद) के कवियो ने धार्मिक कविता को अधिक उन्नतिशील बनाया।"

सामाजिक चेतना

भारतेन्दु की नवचेतना की किरणो का प्रसार और उनका आलोक जिससे समाज के भीतरी-बाहरी रूप को देखा जा सके, सीधा द्विवेदी युगीन कविता पर पडता दिखाई देता है। यही कारण है कि रीतिकाल मे जो सामाजिक जीवन अस्पृश्य था और भारतेन्दु काल मे जिसे स्पर्श करने की प्रवृत्ति का विकास हुआ ही था, वही इस युग मे खुलकर सामने आया है। इसी खुलावट के परिणामस्वरूप जीवन और समाज के भीतर की विविध समस्याएँ हम इस काल मे पा लेते हैं। विधवाओ की दीन दशा, अछूतोद्धार और सामाजिक कुरीतियो आदि को व्यंग्यात्मक वाणी के सहारे दूर कर मानवीय प्रेम की प्रतिष्ठा मे इन कवियो ने कोई कसर नही छोडी है। दहेज-प्रथा तथा बाल विवाह जैसी प्रचलित परपराओ का खण्डन करने का कार्य इन्ही कवियो द्वारा किया गया। इस प्रकार सामाजिक स्तर पर सुधार और परिष्कार का कार्य बडी निष्ठा के साथ किया गया है। महत्त्व की बात यह है कि इस सुधार परिष्कार मे आलोच्य काल के कवि नीरस और इतिवृत्तात्मक भले ही हो गये हो, किन्तु उन्होने दायित्वबोध और आदर्शीकरण की गति को किंचित् भी मद नही होने दिया है।

स्त्री-शिक्षा और विधवा-विवाह जैसे विषयो को इस काल मे पर्याप्त समर्थन प्राप्त हुआ। गुप्त जी इस दिशा मे विशेष सक्रिय रहे हैं। नारी को उदात्त भूमि

पर लाने के लिए ही 'यशोधरा' और 'साकेत' की सृष्टि हुई है। असल बात यह है कि द्विवेदी युगीन कविता मे मानवीय करुणा और जीवन व सामाजिक विषमताओ को कवियो की गहरी सहानुभूति प्राप्त हुई है। पीडितो, शोषितो और दुर्बलो के प्रति अभिव्यजित सहानुभूति मे इसी मानवता और सामाजिक चेतना को देखा जा सकता है। सामाजिक जीवन मे ईश्वर प्राप्ति को मानव-प्रेम के सहारे बता कर ईश्वर-प्रेम को मानव-प्रेम की चादर उढा दी गई। नतीजा यह निकला कि जग-सेवा और समाज-सेवा ही सभी सारो का सार बनी और विश्व-प्रेम मे मुक्ति की कल्पना कर ली गई। 'श्रीधर पाठक' ने विधवाओ की दीन-दशा का अकन करके, आर्य समाजी नाथूराम शर्मा शकर ने दहेज-प्रथा और बाल विवाह की विसगतियो का और मैथिलीशरण ने अछूतोद्धार, भारतीय किसान और समाज के पिछडे हुए वर्ग पर काफी लिखकर सामाजिक चेतना की प्रवृत्ति को ही पुष्ट और समर्थित किया है। जो लोग इन कवियो को सकीर्ण रूचि और साप्रदायिक भावो के प्रसारक कवि मानते हैं, वे भ्रम मे है। वास्तविकता यह है कि इन कवियो का हृदय उदार और दृष्टिकोण पर्याप्त व्यापक था।

प्रकृति : सौन्दर्य चेतना

प्रकृति का स्वतत्र निरूपण भी भारतेन्दु काल मे ही प्रारभ हो गया था, किन्तु वह परपरा की पर्तों मे लिपटा होने के कारण आकर्षण का केन्द्र नही बन पाया था। आलोच्य काल के रामनरेश त्रिपाठी मुकुटधर पाण्डे और श्रीधर पाठक ने प्रकृति के आलम्बन रूप को प्रोत्साहन दिया। आगे चलकर मैथिलीशरण और हरिऔध की लेखनी से भी कुछेक मौलिक प्रकृति चित्र उतारे गये। ये प्रकृति चित्र वर्णनात्मक शैली और प्रचलित उपमानो की जकड से बाहर न आ सकने के कारण उतने प्रभाव-केन्द्र नही जितने आगे की कविता मे मिलते हैं।

'श्रीधर पाठक' ने प्रकृति के सवेदनात्मक और चित्रात्मक दोनो रूपो को उतारा है। 'देहरादून' के बँगले मे लगे हुए फूलो का यथातथ्य वर्णन करते हुए कवि ने आम की डाल पर बैठने वाले पक्षी की भी याद करली है[1]। 'हिमालय' का चित्र भी आलम्बनगत और मोहक है। 'रामनरेश त्रिपाठी' ने भी नदी, पर्वत और समुद्र के वर्णन म सवेदनात्मक और चित्रात्मक दोनो शैलियो का उपयोग किया है। काश्मीर के चिनार वृक्षो की माध्यकालीन सुषमा का वर्णन भी प्रकृति की रम्य एव चित्ताकर्षक तसवीर है। 'चिनार की छाया' जैसे गिरिकन्या को चूमने जा रही है तथा हिम-शृ गो से दिनकर की किरणे शनै शनै. उतरती हुई नौका पर विचरती प्रतीत होती है[2]। 'हरिऔध' के प्रकृति वर्णन अधिकाशन परिगणन शैली मे होने के कारण खासे नीरस हो गये है तो कही पात्र-विशेष (राधा) की भावनाओ से कुचल गये हैं। गुप्त

1 श्रीधर पाठक : देहरादून, पृ० 152
2 रामनरेश त्रिपाठी : स्वप्न पृ० 29

जी की 'पचवटी' की प्रकृति अवश्य ही अनेक स्थलो पर पाठको का मन रमाती और बाँधती चलती है। समग्रत यही कहा जा सकता है कि आलोच्य कालीन प्रकृति बाहरी रूपाकृतियो की विविध छवियो के अभाव म तथा मानवीय रागात्मक सवेदन की अनुपस्थिति म इस कार्य म कारगर नही हो सकी है। इतने पर भी इसे पुनर्जागरण युग की कविता का अगला कदम तो कहा ही जा सकता है। हाँ, 'प्रिय-प्रवास' की प्रकृति मे जहाँ लालित्य और कल्पना वैभव कही-कही मिलता है उसके कारण ही लगता है कि ये कवि प्रकृति की सुषमा को मन की आँखो से निहारते रहे है।

इतिवृत्तात्मकता और गद्यपरकता

आलोच्य काल की कविता में इतिवृत्तात्मकता और गद्यपरकता भी पर्याप्त मात्रा मे मिलती है। शैली मे कही कही प्रचुर सरलता और गद्यात्मकता आ गई है। कारण यही है कि ये कवि काव्य को उपयोगिता के बटखरो से तोलते थे। इस उपयोगितावाद को काव्य मे इतिवृत्तात्मक वर्णनो म देखा जा सकता है। जहाँ कविता इतिवृत्तात्मक है, वहाँ भाव फीके, कल्पना निष्प्रभ और सरसता के नाम पर उपदेशो का या तथ्य कथनो का प्राचुर्य है। अनेक कवियो ने सतोष, साहस, देश प्रेम धैर्य शौर्य और आशा जैसे विषयो पर कविताएँ लिख कर काव्य को न केवल कोरा उपदेश बना दिया है, अपितु नीरस और कलाहीन भी बना दिया है। मराठी की वर्णन प्रधान इतिवृत्तात्मक शैली के अनुकरण पर भी अनेक नीरस, फीकी और गद्याभास युक्त कविताओं की सृष्टि इस युग मे हुई है। पौराणिक सदर्भ वर्णनातिरेक के कारण भी पर्याप्त गद्याभास युक्त हो गये हैं। फलत कविता कविता न रहकर वर्णन की शैली मात्र प्रतीत होती है। हाँ युगान्त मे अवश्य ही यह प्रवृत्ति कुछ कम हुई है। 'साकेत' महाकाव्य क कतिपय वर्णन प्रसग अवश्य ही रूचि-प्रेरक और मार्मिक प्रतीत होते हैं .

मेरे चपल यौवन बाल !
अचल अंचल मे पड़ा रह मचल कर मत साल ।।
× × × ×
निरख सखी ये खंजन आये ।
फेरे उन मेरे रजन ने नयन इधर मन भाये ।।

अन्य विशेषताएँ

आलोच्य काल मे वर्ण्य-विषयो की पर्याप्त विविधता दिखाई देती है। नायिका-भेद-निरूपण की प्रवृत्ति को छोडकर प्राय सभी छोटे से छोटे, नगण्य से नगण्य और बडे से बडे परपरित और नवीन विषय इस कविता म आये हैं। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अपने एक निबध 'कवि कर्त्तव्य' मे लिखा है . "चीटी से लेकर हाथी पर्यन्त पशु, भिक्षुक से लेकर राजा पर्यन्त मनुष्य, बिन्दु से लेकर समुद्र पर्यन्त जल,

अनत आकाश, अनत पृथ्वी, अनत पर्वक—सभी पर कविता हो सकती है"। द्विवेदी जी के इस कथन को सभी कवियों ने माना और कविता के विषय विविधात्मक और व्यापक होते चले गये।

पुनर्जागरण काल के कवि जितने जिन्दादिल, विनोदी और व्यंग्यकार थे, उतने इस युग के कवि नहीं रहे। परिणामत. हास्य-व्यग्य की छुट-पुट कविताएँ ही लिखी गईं। द्विवेदी जी के अनुशासित, सयत और मर्यादावादी दृष्टिकोण के कारण कविता व्यग्य की शैली को न अपना सकी। बालमुकुन्द गुप्त मे अवश्य ही यह प्रवृत्ति कुछ उभरी है। 'लार्ड कर्जन' पर किया गया उनका व्यग्य अपने साथ हास्य का सामान भी लिये हुए है। निर्भीक भाषा मे वे कहते है :

हमसे सच की सुनो कहानी, जिससे मरे झूँठ की नानी।
सच है सभ्य देश की चीज, तुम को उसकी कहाँ तमीज?
बोले और करे कुछ और, यही सभ्य सच्चे के तौर।
मन मे कुछ मुँह पे कुछ और, यही सत्य है कर लो गौर॥

अभिव्यंजना-शिल्प

आलोच्य काल मे प्रयुक्त शिल्प भी भाव-गरिमा की ही भाँति पर्याप्त परिष्कृत और सयत है। काव्य-रूपों की दृष्टि से देखें तो प्राय प्रचलित सभी काव्य-रूपों का प्रयोग इस काल के कवियों ने किया है। प्रबध, मुक्तक और प्रगति सभी मे रचनायें लिखी गई है। इस युग के प्रबधो में प्रिय प्रवास, साकेत रामचरित चिन्तामणि (महाकाव्यो), जयद्रथ वध, रग मे भग (मैथिलीशरण) मौर्य विजय, मिलन और गाधी गौरव (खण्ड काव्यो) तथा विकट-भट, केशो की कथा, शकुन्तला जल और सरगो नरक ठिकाना नाहि व सती-सीता आदि अनेक पद्य कथाओं का प्रणयन भी इसी युग मे हुआ है। मुक्तक रचनायें प्राय सभी ने लिखी है। 'शकर' और 'हरिऔध' की समस्या पूर्तियाँ और मैथिलीशरण और मुकुट धर पाण्डे ने प्रगीत भी इसी युग में लिखे हैं।

आलोच्य काल की भाषा मे जितना परिष्कार, जितना व्याकरणिक सौष्ठव और परिपक्व भाषिक प्रयोग मिलता है, वह अनुपम है। पुनर्जागरण युग मे काव्य की भाषा ब्रज थी और इस युग में उसका स्थान खडी बोली ने ले लिया। डॉ० उमाकात ने नगेन्द्र जी द्वारा सपादित इतिहास मे लिखा है कि 'आज खडी बोली के भाषा-सौन्दर्य, मार्दव और अभिव्यजना-क्षमता के दर्शन के पश्चात उसकी काव्योपयुक्तता विवादास्पद नहीं रह गई है, किन्तु द्विवेदीकाल से पूर्व यह स्थिति नही थी। यद्यपि प्रारम्भ मे खडी बोली का काव्य नीरस तुकबदी के अतिरिक्त कुछ नही था, किन्तु उसमें उत्तरोत्तर निखार आया। 'जयद्रथ बध' की प्रसिद्धि ने ब्रजभाषा के मोह का वध कर दिया तो भारत-भारती की लोक प्रियता खडी बोली की विजय भारती सिद्ध हुई। वस्तुतः द्विवेदीयुगीन काव्य का इतिहास साक्षी है कि खडी बोली अपरिपक्वता,

अव्यवस्था और अमार्दव से किस भाँति परिपक्वता, व्यवस्था और मार्दव को पहुँची।"

द्विवेदी जी के प्रयत्नो से भाषा व्याकरण सम्मत तो हो ही गई, उसम सस्कृत निष्ठता भी काफी मात्रा मे आ गई। हरिऔध का प्रियप्रवास प्रमाण है कि उसकी भाषा कही कही तो पूरी तरह सस्कृत प्रतीत होती है : "रूपोद्यान प्रफुल्लप्राय कलिका राकेन्दु बिम्बानना"। इतना ही नही तत्समीकरण की प्रवृत्ति इतनी बढी कि खडी बोली काव्य-भाषा के रूप में पूरी तरह प्रतिष्ठित होती चली गई

दिवस का अवसान समीप था; गगन था कुछ लोहित हो चला।
तरु शिखा पर थी अवराजती, कमलिनी कुल वल्लभ की प्रभा ।।

इस भाषा-रूप के साथ ही बोलचाल की भाषा भी प्रचलित रही है। भाषा मे यत्र-तत्र मुहावरेदानी और लोकोक्ति-प्रयोग भी मिलता है जिसके कारण उसकी प्रेषणीय क्षमता सुरक्षित रह सकी है। कही-कही सरस पदावली के साथ-साथ कर्कश पदावली भी आ ही गई है। कुल मिलाकर आलोच्य काल की भाषा शुद्ध, व्यवस्थित, व्याकरणसम्मत और सस्कृतनिष्ठ ही है।

अलकारो के प्रयोग मे भी ये कवि पर्याप्त पटु निकले। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, प्रतीक, श्लेष व स्वभावोक्ति आदि का प्रयोग इस युग मे प्रचुरता से हुआ है। जहाँ तक छदो का प्रश्न है, वह भी आलोच्य काल मे विषयो की भाँति ही विविधता लिये हुए है। कविगण दोहा, कवित्त और सवैया की परिधि से निकलकर रोला, छप्पय, कु डलिया, सार, सरसी, गीतिका, हरिगीतिका, ताटक, लावनी और वीर आदि छदो के मैदान मे भी कुशलता पूर्वक दौडे हैं। 'हरिऔध' ने तो सस्कृत के वर्णिक छदो तक को खडी बोली में ढाला। प्रिय प्रवास इसका सफल उदाहरण है। गुप्त जी की हरिगीतिका, हरिऔध की वर्णिक वृत्त, शकर की कविता, कुण्डलिया, हरिऔध, सनेही और लाला भगवान दीन ने उर्दू बहरो व छदो को वैशिष्ट्य और गौरव के साथ अपनाया है। इन सभी के साथ ही अनुवाद कला भी इस काल मे पर्याप्त विकसित हुई। सरस्वती पत्रिका मे अग्रेजी कविताओ के अनुवाद छापे गये और द्विवेदी जी के प्रयत्न से इस कार्य को पर्याप्त प्रोत्साहन मिला। श्रीधर पाठक, द्विवेदी जी और गौरीदत्त वाजपेयी आदि ने इस क्षेत्र मे प्रशसनीय कार्य किया। निश्चय ही यह अपने समय का परिष्कार काल था।

अस्तु, जागृति के नवोन्मेष और परिष्कार के इस युग म सांस्कृतिक पुनरुत्थान, राष्ट्रीयता, सामाजिकता, बौद्धिकता और उच्चादर्शों की प्रतिष्ठा हुई। भाषा परिष्कृत हुई तथा विविध काव्य-रूपो और शैलियो का विकास हुआ।

☐

4

- सीमांकन और नामकरण
- परिवेश और प्रभाव
- अर्थ और परिभाषा
- प्रवृत्ति-विश्लेषण

भावगत प्रवृत्तियाँ
वैचारिक प्रवृत्तियाँ
शैल्पिक प्रवृत्तियाँ
समाकलन

छायावाद रहस्यवाद नहीं है। उसमे अतीत के प्रति आसक्ति तो है, पर पलायन कहीं नहीं है। वह तपस्या को नहीं, जीवन को महत्व देने वाला काव्य है, पर उसमे भीड़ भड़क्का नहीं है। एक शात, निर्मल और सूक्ष्म दृष्टि है।

छायावाद जीवन के प्रति एक विशेष भावात्मक दृष्टिकोण है। उसमे अनुभूति, सवेग आवेग और मनोवेगो का प्रसार ज्यादा है। अत उसका कल्पना कातार भव्य, दिव्य और अद्वितीय है जिसमे प्रवेश करते ही मनश्चेतना के शिखरों से बरसते शुभ्रकरण हमे भिगो देते हैं। 'छायावाद ने जीवन के सूक्ष्मतम मूल्यो की पुन प्रतिष्ठा द्वारा नवीन सौन्दर्य चेतना जगाकर एक वृहत समाज की अभिरुचि का परिष्कार किया, जिसने उसकी वस्तुमात्र पर अटक जाने वाली दृष्टि पर धार रख कर उसको इतना नुकीला बना दिया कि हृदय के गहनतम गह्वरो मे प्रवेश कर सूक्ष्म से सूक्ष्म और तरल से तरल भाव वीचियों को पकड सके, जिसने जीवन की कुण्ठाओं को अनन्त रग वाले स्वप्नों मे गुदगुदा दिया जिसने भाषा को नवीन हाव भाव, नवीन अश्रु हास और नवीन विभ्रम कटाक्ष प्रदान किये, जिसने हमारी कला को असख्य अनमोल छायाचित्रों से जगमग कर दिया और अन्त मे जिसने 'कामायनी' का समृद्ध रूपक 'पल्लव' और 'युगांत' की कला नीरजा' के अश्रु सिक्त गीत, 'परिमल' और 'अनामिका' की अम्बर चुम्बी उड़ान दी उस कविता का गौरव अक्षय है।"

डॉ० नगेन्द्र

4 छायावादी काव्य

आधुनिक कविता के इतिहास मे छायावाद एक ऐसा नाम है जो अनेक आरोपो-प्रत्यारोपो की प्रहारक भाषा की चोट सहकर भी अपनी व्यक्तिमत्ता को सुरक्षित रख सका है। सामान्यत इसे दो महायुद्धो के मध्य प्रवाहित कविता की सर्वाधिक चेतन और कलात्मक धारा कहा जाता है। इसका आविर्भाव आकस्मिक नही है। यह अपने पूर्ववर्ती साहित्य की प्रतिक्रिया और तत्कालीन जीवन-मूल्यो की शक्ति, क्रान्ति और सीमाओ से प्रेरित स्वातन्त्र्यबोध के परिणामस्वरूप विकसित काव्य धारा है। शृ गार भक्ति और राष्ट्रीयता की त्रिवेणी मे स्नात होकर भारतेन्दु का काव्य भले ही पूरी तरह रीतियुगीन चेतना से मुक्ति न पा सका हो, किन्तु महावीरप्रसाद द्विवेदी का युग जागृति, परिष्कार और अनुशासनप्रियता के कारण क्रान्तिकारी बदलाव लेकर आया। शृ गार का साम्राज्य लुट गया और जब कु जो के सरस प्रेमालिगन नैतिकता और सदाशयता के वृत्त मे घिरते गये तब साहित्य-सर्जक का द्विधाग्रस्त मानस न केवल प्रश्निल हो उठा, अपितु भविष्य के प्रति सशकित भी हो उठा। उसने एक नजर अतीत पर डाली तो वह मुस्करा उठा, वर्तमान को देखा तो चौंक गया और भविष्य पर नजर जमाई तो वह अपने मौन मे भी अकुला उठा। मुस्कराने, चौंकने और अकुलाने की स्थितियो को एक साथ अनुभव करने के कारण सवेदनशील कवि का अन्तस् चीत्कार कर उठा। वह बाहर से क्षुब्ध होकर अन्तर्यात्रा पर निकल पडा और इस यात्रा मे उसने जो पाया वही कविता मे छायावाद कहलाया। 'छायावाद' के अन्तस् मे राग-सौन्दर्य था, मस्तिष्क मे प्रश्न थे और वाणी मे अभिव्यजना की क्षमता थी। स्थूल सोपानो को छोडकर सूक्ष्म शिखरो पर जाकर विश्वमानवता का अलख जगाने वाली यह कविता शिल्प मे भी अभिनव रही है।

सीमाकन और नामकरण

छायावाद का प्रारम्भ और सीमाकन वर्षो के हिसाब से सन् 1918 से 1938 तक किया जा सकता है। यो बीस वर्ष का यह समय कोई लक्ष्मण रेखा नही है कि इससे दो चार वर्ष पहले और बाद मे न जाया जा सके। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी इस काव्यधारा का प्रारम्भ सन् 1918 ही स्वीकार किया है। छायावाद के रग ढग की कविताओ का सृजन-वर्ष भी यही है। निराला, पत और प्रसाद ने लगभग इन्ही वर्षो मे लिखना प्रारम्भ किया था। सन् 1916 म निराला की जुही की कली' और 'पत' के 'पल्लव' की कुछेक कविताए प्रकाश मे आ चुकी थी।

ये वर्ष न केवल उथल-पुथल के द्योतक हैं, अपितु सामाजिक परिवर्तन के भी प्रतीक रहे हैं। यही कारण है कि छायावाद का आविर्भाव अपने मोड़ में अनेक नवीनताएँ लेकर आया। यों भी ये वर्ष (1918 से 1938) आधुनिक भारतीय इतिहास में एक नये और उल्लेख्य मोड के कारण युगांतर के गवाह है। समाज, धर्म, राजनीति, विज्ञान और साहित्य सभी इसके कालावधि मे परिवर्तित और नवीनीकृत हुए हैं। *1918 मे 'झरना' का प्रकाशन हो चुका था। उसमे छायावादी चेतना के रंगों को* देखकर ही आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने उसे 'छायावाद की प्रयोगशाला का प्रथम आविष्कार कहा था। तबसे लेकर 1935-36 तक छायावाद का वैभवकाल माना जा सकता है। एक प्रकार से 'झरना' से 'कामायनी' तक के वर्षों को छायावादी कविता की सीमा स्वीकारा जा सकता है। 'कामायनी' 1935 म प्रकाशित हुई और 1936 मे प्रान्तो मे काँग्रेसी मन्त्रिमण्डल स्थापित हुए। इसके साथ ही एक घटना और घटी और वह यह थी कि ब्रिटिश शासको ने भारतीय प्रतिनिधियो का बिना विश्वास प्राप्त किये भारत के विश्व युद्ध मे शामिल होने की घोषणा करदी। परिणामत *काँग्रेसी मन्त्रिमण्डलो ने त्याग पत्र दे दिये। इससे भी यही जाहिर होता है कि 1936* से 1939 तक के वर्षों मे आधुनिक भारतीय इतिहास एक नये मोड पर आ गया था। उधर स्वय छायावादी कवि भी यह अनुभव कर रहे थे कि अब भावुकता, रंगीनी और छायावादी चेतना से काम नही चल पायेगा। सुमित्रानंदन पंत का 'युगांत' (1936) और 'निराला' की 'अनामिका' म अनेक ऐसी कविताएँ हैं जो छायावादी जमीन से हटकर लिखी गई हैं। इन बातो से स्पष्ट है कि छायावाद की सीमा सन् 1938 तक मानना ही श्रेयस्कर है।

छायावाद की सीमा रेखा के निर्णय के बाद यह प्रश्न सामने आता है कि आखिर इसे छायावाद ही क्यों कहा गया है ? बीस वर्ष की अवधि म प्रचुर साहित्य *लिखा गया है। अनेक पत्र पत्रिकाओं के प्रकाशन ने साहित्य को विकसित और प्रव-*र्धित होने का अवसर दिया। साहित्य सामाजिक उद्देश्य का वाहक बना। इस अवधि में पंत,प्रसाद और निराला ने भी विपुल साहित्य लिखा और माखनलाल चतुर्वेदी, रामनरेश त्रिपाठी व बालकृष्ण शर्मा नवीन ने भी युग सापेक्ष रचनाएँ लिखी। छायावादियो का लक्ष्य मात्र काव्य साधना था और चतुर्वेदी, त्रिपाठी व नवीन जी *युगीन आन्दोलनो से अधिक प्रभावित थे। इसके अतिरिक्त बच्चन, नरेन्द्र शर्मा और* अंचल भी प्रणय की लौकिक अनुभूतियो को कवितावद्ध कर रहे थे। जब कविता त्रिमुखी थी तो फिर ऐसा कौनसा कारण है जो इस काल खण्ड को छायावादी काव्य कहने को प्रेरित करता है ? हमारी समझ मे इस कालखण्ड को छायावादी काल कहने का प्रमुख कारण यह है कि छायावादी चेतना ही इस अवधि मे सब पर हावी रही है। कवित्व,सांस्कृतिक सदर्भ और युग बोध की दृष्टि से भी छायावादी रचनाएँ शीर्षस्थ रही हैं। ये तीनो तत्व अन्य छायावादातर रचनाओं मे समन्वित रूप से नही

मिलते हैं। अनुभूति की तीव्रता, कल्पना की विवृति, सूक्ष्मता और शैल्पिक उत्कर्ष छायावादी रचनाओं म ही अधिक मिलता है और ये ही वे रचनाएँ हैं जिनम प्राचीन भारतीय परपरा के जीवत तत्व समाविष्ट हैं। प्रभाव की दृष्टि से देखें तो भी छायावादी चेतना वलयित कविताओं म ही मर्म को छूने की क्षमता है और इन्ही की प्रभाव परिधि विस्तृत है। इन सबके ऊपर एक बात यह भी है कि छायावादी काव्य मे ही अपने युग जीवन की समग्रता को अभिव्यक्ति मिली है। इसमे ही जीवन क अनुकरणीय आदर्श और अविस्मरणीय प्रसग नियोजित हुए हैं। हमारे इस मत का प्रमाणीकरण 'अकेली' 'कामायनी' से हो सकता है। बिखरी हुई शक्तियों को समीकृत करके 'विजयिनी मानवता' का सदेश देने वाली, नारी को वासना-पक से निकालकर अर्चना के आसन पर बिठाने वाली, कल्पना के रगमहल मे लेजाकर आशा के पालने मे झुलाने वाली, भाषिक शक्तियो के सूक्ष्मातिसूक्ष्म स्तरो का उद्घाटन करन वाली, मनुष्य को अकर्मण्यता के माहौल से निकालकर लोक भूमि पर लाकर प्रवृत्ति मार्ग का रास्ता दिखाने वाली और सास्कृतिक प्रतिमानो का अन्वेषण करने की प्रेरणा दने वाली छायावादी कविता ही है। अत इस कालखण्ड को छायावादी कविता कहना सार्थक भी है और औचित्यपूर्ण भी।

परिवेश और प्रभाव :

युग कोई भी हो अपने समय से आँखें मूँदकर नही चल सकता है। उसकी दृष्टि-दर्शना म वह सब आ सिमटता है जो आस-पास मँडरा रहा होता है। क्या राजनीति, क्या धर्म, क्या समाज और क्या साहित्य सभी युग विशेष की सीमा के छोरो का अपन मे बाँध लेता है। युग साहित्य से और साहित्य युग से प्रेरित, प्रभावित और आन्दोलित होता ही है। जब छायावादी कविता ने पलकें खोली तब राजनैनिक क्षितिज पर प्रथम महायुद्ध जैसी घटना घट चुकी थी। स्वतत्रता का आन्दोलन नई करवट ले रहा था। अत अब तक वे स्थूल प्रयत्न आतरिक सघर्ष का सहारा पाकर सूक्ष्मता की ओर बढने लगे थे। इस सूक्ष्मता को अधिकाधिक मनोहारी एव व्यक्तित्व विकास का साधन बनाने मे गाधी की सत्य, अहिंसा और असहयोग की सूक्ष्म शक्तियो का प्रयोग होने लगा था। यह प्रयत्न कुछ समय तक लडखडाते कदमो स चला, किन्तु अनुकूल पर्यावरण पाकर इन शक्तियो का विकास हुआ। निराशा और हताशा की सीमाएँ टूटने लगी और जनमानस आतरिक यात्रा पर चल पडा। फलत छायावाद मे एक सीमा तक निराशा का स्वर भी सुना जा सकता है, किन्तु यह निराशा सार्वत्रिक नही थी। इसके मूल मे वैयक्तिक मनोभग्नता और आशा के मार्ग में पडने वाली वे बाधाएँ थी जो गाधी के सिद्धान्तो के मार्ग मे दीवार बनकर आई थी। गाधी जी द्वारा चलाया गया राष्ट्रीय-चेतना का आन्दोलन जब व्यापक और गहरा हुआ तो सत्याग्रह के मत्र ने उसमे अतिरिक्त शक्ति भरने का कार्य किया। एक ओर तो यह सब हो रहा था और दूसरी ओर ब्रिटिश सरकार की स्वार्थी नीतियाँ नये-नये रूपो म सामने आती जा रही थी। ये स्वार्थी नितियाँ ही

जब दमन और शोषण की पराकाष्ठा को पहुँची तो देश का माहौल परिवर्तन और स्वच्छंद राहों का अन्वेषण करने लगा। स्थिति बदलती गई; दृष्टि धुलती गई और उसमें नये भावों का रंग चमकने लगा। जो छायावादी कवि स्वच्छंदता का समर्थक बनकर आया था, वह रागात्मक संवेदन और मानवीय स्वातंत्र्य की पुकार तो लगाता रहा, किन्तु राजनैतिक आन्दोलनों के प्रति उदासीन ही रहा। इस उदासीनता के मूल में इन कवियों की वैयक्तिकता की भावना रही है। सबसे बड़ा आश्चर्य तो तब होता है जबकि छायावादी चेतना के कवि अपने ही पार्श्व में घटित जलियाँवाला काण्ड, भगतसिंह की फाँसी, साइमन-कमीशन-बहिष्कार, नमक कानून-भंग जैसी घटनाओं के प्रति एक भी पंक्ति नहीं लिख पाये। इसके और जो भी कारण रहे हों, इतना निश्चित है कि छायावादियों की राग-भावना और कल्पना ने उन्हें इस राजनैतिक परिदृश्य के प्रति सतर्क नहीं होने दिया।

सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों की ओर ध्यान दें तो एक बात साफ नजर आती है कि उस समय सामन्तशाही व्यवस्था का अंत हो गया था और अंग्रेजों के संपर्क के कारण भारत में नयी पूँजीवादी व्यवस्था विकसित हो गई थी। पूँजीवाद विकसित हुआ तो व्यक्ति स्वातंत्र्य की धारणा भी बलवती हुई। इसी बलवती धारणा को वैयक्तिकता के रूप में हम छायावाद में भी देख सकते हैं। ऐसी स्थिति में छायावाद में जो आत्मनिष्ठता मिलती है, उसे मात्र द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मक काव्य की प्रतिक्रिया नहीं माना जा सकता है। उसमें तत्कालीन आर्थिक परिस्थितियों के कारण उद्भूत व्यक्ति स्वातंत्र्य की भावना की काव्यपरक अभिव्यंजना भी शामिल है। नवीन शिक्षा पद्धति ने भी छायावाद को प्रेरित एवं पोषित किया। नयी शिक्षा ज्ञान-विज्ञान का क्षेत्र लेकर आई थी जिससे शिक्षित युवकों में प्राचीन एवं परंपरागत मान्यताओं के प्रति अविश्वास का भाव गहरा हुआ। स्पष्ट ही नयी पीढ़ी वोल्टेयर और शेले जैसे विचारकों से जुड़ती गई और इसी जुड़ने में वह स्वतंत्रता का स्वप्न देखने लगी। उसके स्वप्नों, इच्छाओं और मनोभावों ने नई अभिव्यंजना का पथ खोजना प्रारम्भ कर दिया। यही कारण है कि इस युग के कवियों ने अंग्रेजी रोमांटिक काव्य में व्यक्त भावों को अपनी स्नेहिल दृष्टि प्रदान की, किन्तु उनका प्रत्यक्ष जीवन इससे सामंजस्य नहीं बिठा पा रहा था। अंग्रेजों के शासन काल में अभिव्यक्ति की यह स्वतंत्रता कोई मार्ग नहीं खोज पा रही थी। इस असमर्थता और अक्षमता का कारण थी देश की राजनैतिक परिस्थितियाँ।

अंग्रेजों का दमन-चक्र घूम रहा था—बिना रुके और बिना किसी बाधा के। ऐसी स्थिति में मन में अंकुरित आजादी और स्वतंत्र व्यक्तित्व के भाव साकार होते नहीं दीखते थे। स्पष्ट ही एक ओर तो वैयक्तिक स्वतंत्रता की भावना प्रबल थी और दूसरी ओर शासन का प्रबल पाश जीवन के विविध स्वच्छंदता भी पहलुओं को जकड़े हुए था। इसी अन्तर्विरोध का मनोवैज्ञानिक परिणाम कुंठा, घुटन, निराशा और मानसिक क्षोभ बनकर सामने आया। कवि कलाकारों का संवेदना प्रवण

मानस क्रमश पलायनवादी, अन्तर्मुखी और निराशा विजडित होता गया। इतना ही नही अभिव्यक्ति भी लाक्षणिक, प्रतीकात्मक और अस्पष्ट होती गई। वस्तुत स्वच्छदता और व्यक्ति-स्वतत्र्य की भूख जब प्रत्यक्ष जीवन म शान्त, सार्थक और सफल नही हो पाई तो उसने काव्य जगत मे प्रवेश किया। परिणामस्वरूप विषय शैली और भाषा आदि के विरुद्ध तीव्र विद्रोह फूट पडा। यही वह अन्तर्विरोध है जो छायावाद मे दुख और निराशा के स्वरो मे अभिव्यक्त हुआ है और दूसरे छोर पर यही अन्तर्विरोध प्रकृतिप्रेम, स्वतत्रता और देशभक्ति की अभिव्यजना की ओर अग्रसर हुआ है।

छायावाद बीसवी सदी के दो दशको की भारतीय सास्कृतिक चेतना, राष्ट्रीय चेतना और पुनरुत्थान की काव्यात्मक परिणति है। इसम जो स्वच्छदतावादी विद्रोह अभिव्यक्त हुआ है वह पर्याप्त महत्व रखता है। पूँजीवादी व्यवस्था ने यदि व्यक्तिवादी दृष्टि को विकसित किया तो इसमे सहयोग करने का काय राष्ट्रीय-सास्कृतिक चेतना ने भी किया। इस चेतना के वाहक व्यक्तित्व गाधी के दर्शन का भी विशेष महत्व है। विद्रोह की जो भावना छायावाद म मिलती है वह पर्याप्त सयमित और अनुशासित है। इसी सयम और अनुशासन के कारण इस काव्यधारा मे पर्याप्त साकेतिकता दिखाई देती है जिसे भ्रमवश कतिपय समीक्षको ने 'रहस्यवाद' समझ लिया है। छायावाद का एक पक्ष दर्शन से भी जुडा हुआ है। इस दार्शनिकीकरण और मानवीयता के मूल मे देश राष्ट्रीय चेतना और समाज की नैतिकता को माना जा सकता है। धर्म और दर्शन के क्षेत्र मे इस युग की अनेक विभूतियो का प्रभाव भी छायावाद के विकास की कहानी कहता है। स्वामी दयानद, रामकृष्ण परमहस, विवेकानद, गाधी, टैगोर और अरविन्द जैसे महान् व्यक्तियों का अविर्भाव हुआ। इन विभूतियो ने स्थूल और सकीर्ण हिन्दुत्व का विरोध करके व्यापक धरातल पर विश्व मानवतावाद या विश्व धर्म की प्रतिष्ठा की। राष्ट्रीयता और विश्वमानवतावाद की धारणा का कल्पवृक्ष छायावादियो को रास आ गया। परिणामस्वरूप छायावादियो की वाणी से 'विजयिनी मानवता हो जाये' का मन्त्र प्रस्फुटित हुआ। पुनर्जागरण के व्यापक आन्दोलन के सक्रिय नेताओ ने देश की अतीत परपरा से मूल्यवान तत्वो की खोज की और जीवन व समाज को नयी राह दिखाई। वैयक्तिक स्तर पर ये कवि भले ही उक्त सुधारको व मानवतावाद के पोषको स प्रत्यक्ष प्रभावित न हुए हो किन्तु उनके मानस मे इनका गहरा प्रभाव रहा है। गाधीवाद से प्रभावित कवियो की तो एक लम्बी सूची है।

धर्म के साथ ही दर्शन की पीठिका पर छायावाद अद्वैत व सर्वात्मवाद का ऋणी है। छायावाद की कवयित्री महादेवी वर्मा ने ठीक ही कहा है कि "छायावाद का कवि धर्म के अध्यात्म से अधिक दर्शन के ब्रह्म का ऋणी है जो मूर्त और अमूर्त विश्व को मिलाकर पूर्णता पाता है। बुद्धि के सूक्ष्मधरातल पर कवि ने जीवन की अखण्डता का भावन किया, हृदय की भाव-भूमि पर उसने प्रकृति मे बिखरी सौन्दर्य-सत्ता की रहस्यमयी अनुभूतियो की और दोनो के साथ स्वानुभूत सुख-दुखो को मिला-

जब दमन और शोषण की पराकाष्ठा को पहुँचो तो देश का माहौल परिवर्तन और स्वच्छंद राहो का अन्वेषण करने लगा । स्थिति बदलती गई, दृष्टि धुलती गई और उसमे नये भावो का रग चमकने लगा । जो छायावादी कवि स्वच्छंदता का समर्थक बनकर आया था, वह रागात्मक सवेदन और मानवीय स्वातंत्र्य की पुकार तो लगाता रहा, किन्तु राजनैतिक आन्दोलनो के प्रति उदासीन ही रहा । इस उदासीनता के मूल मे इन कवियो की वैयक्तिकता की भावना रही है । सबसे बडा आश्चर्य तो तब होता है जबकि छायावादी चेतना के कवि अपने ही पार्श्व मे घटित जलियाँवाला काण्ड, भगतसिह को फाँसी, साइमन-कमीशन-बहिष्कार, नमक कानून-भग जैसी घटनाओ के प्रति एक भी पक्ति नही लिख पाये । इसके और जो भी कारण रहे हो, इतना निश्चित है कि छायावादियो की राग-भावना और कल्पना ने उन्हे इस राजनैसिक परिदृश्य के प्रति सतर्क नही होने दिया ।

सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियो की ओर ध्यान दें तो एक बात साफ नजर आती है कि उस समय सामन्तशाही व्यवस्था का अंत हो गया था और अंग्रेजो के सपर्क के कारण भारत मे नयी पूँजीवादी व्यवस्था विकसित हो गई थी । पूँजीवाद विकसित हुआ तो व्यक्ति स्वातंत्र्य की धारणा भी बलवती हुई । इसी बलवती धारणा को वैयक्तिकता के रूप मे हम छायावाद मे भी देख सकते हैं । ऐसी स्थिति म छायावाद मे जो आत्मनिष्ठता मिलती है, उसे मात्र द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मक काव्य की प्रतिक्रिया नही माना जा सकता है । उसमे तत्कालीन आर्थिक परिस्थितियो के कारण उद्भूत व्यक्ति-स्वातंत्र्य की भावना की काव्यपरक अभिव्यजना भी शामिल है । नवीन शिक्षा पद्धति ने भी छायावाद को प्रेरित एव पोषित किया । नयी शिक्षा ज्ञान-विज्ञान का क्षेत्र लेकर आई थी जिससे शिक्षित युवको मे प्राचीन एव परपरागत मान्यताओ के प्रति अविश्वास का भाव गहरा हुआ । स्पष्ट ही नयी पीढी वोल्टेयर और शेले जैसे विचारको से जुडती गई और इसी जुडने मे वह स्वतत्रता का स्वप्न देखने लगी । उसके स्वप्नो, इच्छाओ और मनोभावो ने नई अभिव्यजना का पथ खोजना प्रारम्भ कर दिया । यही कारण है कि इस युग के कवियो ने अंग्रेजी रोमाटिक काव्य मे व्यक्त भावो को अपनी स्नेहिल दृष्टि प्रदान की, किन्तु उनका प्रत्यक्ष जीवन इससे सामजस्य नही बिठा पा रहा था । अंग्रेजो के शासन काल मे अभिव्यक्ति की यह स्वतत्रता कोई मार्ग नही खोज पा रही थी । इस असमर्थता और अक्षमता का कारण थी देश की राजनैतिक परिस्थितियाँ ।

अंग्रेजो का दमन-चक्र घूम रहा था—बिना रुके और बिना किसी बाधा के । ऐसी स्थिति मे मन मे अकुरित आजादी और स्वतत्र व्यक्तित्व के भाव साकार होते नही दीखते थे । स्पष्ट ही एक ओर तो वैयक्तिक स्वतत्रता की भावना प्रबल थी और दूसरी ओर शासन का प्रबल पाश जीवन के विविध स्वच्छदता की पहलुओ को जकडे हुए था । इसी अन्तर्विरोध का मनोवैज्ञानिक परिणाम कुठा, घुटन, निराशा और मानसिक क्षोभ बनकर सामने आया । कवि कलाकारो का सवेदना प्रवण

मानस क्रमश पलायनवादी, अन्तर्मुखी और निराशा विजडित होता गया। इतना ही नही अभि यक्ति भी लाक्षणिक, प्रतीकात्मक और अस्पष्ट होती गई। वस्तुत स्वच्छदना और व्यक्ति-स्वतत्र्य की भूख जब प्रत्यक्ष जीवन मे शान्त, सार्थक और सफल नही हो पाई तो उसने काव्य जगत मे प्रवेश किया। परिणामस्वरूप विषय शैली और भाषा आदि के विरुद्ध तीव्र विद्रोह फूट पडा। यही वह अन्तर्विरोध है जो छायावाद में दुख और निराशा के स्वरो मे अभिव्यक्त हुआ है और दूसरे छोर पर यही अन्तर्विरोध प्रकृतिप्रेम, स्वतन्त्रता और देशभक्ति की अभिव्यजना की ओर अग्रसर हुआ है।

छायावाद बीसवी सदी के दो दशको की भारतीय सास्कृतिक चेतना, राष्ट्रीय चेतना और पुनरुत्थान की काव्यात्मक परिणति है। इसमे जो स्वच्छदतावादी विद्रोह अभिव्यक्त हुआ है वह पर्याप्त महत्व रखता है। पूँजीवादी व्यवस्था ने यदि व्यक्ति-वादी दृष्टि को विकसित किया तो इसमे सहयोग करने का कार्य राष्ट्रीय-सास्कृतिक चेनना ने भी किया। इस चेतना के वाहक व्यक्तित्व गाधी के दर्शन का भी विशेष महत्व है। विद्रोह की जो भावना छायावाद मे मिलती है वह पर्याप्त सयमित और अनुशासित है। इसी सयम और अनुशासन के कारण इस काव्यधारा मे पर्याप्त साकेतिकता दिखाई दती है जिसे भ्रमवश कतिपय समीक्षको ने 'रहस्यवाद' समझ लिया है। छायावाद का एक पक्ष दर्शन से भी जुडा हुआ है। इस दार्शनिकीकरण और मानवीयता के मूल मे देश राष्ट्रीय चेतना और समाज की नैतिकता को माना जा सकता है। धर्म और दर्शन के क्षेत्र मे इस युग की अनेक विभूतियो का प्रभाव भी छायावाद के विकास की कहानी कहता है। स्वामी दयानद, रामकृष्ण परमहस, विवेकानद, गाधी, टैगोर और अर-विन्द जैसे महान् व्यक्तियो का अविर्भाव हुआ। इन विभूतियो ने स्थूल और सकीर्ण हिन्दुत्व का विरोध करके व्यापक धरातल पर विश्व मानवतावाद या विश्व धर्म की प्रतिष्ठा की। राष्ट्रीयता और विश्वमानवतावाद की धारणा का कल्पवृक्ष छाया-वादियो को रास आ गया। परिणामस्वरूप छायावादियो की वाणी से 'विजयिनी मानवता हो जाये' का मन्त्र प्रस्फुटित हुआ। पुनर्जागरण के व्यापक आन्दोलन के सक्रिय नेताओ ने देश की अतीत परपरा से मूल्यवान तत्वो की खोज की और जीवन व समाज को नयी राह दिखाई। वैयक्तिक स्तर पर ये कवि भले ही उक्त सुधारको व मानवतावाद के पोषको से प्रत्यक्ष प्रभावित न हुए हो किन्तु उनके मानस मे इनका गहरा प्रभाव रहा है। गाधीवाद से प्रभावित कवियो की तो एक लम्बी सूची है।

धर्म के साथ ही दर्शन की पीठिका पर छायावाद अद्वैत व सर्वात्मवाद का ऋणी है। छायावाद की कवयित्री महादेवी वर्मा ने ठीक ही कहा है कि "छायावाद का कवि धर्म के अध्यात्म से अधिक दर्शन के ब्रह्म का ऋणी है जो मूर्त और अमूर्त विश्व को मिलाकर पूर्णता पाता है। बुद्धि के सूक्ष्मधरातल पर कवि ने जीवन की अखण्डता का भावन किया, हृदय की भाव-भूमि पर उसने प्रकृति मे बिखरी सौन्दर्य-सत्ता की रहस्यमयी अनुभूतियो को और दोनो के साथ स्वानुभूत सुख-दुखो को मिला-

कर एक ऐसी काव्य सृष्टि उपस्थित कर दी जो प्रकृतिवाद, हृदयवाद, अध्यात्मवाद, रहस्यवाद और छायावाद आदि अनेक नामो का भार सँभाल सकी" ।[1] ठीक भी है भारतेन्दु ने जहाँ काव्य मे युगबोध का सूत्रपात किया और "कहाँ करूनानिधि केसव सोए" की गुहार लगाई, द्विवेदी युग ने मैथिलीशरण और हरिऔध ने राम और कृष्ण के चरित्र का सहारा लेकर देशोद्धार के साधनापथ को प्रशस्त किया वहाँ छायावादी प्रसाद, पत, निराला और महादेवी ने शैव-दर्शन, अरविन्द दर्शन, गाधी दर्शन, अद्वैत, भक्ति वेदान्त और निर्गुण, निराकार की प्रणयानुभूति का सम्बल ग्रहण करके सामाजिक चेतना को दिशा प्रदान की। लगता है भारतेन्दु के 'केसव' ही इन उक्त दार्शनिक आस्था-बिन्दुओ मे अभिव्यक्त हुए है—भले ही प्रकारान्तर से ही सही।

छायावाद को अपनी साहित्यिक विरासत के रूप मे भारतेन्दु और द्विवेदी युगीन सदर्भ और मूल्य तो प्राप्त हुए ही; रीतियुगीन निष्क्रियता व जडता का पर्या-वरण भी प्राप्त हुआ। भारतेन्दु सामाजिक चेतना का अलख जगाते हुए एक मायने मे रीतिकालीन शृगार व अभिव्यजना की भाषायी शक्तियो से जुडे रहे। यही कारण है कि भक्ति, शृगार और राष्ट्रोद्‌बोधन की त्रिवेणी मे स्नात होकर जब द्विवेदी युग का अविर्भाव हुआ तो उसने रीतिकालीन चेतना का तीव्र विरोध किया। यह वह काव्यधारा थी जो ठोस यथार्थ व शील के प्रति अधिक आग्रही थी। विषय तो बदले ही काव्य की भाषा भी ब्रज की घनी अमराइयो मे निकलकर खडी बोली के परिष्कृत पथ पर आ गई। यही वह युग है जो छायावाद के ठीक पूर्व की स्थिति को प्रस्तुत करता है। सदाचार, शील और मर्यादा की सीमाओ मे आबद्ध द्विवेदीयुगीन काव्य नीरस और शुष्क होता गया। भाषा का पूर्ण विकसित पथ न मिल पाने के कारण भी इस युग के कवि भाषा के अन्तस् मे छिपी शक्तियो का यथेष्ट लाभ न उठा पाये। इतना ही क्यो प्रेम, काम और नारी के सम्बध से भावनायें उत्तरोत्तर दमित होती गई। यह तो नही कहा जा सकता कि नर और नारी के बीच सहज आकर्पण का तार द्विवेदी युग की मर्यादावादी धारणाओ के बोझ से टूट गया था किन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि वह अदृश्य प्राय हो गया था। यही कारण है कि इस युग मे चित्रित नारियाँ या तो सती साध्वी है या फिर वीर क्षत्राणियाँ हैं। उनका कामिनी रूप और उनके एकान्त कक्ष की मधुरवार्ता कविता मे नही आ पाई है। तात्पर्य यह है कि कविता रसिक-समुदाय के उपयोग की कला नही रह गई।

छायावादियों ने इस स्थिति को जाना, समझा और पहचाना। उन्होने कविता को काव्य-रसिको को पुन लौटाकर कला का शृगार किया। प्रतिक्रिया का दौर तीव्र से तीव्रतर होता गया और परिणामस्वरूप छायावाद मे रीतियुगीन शृंगार

---

1. महादेवी वर्मा : महादेवी का विवेचनात्मक गद्य पृ० 61

भावना के सूक्ष्म तथा स्थूल दोनो रूपो को स्वीकृति प्राप्त हुई। प्रणयानुभूतियो की व्यजना का मार्ग खुला और उसे न केवल छायावादियो ने प्रशस्त किया, अपितु राष्ट्रीय भावना के कवियो ने भी प्रणय और मस्ती के रगो से कविता को आनन्द का पर्यायत्व प्रदान किया। अत साहित्यक-पीठिका पर यह कहना उचित ही है कि छायावादी आन्दोलन द्विवेदी युगीन काव्य की कल्पनाहीनता के विरुद्ध तीखी प्रतिक्रियात्मक वाणी म किया गया विद्रोह था। यो छायावाद के जन्म और विकास मे और भी अनेक पहलू रहे हैं। तदयुगीन विविध परिस्थितियाँ, सास्कृतिक और राष्ट्रीय नवोत्थान, व्यक्तिवाद, नवीन शिक्षा-पद्धति अग्रेजी प्रभाव और अग्रेजी से प्रभावित बगला साहित्य के सम्पर्क से भी छायावाद को बल-सम्बल प्राप्त हुआ है। व्यापक धरातल पर देखें तो यह युग भारत के लिए अस्मिता की खोज का युग था। यही खोज इस काव्य मे अनेकमुखी हो गई है। वस्तुत. "इस युग के कवियों ने द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता के विरुद्ध सूक्ष्म भावनाओ की प्रतिष्ठा की तत्कालीन रूढियो और ईसाई धर्म प्रचारको के आक्षेपो के विरुद्ध अतीत भारत के प्राणवान मूल्यों की प्रतिष्ठा की, आर्थिक-राजनैतिक दासता के विरुद्ध स्वाधीनता—केवल राष्ट्रीय ही नही, मानव-मात्र की स्वाधीनता—के मूल्य की प्रतिष्ठा की, भाषा की नवीन शक्तियो को विकसित किया। इस युग की किसी काव्यधारा मे एक प्रयास प्रधान दिखाई देता है तो किसी मे दूसरा, केवल छायावादी काव्य मे तीनो का सयुक्त-समन्वित रूप से निर्वाह हुआ है।"[1]

अर्थ और परिभाषा.

द्विवेदी युग की इतिवृत्त प्रधान, गद्याभास देने वाली और बहिर्मुखी स्थूल कविताओ की प्रतिक्रिया स्वरूप छायावाद का आविर्भाव हुआ। इसके जन्म के मूल मे तत्कालीन सास्कृतिक चेतना और नवीन मानवीय चेतना का भी विशेष हाथ रहा है। तत्कालीन साहित्य—समीक्षको ने छायावाद को जितना समभा नही था, उससे कहीं अधिक उनके मनोजगत् म छायावाद नाम छा गया था। यही वजह है कि सन् 1929 के आस-पास के वर्षो तक छायावाद की व्याख्या अस्पष्ट ही रही। सामान्य तथ्य यह है कि अनागत का स्वागत पूर्व परिचय से होता है, अन्यथा वह कटु आलोचना का शिकार बनता है। छायावाद को भी पूर्व परिचय के अभाव मे दुर्दिन देखने पडे। रूढियों के प्रति विद्रोह की भावना ने प्राचीन विचारको और समीक्षको को एकबारगी झकझोर कर रख दिया। लगभग दो सौ वर्षों से चली आ रही इतिवृत्तात्मक शैली के अभ्यस्त पाठक के गले छायावादी शैली उतर नही पाई। प्रतीकात्मकता लाक्षणिकता, बिम्बात्मकता और रहस्य प्रधानता आदि की बहुलता के कारण भाषा मे दुरुहता का रग गाढा होता गया और तुकान्त कविता का प्रेमी पाठक 'छायावाद' की भाव-भीनी और मदिर मार्वपण युक्त अतुकान्त कविता से अपना तालमेल नही बिठा पाया। ऐसी स्थिति मे छायावाद की कतिपय समीक्षको ने 'निर्मल ब्रह्म की

1 हिन्दी साहित्य का इतिहास : सम्पादक डॉ० नगेन्द्र पृष्ठ 541

विशद छाया' माना तो कुछ के द्वारा उसे 'अन्योक्ति पद्धति,' 'अस्पष्टता' और सगी का अपूर्ण एकीकरण' की सज्ञा से भी अभिहित किया गया। अत परिभाषा के दृष्टि से देखें तो छायावाद पर्याप्त धनी दिखाई देता है। अनेक विद्वानों ने इसे अपने अपने ढग स समझाया है। परिभाषीकरण की यह प्रक्रिया प्रमुखत आचार्य रामचन्द्र शुक्ल से प्रारभ होती है। कतिपय प्रमुख मत एव परिभाषाएँ यहाँ दी जा रही हैं

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल "छायावाद शब्द का प्रयोग दो अर्थों म समझना चाहिए। एक तो रहस्यवाद के अर्थ मे, जहाँ उसका सम्बन्ध काव्यवस्तु से होता है। ˙ ˙˙ छायावाद का दूसरा प्रयोग काव्य-शैली या पद्धति विशेष के व्यापक अर्थ में है।˙ छायावाद का सामान्यत अर्थ हुआ प्रस्तुत के स्थान पर उसकी व्यजना करन वाली छाया के रूप मे अप्रस्तुत का कथन।"

उपर्युक्त कथन के सन्दर्भ मे यह कहा जा सकता है कि आचार्य शुक्ल ने 'छायावाद' को अभिव्यजना की एक शैली विशेष स्वीकार किया है। साथ ही वे छायावाद और रहस्यवाद को अभिन्न भी मानते थे।

2 आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र "अभिव्यजना का नूतन विधान छायावाद का प्रमुख लक्षण रहा है।" निश्चय ही आचार्य मिश्र ने सामाजिक रूढ़ियों के विरोध को स्वच्छदतावाद और काव्य शैली के प्रति किये गये विरोध को छायावाद स्वीकार किया गया है। इसमे स्पष्ट सकेतित है कि ये भी अभिव्यजना की पद्धति विशेष को ही छायावाद मानते हैं। मेरी धारणा है कि अभिव्यजना और विषयवस्तु पृथक होकर भी अविभाज्य एव अन्योन्याश्रित हैं। अत छायावाद को मात्र एक अभिव्यजना-शैली मानना अनौचित्यपूर्ण है।

3 डॉ० रामकुमार वर्मा "परमात्मा की छाया आत्मा मे, आत्मा की छाया परमात्मा मे पडने लगती है, तभी छायावाद की सृष्टि होती है।"

4 शान्तिप्रिय द्विवेदी "छायावाद एक दार्शनिक अनुभूति है।"

डॉ० वर्मा और शातिप्रियजी की परिभाषाओ मे छायावाद को रहस्यवाद का ही पार्श्ववर्ती स्वीकार किया गया है। यह स्वीकृति भ्रमजनित है और सकीर्णता को प्रस्तुत करती है।

5. डॉ० केसरीनारायण शुक्ल डॉ० शुक्ल ने आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के मत का ही अनुमोदन किया है। उनके मूल शब्द इस प्रकार हैं "छायावाद का अपना इतिहास है। इसका मूल बगला साहित्य के 'छायासदृश' पद मे मिलता है। ब्रह्म समाज की उपासना का ढग रहस्यात्मक है। इसके उपासना के गीतो मे उस प्रियतम की झलक का वर्णन होता है जिसका उपासक को कभी-कभी आशिक आभास मात्र मिलता है। उपासक के लिए प्रतीको का प्रयोग आवश्यक हो जाता है क्योकि इस माध्यम द्वारा वह दिव्य ज्योति को धूमिल बना कर आत्मा के साक्षात्कार के उपयुक्त बनाता है। उस प्रियतम की अपूर्व प्रतिकृति होने के कारण इन प्रतीकों (छाया सदृश) से युक्त कविता का नाम छायावादी कविता पडा।"

6 आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी आचार्य द्विवेदी का मत है कि "छायावाद के मूल में पाश्चात्य रहस्यवादी भावना अवश्य थी। इस श्रेणी की (छायावाद) मूल प्रेरणा अंग्रेजी की रोमांटिक भावधारा की कविता से प्राप्त हुई थी और इसमें संदेह नहीं कि उक्त भावधारा की पृष्ठभूमि में ईसाई सतो की रहस्यवादी साधना अवश्य थी।"

7. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी वाजपेयीजी के मतानुसार "मानव तथा प्रकृति के सूक्ष्म, किन्तु व्यक्त सौन्दर्य में आध्यात्मिक छाया का भाव छायावाद की सर्वमान्य व्याख्या हो सकती है।"

8. डॉ० नगेन्द्र : "छायावाद स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह है। वह एक विशेष प्रकार की भाव-पद्धति है और जीवन के प्रति एक विशेष प्रकार का भावात्मक दृष्टिकोण है।"

9. डॉ० रामविलास शर्मा 'छायावाद स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह नहीं रहा है, वरन् थोथी नैतिकता, रूढ़िवाद और सामन्ती साम्राज्यवादी बंधनों के प्रति विद्रोह रहा है। परन्तु यह विद्रोह मध्यवर्ग के तत्वावधान में हुआ था, इसलिए उसके साथ मध्यवर्गीय असंगति, पराजय और पलायन की भावना भी जुडी हुई है।"

10 गंगाप्रसाद पाण्डेय "छायावाद वस्तुवाद और रहस्यवाद के बीच की कड़ी है।"

11 महादेवी वर्मा 'छायावाद स्थूल की प्रतिक्रिया में उत्पन्न हुआ है। अतः स्थूल को उसी रूप में स्वीकार करना उसके लिए सम्भव न हुआ। उसने जीवन के इतिवृत्तात्मक यथार्थ चित्र नहीं दिये क्योंकि वह स्थूल से उत्पन्न सूक्ष्म सौन्दर्य-सत्ता की प्रतिक्रिया थी, अप्रत्यक्ष सूक्ष्म के प्रति उपेक्षित यथार्थ की नहीं, जो आज की वस्तु है। उसका मूल दर्शन सर्वात्मवाद है। छायावाद तत्वतः प्रकृति के बीच जीवन का उद्गीथ है।"

12 जयशंकर प्रसाद : 'जब वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति होने लगी तब हिन्दी में उसे छायावाद के नाम से अभिहित किया गया। . ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौन्दर्यमय प्रतीक विधान तथा उपचार-वक्रता के साथ स्वानुभूति की विवृत्ति छायावाद की विशेषताएँ हैं।"

13. सुमित्रानन्दन पंत "छायावाद भावबोध की दृष्टि से जहाँ विगत वस्तुबोध की भूमिका को छोड़कर एक ओर नवीन चैतन्य के शिखरों की ओर बढ़ा, वहाँ कलाबोध की दृष्टि से वह काव्य शास्त्रीय जड़, अलंकार युग की सौन्दर्य धारणा से अपने को मुक्त कर, सीधा प्रकृति के मुक्त-पंख प्रसारों में विचरण कर नये सौन्दर्य-उपादानों की खोज में निकल गया। . छायावाद ने अपना सौन्दर्य बोध विगत युगों के संचय स्वरूप जीर्ण खलिहानों एवं भंडारों से उधार न लेकर, उसे स्वयं नये

रूप से प्रकृति के उर्वर आंगन मे उगाया और उसकी प्राणमयी सुनहरी बालियो से अपनी नवमुग्धा काव्य-चेतना का शृ गार किया ।"

उपर्युक्त परिभाषाओ के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि छायावाद के सम्बन्ध मे विद्वानो ने पृथक्-पृथक् विचारणा प्रस्तुत की है । इन विचारणाओ से दो बातें स्पष्ट हैं एक तो यह कि छायावाद अपने पूर्ववर्ती काव्य की स्थूल और इतिवृत्त शैली के प्रति विद्रोह करके अनगिनत अपरिभाषित मूल्यो का सूक्ष्म अभिव्यजन प्रस्तुत करता है । दूसरे वह प्रकृति के विस्तृत वक्ष पर फैली उन्मुक्त सौंदर्य राशि से भाव, रग और गध की सूक्ष्म कणिकाओ को समेटता हुआ काव्य का ऐसा शृ गार करता रहा है जिसे देख, सुन और हृदयगम करके मानव का हताश, निष्क्रिय और बौद्धिक निष्प्राणता वलयित जीवन किंचित् राहत पाता रहा है । इन दो बातो के अतिरिक्त छायावाद को अध्यात्म व रहस्यवाद से जोडने का उपक्रम भ्रममात्र है । छायावाद जीवन का काव्य है । उसे जीवन से पलायन नही माना जा सकता है । कारण, छायावाद मे जीवन और जगत् के बदलते मानदण्डो के प्रति रचनात्मक व मानवीय दृष्टि रही है । इस दृष्टि दर्शना को छायावाद ने नवीन सूक्ष्म और चेतन शिल्प से सजाया सँवारा है । अत कह सकते है कि छायावाद सूक्ष्म और चेतन-शिल्प मे बँधा एक ऐसा काव्य प्रवाह है जिसम जीवन की वाह्य शक्तियो की अपेक्षा भीतरी और सूक्ष्म शक्तिया का उद्घाटन किया गया है । इस उद्घाटन म वैयक्तिक मनोभाव, सास्कृतिक दृष्टि, मानवतावादी चेतना तथा अन्य अनेक अन्त-विरोधी स्थितियो का समन्वित रूप मिलता है । भावात्मक दृष्टिकोण, दार्शनिक अनुभूति और अस्मिता की खोज से प्रेरित सास्कृतिक चेतना का बोधक यह काव्य प्रकृति की चित्रशाला मे जीवन सगीत बनकर आया है ।

'छायावाद' के प्रवर्तक के सम्बन्ध मे भी पर्याप्त विवाद रहा है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने प्रवर्तन का श्रेय 'मुकुटधर पाडे' और मैथिलीशरण गुप्त को प्रदान किया है तो कुछ लोग पत की 'उच्छ्वास' नामक कविता से छायावाद का प्रारभ मान कर पत को यह श्रेय देना चाहते हैं । इस मत के प्रमुख समर्थक आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी रहे हैं । ध्यान से देखें तो प्रसाद पत से पहले काव्य क्षेत्र मे आये । सन् 1913–14 मे ही 'इन्दु' नामक पत्रिका के माध्यम से 'प्रसाद' की जो कविताएँ सामने आयी वे छायावाद की प्रारभिक कविताएँ मानी जानी चाहिए । ये कविताएँ 'कानन-कुसुम' मे सग्रहीत हैं । इसके पश्चात् सन् 1919 मे 'झरना' का प्रकाशन हुआ । इसकी भूमिका में प्रकाशकीय वक्तव्य के माध्यम से कहा गया है "जिस शैली की कविता को हिन्दी साहित्य मे आज 'छायावाद नाम मिल रहा है उसका प्रारभ प्रस्तुत सग्रह द्वारा ही हुआ है ।" प्रभाकर माचवे और आचार्य विनयमोहन शर्मा ने भी छायावाद का प्रारभ तो सन् 1913 से स्वीकार किया है, किन्तु इसके प्रवर्तन का श्रेय उन्होने भारतीय आत्मा माखनलाल चतुर्वेदी को प्रदान किया है । मेरी धारणा है कि 'छायावाद' का प्रवर्तक प्रसाद को ही माना जाना चाहिए क्योकि प्रसाद ने

अपनी प्रारभिक कविताओ मे ही छायावादी पद्धति की रचनाएँ प्रस्तुत करदी थी और अपनी कालजयी कृति 'कामायनी' तक वे इसी भावधारा और शिल्प-सचेतना की कविताएँ लिखते रहे। पत का काव्य विकास के विविध सोपानो से गुजरा है जबकि प्रसाद की काव्य-चेतना का पथ पूर्णत छायावादी रहा है। अन्तर मे सौन्दर्य मस्तिष्क मे प्रश्नो का अम्बार और वाणी मे सूक्ष्म अभिव्यजना की क्षमता लिए प्रसाद अपने प्रभावी और प्राज्ञिक व्यक्तित्व के साथ छायावादी कविता के दिशा-निर्देशक भी बनें और बदलते परिप्रेक्ष्य के सवाहक भी। उन्होने शुभ्रवसना और सन्यासिनी बनी कविता को नये सिरे से सजाया-सवारा। उसके मुख को राग से रजित किया, अधरो मे मदिर कपन भरा, कपोलो को स्निग्ध किया और केशराशि को न केवल सचिक्करण और लहरिल बनाया, अपितु, उसमे आक्रमक सौन्दर्य भी भरा। उनके बोल मानवता के प्रचारक बने, प्रवृत्तिपथ के प्रेरक बने और वे बुद्धि और हृदय के सतुलित मार्ग से होते हुए आनद के शिखरो पर स्वर्णिम रेखा बनकर फैल गये। उनकी शब्द व्यवस्था परिष्कृत होकर सूक्ष्म अर्थो की वाहिका बनकर, लाक्षणिक, व्यजक और वक्रतापूर्ण भगिमाओ मे बदलकर जीवन, समाज और दर्शन की गुत्थियो को सुलझाने का उपयोगी माध्यम बनी। इसके लिए प्रसाद को कडी मेहनत तो करनी पडी, किन्तु वे छायावाद के प्रवर्तक भी बने और अपने श्रम का सुफल भी देख सके।

प्रवृत्ति विश्लेषण ,

मनुष्य का जीवन चक्रवत् घूमता है। यही कारण है कि कभी तो वह स्वच्छदता से ऊब कर अनेक बधनो का निर्माण करता है और कभी उनमे निरतर पिसते रहने के कारण अपनी सारी शक्ति से उन्ह तोड डालने का श्रम उठाता है। छायावाद के जन्म के मूल मे अन्य कारणो के साथ-साथ एक यह भी महत्वपूर्ण कारण रहा है। महादेवी वर्मा ने तो स्पष्ट कहा है कि "सृष्टि के बाह्याकार पर इतना अधिक लिखा जा चुका था कि मनुष्य का हृदय अपनी अभिव्यक्ति के लिए रो उठा।"[1] द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मक शैली और पवित्रतावाद व रीतिकालीन स्थूल शृगार के बढते हुए चरण इतनी तेजी से बढे कि छायावादियो को न केवल उसके प्रति विद्रोह करना पडा, अपितु वैयक्तिक प्रसार—अस्मिता की खोज का, आन्दोलन भी छोडना पडा। विद्रोह का यह स्वर कला की दृष्टि से पर्याप्त मूल्यवान है क्योकि इन कवियो ने वैयक्तिक स्वतन्त्रता को वाणी देने के लिये प्रतीको का प्रयोग किया, भाषा के ऐसे लाक्षणिक, व्यजनात्मक और वक्रतापूर्ण प्रयोग किये कि पूर्ववर्ती काव्य स्वत ही हीन से हीनतर भावना का शिकार होता गया। भाव की दृष्टि से व्यक्ति स्वातत्र्य की भावना प्रबल होती गई। फलत छायावादी कवि विश्व को अपनी आंखो से देखने का आदी हो गया और सासारिक सुख-दुख और विरह मिलन वैयक्तिक सदर्भो से जुडता गया।

---

1 महादेवी वर्मा साहित्यकार की आ-था तथा अन्य निबध पृष्ठ 65

छायावादी काव्य जीवन में वैसा कोई ठोस कार्य न कर सका जैसा कि छायावादोत्तर काव्य मे दिखाई देता है। इतने पर भी यह निर्विवाद है कि उसमे जो सौन्दर्य-चेतना विकसित हुई वह लजीली व नजाकत भरी होने के कारण जीवन के सूक्ष्म से सूक्ष्म राग-संवेदनो को उभारने मे कामयाब रही। जीवन की ठोस मिट्टी से दूर कल्पना का रगमहल सजाने वाली यह कविता जीवन को गतिशील नही बना सकी। यही कारण है कि उसकी उम्र के वर्ष उँगलियो पर गिने जा सकते हैं। खैर जो भी हो, उसका सौन्दर्य हमारे आकर्षण का प्रमुख केन्द्र रहा है। सौन्दर्य और प्रेम के रगो से मिलकर जिस छायावादी काव्य का निर्माण हुआ उसकी प्रमुख प्रवृत्तियो को भाव, विचार और शैली जैसे तीन भागो मे विभाजित करके प्रस्तुत किया जा सकता है। इस काव्यधारा की भाव क्षेत्रीय विशेषताओ मे वैयक्तिकता, प्रकृति-सौन्दर्य, नारी भावना, प्रेम भावना, कल्पना की विवृत्ति और निराशा, अवसाद और वेदना आदि को लिया जा सकता है तो विचार गत विशेषताओ म अद्वैत दर्शन (सर्वात्मवाद) मानववाद, विश्वात्म व विश्वबधुत्व आदि को परिगणित किया जा सकता है। रही शैलीगत विशेषताएँ, उनमे कोमल कात भाषा, चित्रभाषा, लाक्षणिकता, प्रतीकात्मकता, आलकारिकता, छन्दो की नवीनता और शैली की प्रगीतात्मकता को लिया जा सकता है।

वैयक्तिकता

छायावाद के भाव-सौन्दर्य मे जो तत्व आकर मिल गये हैं, उनमे व्यक्तिवादिता का स्थान पहला है। इसी व्यक्तिवादिता से प्रेरित-अनुप्रेरित होकर करुणा, प्रेम, सुख दुख और हर्ष विषाद की अनुभुतियाँ अभिव्यक्त हुई हैं। द्विवेदी युगीन कविता मे बाह्य जगत का तथ्यात्मक निदर्शन इतना अधिक था कि मानव-मन की गहन पर्तो मे दबा पडा भाव लोक भीतर ही भीतर कसमसा रहा था। छायावाद मे उसे पहली बार बाहर आकर खुलकर रोने का अवसर प्राप्त हुआ। यही कारण है कि छायावाद के भावलोक मे सबसे ऊँची और सुरीनी तान हृदय की है–उस हृदय की जिसकी गहन-गभीर बीथियो मे मानव मन अबतक भटका हुआ था। यद्यपि यह व्यक्तिवाद एक अर्थ मे भक्तिकाल और शृ गारकाल मे भी था, पर प्रच्छन्न और दूसरे प्रकार का। वहाँ वैयक्तिकता या तो ईश्वर के प्रति आत्मनिवेदन मे अभिव्यक्त हुई है या फिर प्रणय सम्बन्धो की चर्चा मे। छायावाद में पहली बार कवि ने अनुभव किया कि 'The world is too much with us" प्रसाद, पत, निराला और महादेवी सभी मे व्यक्तिवादिता का यह रूप देखा जा सकता है। इनके समक्ष कोई आवरण नही रह गया है। यही कारण है कि पूर्ववर्ती कवि जहाँ राम, कृष्ण, सीता और राधा की ओट से अपने मनोभावो को व्यक्त करते थे, वही छायावादियो ने सभी माध्यमो को हटाकर सीधे सामने आकर अपनी वैयक्तिक स्थिति परिस्थिति को प्रकाशित किया है। पत ने 'उच्छ्वास' ग्रथि और आँसू की बालिका के प्रति' मे सीधे शब्दो मे अपने प्रणयावेग को अभिव्यक्त किया है तो निराला की 'सरोज-

स्मृति मे उनके वैयक्तिक जीवन की बेलाग झाँकी है। उसमे निराला की असमर्थता, विवशता और तज्जनित पीडा का अकन करुण शैली म किया गया है। 'ये कान्य कुब्ज कुल कुलागार, खाकर पत्तल मे करें छेद" जैसी पक्तियो मे निराला की वैयक्तिक मनोभावना अर्थ-पिशाचो पर करारा प्रहार करती है। इसी वैयक्तिकता के प्रभाव वश 'राम की शक्तिपूजा' के राम भी स्पष्ट स्वीकारते हैं-"धिक् जीवन जो पाता आया ही विरोध"। निराला मे तो वैयक्तिकता का इतना प्रबल स्वर है कि वे "मैंने मैं शैली अपनाई" तक कह डालते है। प्रसाद की आत्मकथा भी वैयक्तिक मनोभावो को प्रस्तुत करती है। वे अपने मधुमय जीवन की झाँकी देने में कोई सकोच नही कर पाये हैं। उन्होंने लिखा है

> जिसके अरुण कपोलो की मतवाली सुन्दर छाया मे।
> अनुरागिनी उषा लेती थी निज सुहाग मधुमाया मे॥
> उसकी स्मृति पाथेय बनी है थके पथिक की पथा की।
> सीवन को उधेड कर देखोगे क्या मेरी कथा की॥

इतना ही क्यो प्रसाद की कामायनी तक में व्यक्तिवादी भावो का अभिव्यजन देखा जा सकता है। 'कामायनी' के 'मनु' मे वैयक्तिकता का उग्र रूप सामने आया है। वैयक्तिक मनोभावो से पीडित मनु जैसे अस्मिता की खोज मे रत होकर कहता है "वन गुहा कुज मरु अचल मे हूँ खोज रहा अपना विकास" अथवा "मै तो अबाध गति मरुत सदृश हूँ चाह रहा अपने मन की"। मनु की व्यक्तिनिष्ठता और आत्मनिष्ठता का स्वर अस्मिता की खोज से मिलकर जिस रूप मे मुखरित हुआ है, उसको प्रसाद ने यह भाषा प्रदान की है

> -' शैल निर्झर न बना हत भाग्य;
> गल नहीं सका जो कि हिमखण्ड।
> दौड कर मिला न जलनिधि अंक;
> आह वैसा ही हूँ पाषण्ड"॥

निश्चय ही छायावाद का कवि बाह्य की अपेक्षा आन्तरिक अनुभूतियो के अभिव्यजन मे सलग्न रहा है। यही कारण है कि छायावादी कवि के सामने प्रभात और सध्या के दृश्य उतने प्रधान नहीं रहे हैं जितने कि उनसे प्रभावित और सम्पर्कित आन्तरिक भ त प्रकृति प्रधान रही है, उसके प्रभाव प्रधान रहे हैं।

प्रकृति का चैतन्यीकरण :

रीतिकालीन कवियो ने कामजनित प्रेम के सकीर्ण दायरे मे घूमते रहने के कारण सामाजिक समस्याओ की ओर से मुँह मोड लिया था और छायावादियो ने प्रकृति सौन्दर्य की छाया म पले और कल्पना के पखो मे छिपे रहने के कारण समाज और युगधर्म को भुला दिया। छायावाद मे प्रकृति का चैतन्यीकरण किया गया है। यहाँ मानव-हृदय और प्रकृति के सम्बन्ध को सौन्दर्य की दृष्टि से ऐसे बाँध दिया गया है कि वह उससे चाहने पर भी छूटने का कोई मार्ग न खोज सका। इनकी प्रकृति

में मृदु और मोहक चित्रों की कोई कमी नहीं रही है। आलंबन, उद्दीपन और मानवीकरण आदि कितने ही संदर्भों में प्रकृति एक सुखी चितात्र बनकर सामने आई है। फलतः उल्लास, पीड़ा, उन्माद और रागात्मक संवेदन आदि की लिखावट काफी साफ है। उसमें हरी मेदुर घास पर बिछी ओस की बूँदें उषा की सुनहरी किरणें घनी अमराइयों से छन-छनकर आती चाँदनी के अनेक सरस किन्तु यथार्थ वर्णन मिलते हैं। पंत का 'पल्लव' प्रसाद की 'कामायनी' निराला का 'परिमल' और महादेवी की 'यामा' प्राकृतिक सुषमा के अक्षय भण्डार हैं। इनमें ऐन्द्रियता भी है और पावनता भी। प्रकृति में जहाँ कहीं ऐन्द्रिय संकेत है वहाँ इनकी सात्त्विकता अनिवार्यतः एक आवरण से झाँकती है। कहीं प्रकृति की परतें इतनी पारदर्शी हैं कि उनमें नारी के समस्त नग्न सौन्दर्य को देखा जा सकता है -

> पगली ! हाँ सँभाल ले कैसे छूट पड़ा तेरा आँचल।
> देख बिखरती है मणिराजी अरी उठा बेसुध चंचल ॥

पंत की 'चाँदनी' और निराला की 'जुही की कली' कविताओं में भी प्रकृति के द्वारा नारी का ही चित्रण किया गया है उद्दीपन रूप में जड़ प्रकृति के चेतन स्वरूप की अभिव्यक्ति में रागात्मक संवेदन पर्याप्त मात्रा में मिलता है। अतः प्रकृति कहीं दुखी, कहीं विहँसती और कहीं अपने ही सौन्दर्य पर रीझती तथा दीन-दुनिया से अलग-थलग ही मस्ती में झूमती दिखाई देती है। पंत तो प्रकृति के अतुल चितेरे हैं। उनके 'लोकायतन' महाकाव्य में भी जो छायावादी 'पैटर्न' पर ही लिखा गया है, पल्लवकालीन प्रकृति को देखा जा सकता है। 'लोकायतन' की 'ग्राम-वधू' में प्रिय-विरह में ठूँठ तथा पतझर की टहनी बनी नारी का चित्र है। छायावादी कविता में जहाँ एक ओर प्रकृति का यह उभार है; वहीं दूसरी ओर उसका मानवीकृत रूप भी बहुत बड़ी मात्रा में मिलता है। पंत की 'चाँदनी', छाया व प्रसाद के धरा व रात्रि आदि के मानवीकरण अपने में अनूठे हैं :

1. नीले नभ के शतदल पर, बैठी वह शारद-हासिन।
   मृदु करतल पर शशि-मुख धर अनिमिष नीरव एकाकिन ॥

[पंत]

2. सिन्धु-सेज पर धरा-वधू अब तनिक संकुचित बैठी सी;
   प्रलय-निशा की हलचल- स्मृति में मान किये- सी ऐंठी-सी ॥

[प्रसाद]

इसी क्रम में 'निराला' द्वारा किया गया सन्ध्या-सुन्दरी का यह चित्र देखिये –

> दिवसावसान का समय;
> मेघमय आसमान से
> उतर रही सन्ध्या-सुन्दरी परी-सी
> धीरे-धीरे धीरे ॥

छायावादी कविता में प्रकृति दर्शन की अभिव्यक्ति में विशुद्ध भारतीय दृष्टि को स्वीकार किया गया है। यह वह दृष्टि है जो भारतीय साहित्य में वेदों से ही चली आ रही है। इसीलिए सम्भवत महादेवी वर्मा ने भारतीय प्रकृति को काव्य में दर्शन के सर्ववाद का भागवत अनुवाद स्वीकार किया है। यहाँ प्रकृति दिव्य शक्ति का प्रतीकार्थ भी वहन करती है और जीवन की सगिनी भी है। उसने अपने सौन्दर्य और शक्ति द्वारा अखण्ड और व्यापक परमतत्व का परिचय भी दिया और वह मानवीय भावों व रूपों का प्रतिबिम्ब भी रही है और उद्दीपन भी। इतना ही क्यों प्रकृति के रूप-वैभव की अभिव्यंजना में छायावादियों ने संस्कृत काव्य परंपरा और औपनिषदिक परंपरा का पूर्ण परिपालन भी किया है। उसने प्रकृति से तादात्म्य स्थापित करते हुए उसकी अनेक प्रतिध्वनियों को बिम्बों की भाषा में बाँधने का प्रयास किया है। कहीं तो प्रकृति उसके अरूप भावों की परिभाषा ही नहीं चित्र भी बन गई है और कहीं अपनी तन्मयता में वह भूल गया है कि प्रकृति के रूपों से मिलते-जुलते भावों के दूसरे नाम हैं। अत एक की संज्ञा दूसरे के रूप को सहज ही मिल गई है। 'आँसू' में कहा गया है

> झंझा झकोर गर्जन है बिजली है नीरद-माला।
> पाकर इस शून्य हृदय में सबने आ डेरा डाला॥
>
> [प्रसाद]

अत स्पष्ट है कि छायावाद में प्रकृति के वे विविध वर्णों और विराट चित्र मिलते हैं जिनका द्विवेदी युग तक अभाव रहा है। प्रकृति के सौन्दर्य के सामने छायावादी कवि नतमस्तक सा प्रतीत होता है। जीवन का सबसे बड़ा तत्व उसने प्रकृति में ही पाया था। यही कारण है कि प्रकृति की तुला पर जीवन तो तुला किन्तु सामाजिक समस्याओं का पलड़ा गभीर व गुरुतर होते हुए भी हल्का पड़ गया। वस्तुत छायावाद की प्रकृति में चेतन व्यक्तित्व का आरोप, कल्पना का प्रसार व स्वानुभूत सुख-दुख की अभिव्यक्ति और सौन्दर्य-चेतना के मधुर और उदात्त संदर्भों का बिम्बांकन हुआ है।

नारी भावना और प्रणयानुभूति

'छायावाद' सौन्दर्य-सरोवर की तरंगों से उद्वेलित प्रणयानुभूति का काव्य है। इसमें सौन्दर्य की सूक्ष्मातिसूक्ष्म अनुभूतियों का अभिव्यंजन भी है और प्रणयावेग की स्थिति में प्रणय से सम्बद्ध अनेक मानसिक अवस्थाओं—आशा, आकुलता, आवेग तल्लीनता, निराशा, अतृप्ति, स्मृति और विषाद आदि का अभिनव चित्रण भी मिलता है। प्रणय की इन्हीं स्थितियों की अभिव्यंजना के साथ-साथ नारी के प्रति पवित्र, पूज्य एवं श्रद्धा भाव व्यक्त किया गया है। रीतियुगीन कविता में शृंगार की अभिव्यंजना नायक-नायिका राधा और कृष्ण या कृष्ण और गोपियों के माध्यम से की गई है, किन्तु छायावाद में कवि और पाठकीय चेतना के मध्य में केवल अनुभूति रही, अन्य कोई

उपादान वहाँ नही है। यही स्थिति प्रेम की भी है। रीतिकाल मे जो प्रेम वासना के पक मे फँसकर गँदला हो गया था और प्रिया के अधरो पर जो पान-पीक के धब्बे लगे थे, उन्हे छायावादियो की पवित्रीकृत अनुभूतियो ने पोंछ दिया है। द्विवेदी युग मे यही प्रेम नैतिकता और सदाचार की कोठरी मे कैद रहा था, वह ससार का नही रह गया था। ये दोनो ही प्रतिवादी स्थितियाँ थी। इनसे अवगत होकर छायावादियो ने प्रेम के ऐन्द्रिय और उदात्त दोनो रूपो को पूरी वास्तविकता के साथ ग्रहण किया है। हाँ, कभी तो यह प्रेम प्रकृति के आँचल से झाँकता है और कभी प्रकृति के क्षेत्र मे खुलकर विहार करता दिखाई देता है।

वस्तुत छायावाद मे प्रेम तन से मन की ओर गया है। उसमे वासना परिष्कारित हो गई है। वह त्याग और पावनता का समीकृत रूप है। छायावाद म प्रेम का जो उदात्तीकरण मिलता है वह इससे पहले की कविता मे कहाँ है? प्रसाद की ये पक्तियाँ लीजिये

> फिर कह दोगे, पहचानो तो मैं हूँ कौन बताओ तो,
> किन्तु उन्हीं अधरों से पहले, उनकी हँसी दबाओ तो ॥
> सिहर भरे निज शिथिल मृदुल, अँचल को अधरों से पकडों ;
> बेला बीत चली है चचल, बाहु-लता ले आ जकडो ॥

[लहर]

इसी प्रकार निराला के प्रेम मे प्रकाश है। उनका रूप-वर्णन और स्नेहाकन वासना से दूर है। वह नेत्रो को पावन करने का सदेश देता है, न कि चचल करने का। यो छायावाद म काम है तो, किन्तु वह भोग मात्र का पर्याय न होकर अधिकाश स्थलो पर मगल से मण्डित है "काम मगल से मण्डित श्रेय, सर्ग इच्छा का है परिणाम'। इस भूमिका पर आकर नारी और पुरुष का मिलन रामेश्वरी और कामश्वरी अर्थात् शिव और शक्ति के मिलन का ही भौतिक रूप है। वह 'सर्ग इच्छा का परिणाम है, किसी निरी वासना का प्रतिफलन नही है। प्रेम का यही सूक्ष्म चित्रण महादेवी की पक्तियो मे भी द्रष्टव्य है

> नयन श्रवणमय श्रवण नयनमय आज हो रही कैसी उलझन
> रोम रोम में होता री सखि एक नया उर का सा स्पन्दन
> पुलकों से भर फूल बन गये जितने प्राणों के छाले हैं ॥

[नीरजा]

छायावादी कविता मे नारी पूजा और श्रद्धा की प्रतिमा बनकर आई है। उसका स्थूल की अपेक्षा सूक्ष्म और सूक्ष्मतर वर्णन हुआ है। प्रसाद ने 'नारी तुम

केवल श्रद्धा हो' कहकर तथा पंत ने 'देवि! माँ, सहचरि, प्राण' कहकर उसके प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त की है।[1] इतने पर भी सच है कि वहाँ 'प्रिय' का रूप ही प्रधान है किन्तु वह एक ऐसा रूप है जिसमें कामुकता की गंध नहीं है। हो भी कैसे? उसका संपर्क गंगा स्नान का और उसकी वाणी त्रिवेणी की लहरों का पावन गीत सुनवाकर मानव-जीवन को कृतार्थ करती रहती है। छायावादी कविता मे नारी का सौन्दर्य भी अकृत्रिम और अप्रतिम है। उसका चर्म वासना का नहीं अर्चना का विषय है, उसका स्पर्श स्फूर्तिप्रद है और इसका रहस्य उसके इस सूक्ष्म सौन्दर्य मे निहित है जो क्रमश 'श्रद्धा' और 'इडा' को प्राप्त है

1. नील परिधान बीच सुकुमार खुल रहा मृदुल अधखुला अंग ;
   खिला हो ज्यों बिजली का फूल मेघ बन बीच गुलाबी रंग ।।

2. बिखरी अलकें ज्यों तर्क जाल ।
   वह विश्व मुकुट सा उज्जवल तम शशिखण्ड सदृश था स्पष्ट भाल ।
   दो पदम पलाश चषक से दृग देते अनुराग विराग ढाल ।।

ये नारी सौन्दर्य के वे चित्र हैं जिनमे पर्याप्त सूक्ष्मता और व्यंजकता है। पंत प्रसाद, निराला और महादेवी सभी मे नारी के प्रति ऐसा ही सूक्ष्म सौन्दर्य-दर्शी और पावन भाव मिलता है। अपवाद स्वरूप कहीं शृंगारिक सदर्भ आ गया हो तो वह अलग बात है। प्रसाद की 'कामयानी' मे 'काम' के मुख से 'मनु' को जो भर्त्सना सुनने को मिलती है, उससे स्पष्ट हो जाता है कि नारी और पुरुष का मिलन केवल भोग के धरातल पर ही संभव नहीं होता है, उसके भोगेतर मूल्य भी हैं और वे काफी महनीय हैं :

पर तुमने तो पाई सदैव उसकी सुन्दर जड देह मात्र
सौन्दर्य जलधि से भर लाये केवल अपना तुम गरल पात्र ।।
वासना तृप्ति ही स्वर्ग बनी, यह उलटी मति का व्यर्थ ज्ञान ।।

छायावादी नारी स्पर्श के मैल से ऊपर है। वह जागरण नहीं चाहती है। जागरण के पश्चात् उसे कर्म क्षेत्र मे उतरना पड़ेगा और फिर उसकी देहलता कुम्हला जायेगी। उसके शरीर में सौन्दर्य का स्वर्ण ताँबा बनकर रह जायेगा। अस्तु, उसके गगन से धरती पर पसीना बनकर बहे यह स्थिति छायावादियों को कभी स्वीकार नहीं रही।

कल्पना की विवृति और अतिशय भावुकता :

कल्पना की विवृति और भावातिरेक छायावाद की प्रमुख प्रवृत्ति रही है। इस काव्यधारा में कल्पनातिरेक की प्रवृति इतनी बढ़ी कि कल्पना ही कविता का

है। कविता-पंक्तियों मे प्रस्फुटित परायी वेदना अपनी और अपनी सबकी बन गई है। इसी कारण यहाँ वैयक्तिक पराजय भी समष्टिगत करुण भाव की सरिता मे निमज्जित होकर आई है। व्यक्ति वेदना से विश्व-वेदना की ओर बढना छायावादी काव्य को मानवतावाद से जोड देता है। छायावाद का कवि जिस पीडा का वैयक्तिक स्तर पर भोक्ता रहा है, वही उसने समष्टि के धरातल पर देखी और जानी है। प्रसाद जब लिखते है कि—

जो घनीभूत पीड़ा थी मस्तक मे स्मृति सी छायी।
दुर्दिन मे आँसू बनकर वह आज बरसने आयी॥

तो उनकी निजी वेदना विश्व-वेदना की धारा से एकीकृत होती जान पडती है। अत स्पष्ट है कि छायावाद की वेदना निजी आँसुओ से गीली होकर भी सभी के मन मे स्थान पाती चित्रित की गई है।

रहस्यात्मकता

छायावाद के सदर्भ से रहस्यवाद की चर्चा भी की जाती है। अनेक आलोचको की कलम से बार-बार यह लिखा जा चुका है कि छायावाद रहस्य-भावना से अनुप्राणित है। स्मरणीय तथ्य यह है कि छायावाद कभी भी वैसा रहस्यवादी काव्य नही बन पाया जैसा कि मध्यकालीन कबीर आदि सतो का काव्य था। छायावादियों मे एक भी ऐसा नही जो परोक्षसत्ता से एकाकार होने के लिए उद्यत या लालायित हुआ हो। उसमे रहस्यवाद नही, रहस्याभास की सी स्थिति है क्योंकि रोमाटिक कवि जब कभी कुछ सोचता है तो वह रहस्यवादी लग सकता है। वास्तव मे छायावाद मे परोक्ष के प्रति जिज्ञासा का भाव है जो रहस्यवाद का प्रारम्भिक सोपान है और यही रोमाटिकता की विशेषता भी है। अत जिज्ञासा तत्व को लक्ष्य करके यह कहना कि यह रहस्यानुभूति का काव्य है, रहस्यवाद को नया अर्थ देना भले हो, अन्यथा इस उक्ति मे कोई सार नही है। अत यह बात बेखटके कही जा सकती है कि छायावादियो ने रहस्यवाद की शृ खला मे एक भी नई कडी नही जोडी। यह सभव भी नही था क्योंकि छायावादियो की परोक्ष के प्रति प्रदर्शित जिज्ञासा भावना भी बौद्धिक चेतना से आन्दोलित थी।

इसके अतिरिक्त छायावाद मे दृश्यजगत् की कही भी उपेक्षा नही है जबकि रहस्यवाद मे गोचर जगत् से सम्बध नही रहता है। वहाँ परोक्ष के प्रति तीव्र भाव का प्राधान्य रहता है जबकि यहाँ ऐसा कुछ नही है। यही कारण है कि उसका महिमागान भी यहाँ नही है। रहस्यवादियो ने असीम को सकेत करके जो सतोष और तृप्ति लाभ किया था, वह भी छायावाद मे नही है। ये तो उल्टे असतोष की सरणियो से गुजरते दिखाई देते हैं। वास्तव मे छायावाद मे आत्मा का परमात्मा की ओर बढना कही भी चित्रित नही है; वरन् यहाँ तो मिलन के क्षणो मे एक आत्मा

दूसरी की ओर हमजोली बनकर बढती रही है। यही छायावादी कविता के लौकिक बने रहने का प्रमाण है। छायावादियों ने जब भी कभी कोई इतर सकेत किया है तो विस्मय-विभूति होकर जबकि रहस्यवादियो के सारे सकेत परोक्ष-प्रणय के ऐसे वाहक बने हैं कि उनकी समस्त भावनाएँ तीव्र होकर तादात्म्य और पूर्ण अद्वैत के लिए तडप उठी हैं। चाहे प्रसाद हो, चाहे पत और महादेवी सभी का काव्य रहस्याभास के सोपानो से गुजरता हुआ लौकिक काव्य है और मेरी समझ मे उसकी यह लौकिकता ही उसका सबसे बडा आकर्षण है; सबसे बडी शक्ति है।

पलायन भाव

छायावादी कविता म अतीत प्रेम और सरल जीवन की ओर लौटने का भाव भी मिलता है। कुछ आलोचको ने छायावाद को पलायनवादी भी कहा है। छायावाद मे यदा-कदा ऐसी प क्तियाँ लिखी भी गई हैं जो उनकी पलायनी वृत्ति को संकेतित करती है। प्रसाद की बहुउद्धृत प क्ति "ले चल मुझे भुलावा देकर, मेरे नाविक धीरे-धीरे" मे इसी भाव का आवर्तन बताया जाता है। मेरी समझ मे यह बात अपवाद स्वरुप कही गई है क्योकि इसी कविता की अ तिम प क्तियो मे जीवन का सदेश प्रतिध्वनित है फिर अपवादो से नियम नही बनते है। इतने पर भी अपवाद स्वरुप आई इन पक्तियो के आधार पर ही प्रगतिवादियो ने इन्हे पलायनवादी कहा है। उनकी दृष्टि मे यह कविता का सबसे बडा दोष है। किन्तु मेरी समझ मे इसका तात्पर्य सिर्फ इतना ही है कि छायावादी अपने समाज की समस्याओ से आँख बचाते रहे। उन्होने अकेले ही कल्पना के रगमहल मे सुहाग का खेल खेला। इससे यह कही प्रमाणित नही होता कि वे जीवन से कटे हुए थे। यदि वे सचमुच जीवन से कटे हुए होते तो जीवन-सत्य की बोधक ये पक्तियाँ कैसे लिख पाते ?

> तप नहीं, केवल जीवन सत्य; करुण यह क्षणिक दीन अवसाद
> तरल आकाक्षा से है भरा सो रहा आशा का आह्लाद ॥

इतना ही नही जीवन को ही सत्य कहने वाला कवि स्पष्ट शब्दो मे जीवन सग्राम म हारे-थके व्यक्तियो को जीवन और कर्म की प्रेरणा देता हुआ यह भी कहता है।

> हार बैठे जीवन का दाव
> जीतते जिसको मरकर वीर ॥
> \+ \+ \+
> तपस्वी क्यों इतने हो क्लान्त ?
> वेदना का यह कैसा वेग !
> आह ! तुम इतने अधिक हताश
> बताओ यह कैसा उद्वेग ॥
> हृदय मे क्या है नहीं अधीर,

तत्वो को अपनाया है। विश्वव्यापी मानवता की गूँज भी छायावादियो में मिलती है। निराला के "बादल राग" मे भारतीयो की आत्मा मे जागृति का मंत्र फूँका गया है तो "जागो फिर एक बार" में समग्र राष्ट्र के प्रति आह्वान किया गया है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि छायावादी कवि जाति, राष्ट्र, वर्ण, वर्ग आदि क्षुद्र नदों का संतरण करके मानवता का अमर गायक बन गया है। रावीन्द्रिक प्रभाव से मानवतावादी तत्व ग्रहण करके प्रसाद का कवि कहता है .

औरों को हँसते देखो मनु; हँसो और सुख पाओ।
अपने सुख को विस्तृत करलो, सबको सुखी बनाओ ।।

यह मानवतावादी सदेश (Live and Let Live) की भावना का निदर्शक है। इसी प्रकार पंत जब घोषणा करते हैं कि "मुक्त करो नारी को मानव, चिरवंदिनि! नारी को" तो निश्चय ही वे नारी स्वातन्त्र्य के बहाने मानवतावाद की ही पुष्टि करते हैं। राजनैतिक धरातल पर देखें तो छायावादी कवि भारतीयता व राष्ट्रीयता की पुकार लगाता हुआ अपनी दृष्टि को विश्वबंधुत्व की ओर ही केन्द्रित किये रहता है। यह गांधीवादी दृष्टि है। मानवता की प्रतिष्ठापना मे जहाँ एक ओर ज्ञान, इच्छा, क्रिया का समन्वय निरूपित किया गया है वहीं राजनैतिक भूमिका पर गांधी और साम्यवाद के सम्बन्धो की चर्चा भी की गई है। पंत की कविता इसका प्रमाण है

मनुष्यत्व का तत्व सिखाता निश्चय हमको गांधीवाद।
सामूहिक जीवन विकास हित साम्ययोजना है अविवाद ।।

कहने का तात्पर्य यह है कि छायावाद एक ऐसा काव्य है जिसकी भाव परिधि म वैयक्तिकता, सौन्दर्यानुभूति, प्रणयानुभूति, नारी-भावना, वेदना, पीडा, मानवतावाद और कर्मवादिता का अद्भुत-संगम है। इस काव्यधारा मे छायावाद की भूमिका एक सुन्दरी की अंग भंगिमाओं जैसी है जिसने पाठकों का सौन्दर्य, कल्पना और वेदना का एक ऐसा मादक पेय दिया कि एक बारगी जनमानस उसका सही अर्थ न समझने पर भी अभिभूत हुए बिना नहीं रह सका। यह नवीनता भी परंपरा से पृथक संदर्भ था। यह मानवबोध की दृष्टि से विगत वस्तुबोध की भूमिका को छोड़कर चेतना के नये शिखरो की ओर अग्रसर होना था। इस दृष्टि से स्थूल, जड और भौथरी सामग्री को रौंदकर नये सूक्ष्म किन्तु आदर्श के आवरण से ढके जीवन-मूल्यो की तलाश का कार्य छायावाद ने पूरी निष्ठा से किया है।

शैल्पिक प्रवृत्तियाँ

भाव और विचारगत प्रवृत्तियो के विश्लेषण के बाद छायावाद की शैल्पिक प्रवृत्तियो का विवेचन भी आवश्यक है। इस क्रम मे प्रगीतात्मकता कोमलकांत पदावली, चित्रभाषा पद्धति, लाक्षणिकता प्रतीकात्मकता, आलंकारिकता और छंदों की नवीनता-आदि को विवेचित-विश्लेषित किया जा सकता है। छायावाद की प्रमुख विशेषताओं मे प्रगीतात्मकता को पहले लिया जा सकता है। छायावाद का युग प्रगीतो का युग था। यही कारण है कि छायावाद की कालजयी कृति कामायनी 'तक मे पर्याप्त

प्रगीतात्मकता है। यो इस युग मे प्रबधात्मक रचनाओं का भी प्रणयन हुआ है। निराला की 'शक्तिपूजा' और तुलसीदास जैसी कृतियाँ इसका प्रमाण हैं। प्रबंधेतर रचनाओ मे सर्वत्र एक प्रगीतात्मकता दिखाई देती है।

काव्य-भाषा

शिल्प विधि के अगो में सबसे महत्वपूर्ण उपकरण भाषा है। भाषा अभिव्यक्ति की प्राण शक्ति है। मानव-सभ्यता के विकास के साथ साथ भाषा भी विकसित होती जाती है। जीवन और जगत की परिस्थितियों का प्रभाव भाषा पर भी पडता है और ऐसी स्थिति में उसका विभिन्न भाषाओ बोलियो और सास्कृतिक प्रभाववश शब्द-भडारगत अभिवृद्धि कर लेना स्वाभाविक है। शैली की इमारत भाषा की नीव पर खडी होती है। अत छायावादी भाषा के साथ साथ उसकी शैलीगत विशेषताएँ भी महत्व रखती है। यह तो निर्विवाद ही है कि खडी बोली को काव्यभाषा के रूप मे मांजन का कार्य छायावाद ने ही किया है। इस काल के सभी कवियो ने खडी बोली के माध्यम स अपने भावो को प्रसार दिया तथा ब्रजभाषा का विरोध किया। सामान्यत खडी बोली को द्विवेदी युग मे ही अपना लिया गया था, किन्तु उसके माधुर्य, लालित्य सौकुमार्य, प्रतीकात्मक, साकेतिक, चित्रात्मक लाक्षणिक और व्यजक गुणो की ओर तत्कालीन कवियो का ध्यान ही नही गया था। इन भाषायी गुणो का विकास छायावादियो ने किया।

छायावादी कवियों का शब्द विधान केवल हिन्दी पर ही आश्रित नही है। इन्होंने सस्कृत, उर्दू, फारसी और लोकभाषा सभी ओर अपने हाथ फैलाये है। इस प्रकार छायावादी काव्य की भाषा मे एक ओर तो इतर भाषाओं की शब्दावली का प्रयोग हुआ और दूसरी ओर स्वतत्र, शब्द शिल्पन की प्रवृत्ति भी बढी। संस्कृत शब्दावली सभी छायावादियो म मिलती है किन्तु पन्त और निराला म यह औरो स अधिक है। राम की शक्ति पूजा 'परिवर्तन' और 'ग्रथि' आदि कविताएँ इसका प्रमाण हैं। सस्कृत शब्दो क साथ ही सस्कृत की दीर्घ समास पद्धति भी इस कविता मे मिलती है। उर्दू के अनेक शब्द छायावादियो की भाषा मे आकर मिल गये हैं और उनकी नजाकत व भावाकुलता ने इन्ह पर्याप्त सहयोग भी दिया है। खास तौर पर निराला की अनामिका, 'गीतिका' आदि म 'मकबरे' बहार, फिर दौस, खुश, जहान, नायाब चीज नादान, मिजराव, रजोगम सराबोर और रम्मेअदा आदि कितने ही शब्द खडी बोली के बीच आकर भावबोध को सम्प्रेषित करने म सहायक हुये है। इनके साथ ही लोकभाषा के शब्दा का प्रयाग भी प्राय सभी कवियो न किया है। पन्त न 'ढिग', 'करतार', सखी, मटका, ऐंचीला, देही और जोरू व बामनजैसे लोकभाषा क शब्दा को प्रयोगा है तो प्रसाद ने भाई, रेला, सुबलाकर अनखाकर, पाँनि, ललाई और खेवा आदि शब्दो से भाव सप्रेषण का कार्य किया है। निराला और महादेवी भी इस क्षेत्र मे किसी से पीछे नही है। निराला के फाँस, आँच, सेवनहार, गहा, लकुटिया और मरजाद तथा महादेवी के पाहुन, रैन, बाना, बान, सहजो, दुकेला और होले आदि शब्द लोक जीवन की थाती ही तो हैं।

छायावादियो ने शब्द-भण्डार की वृद्धि के लिये शब्दो का निर्माण भी किया है, भले ही इस कार्य में वे व्याकरण के नियमो की अवहेलना कर गये हो । अमन, निरूपमिते, सुषम, रंगिनि, चूर्णित, वशरी और उपायकरण आदि शब्द इसके प्रमाण हैं। नवनिर्मित शब्द प्राय संस्कृत की प्रकृति के आधार पर निर्मित हुए हैं। कुछेक शब्द ऐसे भी हैं जो सदर्भविहीन होने पर अर्थविहीन भी हो जाते हैं। छायावादी काव्य के उन्नायकों ने भाषा मे सजीवता और अर्थवत्ता के लिये अनेक ऐसे शब्दों को भी अपनाया है जो प्रतीकात्मक और ध्वन्यर्थव्यंजक हैं। ये शब्द चित्रात्मकता और नाद सौन्दर्य के कारण पाठक के मन को प्रभावित करने की क्षमता रखते हैं। कल-कल, छल-छल, मर-मर मर-मर आदि प्रयोग इसी प्रकार के हैं। चित्रात्मकता की दृष्टि से समग्र छायावादी कविता पर्याप्त समृद्ध दिखाई देती है। फिर भी निराला की बादल राग, विधवा, भिक्षुक और प्रदीर्घ प्रबंधात्मक कविता 'शक्तिपूजा' तथा पंत की चाँदनी, नौका विहार, एक तारा और बादल कविताएँ विशेषोल्लेख्य हैं। काव्य-भाषा को चित्रात्मकता प्रदान करने के लिए प्रसाद ने ऐसे चित्रोपम शब्दों का प्रयोग किया है जिनमे मूर्तीकरण की अपूर्व क्षमता है। 'लज्जा' का चित्रण करते समय कवि ने चित्रभाषा का सार्थक प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ :

छूने मे हिचक, देखने मे. पलकें आँखों पर झुकती हैं;
कलरव परिहास भरी गूँजे, अधरों तक सहसा रुकती हैं ॥

मुहावरो और कहावतों का प्रयोग भी छायावादियो ने किया है। पंत की रचनाओं मे 'गूँजते दिन चार', 'आठ आँसू निरुपाय', 'वारि पीकर घर पूछना', 'पृथ्वी पर चरण न धरना' जैसे प्रयोग तो प्रारम्भिक सृजन मे ही उपलब्ध हैं। इनकी परवर्ती रचनाओं मे लोकजीवन की इन उक्तियों के प्रति अधिक ममत्व प्रदर्शित किया गया है। फलत 'साँप लोटते फटती छाती', 'सिंदूर लुट गया' और 'आँखें भर आना' आदि का प्रयोग 'लोकायतन' में कलात्मक सौन्दर्य का निदर्शन कराते हैं। प्रसाद की कामायनी मे भी 'अंधकार मे दौड़ लगाना, रोंगटे खड़े हो जाना, हाथ से तीर छूट जाना, जीवन का दाव हार बैठना और हाथ की दवा खाना (मन का उपकार करना) आदि प्रयोग लोक चेतना से वलयित है।

भाषा की अर्थ-प्रक्रिया से शब्द-शक्तियों का अविच्छिन्न सम्बन्ध है। काव्य-भाषा भी इनसे पुष्ट होकर ही अर्थ-बोध मे सक्षम होती है। छायावादी कविता अपनी लाक्षणिकता, वक्रता, व्यंजनात्मकता के लिये प्रसिद्ध है। हिन्दी कविता में सुष्ठु लाक्षणिकता के प्रवर्तन का कार्य घनानद से माना जाना चाहिए। यदि उन्होंने व्रजभाषा के स्थान पर खड़ी बोली म लिखा होता तो वे निश्चय ही छायावाद के प्रवर्तक भी मान लिये गये होते। खैर! प्रसाद के आँसू, कामायनी, पंत के 'पल्लव', ग्रंथि, 'गुंजन', निराला के 'परिमल', 'अनामिका' और महादेवी की 'यामा' मे संकलित कविताएँ लाक्षणिकता का श्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। कतिपय उदाहरण

1 "स्वर्णकिरण-कल्लोलों पर बहता रे यह बालक मन।"

2 "बाडव ज्वाला सोती थी, इस प्रणय सिंधु के तल मे" ।।

3 बाँधा है विधु को किसने इन काली जंजीरों से।
मणि वाले फणियों का मुख क्यों भरा आज हीरों से।।

लक्षणा क साथ ही 'व्यजना' के सफल प्रयोग भी छायावाद म मिलते हैं। शाब्दी और आर्थी व्यजनाओ के ढेरो उदाहरण छायावादी कविता म भरे पडे हैं। अत कह सकते हैं कि छायावाद ने भाषा का परिष्कार किया, शब्दो के नये प्रयोग किए चित्रात्मकता व लाक्षणिकता से भाव बोध को समृद्ध और मूर्तित किया, मुहावरेदानी स अभिव्यक्ति को सक्षम, प्रभावी और प्रेषणीय बनाया गया और सबसे बडा काम ब्रजभाषा की पीठ पर खडी बोली का महल खडा करके किया।

अलकृति

छायावादी कविता एक ऐसी नारी के रूप म सँवर कर सामने आई है जो आधुनिका है-ऐसी आधुनिका जिसे अलकारो का बोझ अपने शरीर पर लादे चलना ता स्वीकार नही है किन्तु अनिवार्य सौन्दर्य प्रसाधन के सहचर बनकर आने वाले अलकार अप्रिय भी नही हैं। इन कवियो को उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा व दृष्टान्त जैसे अलकारो स पर्याप्त अनुराग रहा है किन्तु साथ ही मानवीकरण, विशेषण विपर्यय और ध्वनिमूलक अलकारो का प्रयोग बहुलता से किया गया है। पत, प्रसाद निराला और महादेवी क मानवीकरण अपना सानी नही रखत हैं। पत की चाँदनी, प्रसाद की धरा और निराला की सध्या सुन्दरी का मानवीकरण तो देखिये

1 नीले नभ के शतदल पर,
बैठी वह शारद हासिनि।
मृदु करतल पर शशि-मुखधर
अनिमिषि नील एकाकिनि।।

2 सिंधु-सेज पर धरा-वधू अब तनिक सकुचित बैठी सी।
प्रलय निशा की हलचल स्मृति मान किये सी ऐठी सी।।

विशेषण विपर्यय का प्रयोग भी बडी कुशलता स किया गया है

1 "चल चरणों का व्याकुल पनघट, कहाँ आज वह वृन्दावन"
[परिमल]

2 'वेदो की निर्मम प्रसन्नता पशु की कातर वाणी।" [कामायनी]

ध्वन्यर्थ व्यजक अलकार के प्रयोग पत के काव्य म पर्याप्त सफल बन पडे हैं—

1 "मृदु मद-मद मथर-मथर लघु तरणि हसिनी सी सुन्दर
तिर रही खोल पालों के पर।। [पत]

2 कण-कण कर ककण प्रिय,

कही कही अनलकृत भाषा मे गत्यात्मक वस्तु बिम्ब भी प्रस्तुत किये गये है। पंत की 'ग्राम्या' की ये पंक्तियाँ देखिये

खींचती उवहनी वह बरबस
चोली से उभर उभर कसमस
खिचते सग युग रस भरे कलश
जल छलकाती, रस बरसाती
बलखाती वह घर को जाती

रगो के सहारे खडे किये गये बिम्बो मे पत ने सिन्दूरी, धानी, गुलाबी, सुनहली और इन्द्रधनुषी रगो का सहारा अधिक लिया है तो प्रसाद के अधिकाश रग बिम्ब नीले रग के सहारे प्रस्तुत किये गये हैं "नील परिधान बीच सुकुमार खुल रहा मृदुल अधखुला अ ग"। तात्पर्य यह है कि छायावादी कविता मे बिम्बो की सृष्टि भावोच्छल अधिक है, वैचारिक कम।

छंद-विधान

छायावादी कविता के छद-विधान मे मात्रिक और मुक्त छद के साथ-साथ उन छदो को भी विस्मृत नही किया जा सकता है जो उर्दू व अंग्रेजी के प्रभाववश आये हैं। मात्रिक छदो मे रोला, सखी, शृ गार गोपी, हरिगीतिका, ताटक, सार और पीयूषवर्ष आदि का प्रयोग अधिक मिलता है। नवीन छदो मे मुक्त छद का सफल प्रयोग निराला ने किया यद्यपि प्रसाद भी पीछे नही रहे। 'निराला' की 'जुही की कली' मुक्तछद मे बँधी प्रभावी कविता है। सध्या-सु दरी' भी मुक्तछद की श्रेष्ठ कविताओ मे आती है। प्रसाद की "शेरसिह का शस्त्र समर्पण" और पेशोला की प्रतिध्वनि व 'प्रलय की छाया' भी इस वर्ग की उल्लेख्य रचनाएँ हैं। उर्दू से प्रभावित छदो के आधार पर निराला ने 'बेला और नयेपत्ते' का सृजन किया है।

मूल्यांकन :

उपर्युक्त विवेचन के सदर्भ से कहा जा सकता है कि छायावाद हिन्दी कविता का स्वर्णिम, मधुर काव्य है। भाव और शिल्प दोनो ही क्षेत्रो मे यह पूर्ववर्ती कविता से आगे का कदम है। मधुर अनुभूतियो, मसृण कल्पनाओ, प्राकृतिक सम्भार, वैयक्तिक अभिव्यजना की रमणीयता, भाषा की चित्रात्मकता, शैली की अभिनव लाक्षणिक वक्रता और सहज प्रतीकात्मकता के कारण आज भी हम छायावादी कविताओ को गुनगुनाते हैं। छायावाद का अधिकाश भार निराला और पत पर रहा है। ये समकालीन थे, साथी थे किन्तु परस्पर निभा नहीं पाये। निभाते भी कैसे ? एक 'वज्रादपि कठोर' था तो दूसरा 'कुसुमादपि मृदु', एक शो बॉयस था तो दूसरा क्रान्ति का सजग प्रहरी। एक सहारे के लिये बालिका की अलकावली की छोड द्रुमों की छाह मे आराम पाता था तो दूसरा भिक्षुक की लडकी थामे सडक-चौराहो पर तपता था। युग ने करवट ली। जीवन बदला तो मूल्य भी बदले। छायावादी

कविता की शव-परीक्षा आलोचक के हाथों भले हो गई हो कुछ कवियों के यहाँ वह आज भी सुरक्षित है। 'छायावाद' मनोवृत्तियों का काव्य है; सूक्ष्म सचेतना का व्यंजक है और हृदय पर पड़े आड़े-तिरछे प्रभावों का कल्पनांकन। यह ठीक है कि युग के परिवर्तन के कारण वह चिन्तन की बदलती राहों पर नहीं चल पाया, संकट के बोध को वाणी नहीं दे पाया और जीवन के यौवन और वसंत में ही रमा रहा, किन्तु फिर भी यह मानने का आज भी कोई कारण नहीं दिखलाई देता है कि वह जीवनेतर स्थितियों का काव्य था। हाँ, उसने जीवन को व्यक्ति के माध्यम से देखा और उसकी व्यंजना हृदयवादी शैली में की। छायावाद में आया जीवन एकपक्षीय है, बहुपक्षीय नहीं। यही वजह है कि छायावाद रेशम बना रहा, खादी नहीं बन सका। ऐसे काव्य के सर्जक यद्यपि पंत, निराला, प्रसाद और महादेवी को माना जाता है, किन्तु नयी कविता के प्रतिनिधि कवियों अज्ञेय, भारती, गिरिजाकुमार, सर्वेश्वर और जगदीश गुप्त आदि के काव्य का एक पक्ष छायावादी संस्कारों से संस्पर्शित होकर भी आया है मेरी दृष्टि में यह अध्ययन का एक महत्वपूर्ण संदर्भ हो सकता है। मैंने जिन नये कवियों के नाम लिये हैं, वे शैली की दृष्टि से तो नये हैं, किन्तु भावबोध के धरातल पर इनका 30 प्रतिशत सृजन छायावादी चेतना से वलयित है जहाँ ये भावुक हुए हैं, सौन्दर्य को पीने लगे हैं, वहीं कहीं प्रसाद, कहीं, पंत और कहीं निराला पास खड़े दिखलाई देते हैं।

छायावादी कविता की इस विवेचना के बाद सहसा मन में एक प्रश्न उठता है कि सभी छायावादियों में विशिष्ट कौन है? हमारे निकट कौन ऐसा है जो अधिक विश्वसनीय लगता है? मैं सोचता हूँ 'निराला' का वैविध्यपूर्ण सृजन हमारी जिन्दगी का पार्श्ववर्ती होने की गवाही देता है। वे क्रान्ति के अग्रदूत, पौरुष के शृंगार, युगीन विषमताओं और निजी व्यथाओं से तप-तच कर निर्भीक, स्पष्टवादी और मानवता का जयघोष करने वाले कवि थे। उनका सा यथार्थ प्रेरित विविधात्मक सृजन और वह भी इतना विश्वसनीय न तो पंत का था, न प्रसाद का। महादेवी जी का तो प्रश्न ही कहाँ उठता है? कोई कह सकता है कि यह वैविध्य पंत में भी है। मैं सोचता हूँ पंत में जो भी थोड़ा बहुत वैविध्य है वह मार्क्स और गांधी के सैद्धान्तिक परिवेश से मिलकर काफी हल्का हो गया है। प्रसाद ऐसे वैविध्यवादी थे ही नहीं। वे तो सांस्कृतिक जीवन मूल्यों के आदर्शीकरण के हिमायती थे। वे अतीत का मथन कर वर्तमान के अनुकूल अमृत खोजते रहे और पंत हवा के हर रुख के साथ चंचल होते रहे। पंत ने अपने को दुहराया बहुत है। प्रसाद में यह दुहराहट नहीं है। फिर भी प्रसाद का करीबी रिश्ता पंत से ही अधिक जुड़ता लगता है। यों दोनों के अंतर निर्धारक बिन्दु भी साफ हैं।

प्रसाद अतीत के प्रति न केवल जिज्ञासा भाव रखते थे, अपितु आस्था भी रखते थे जबकि पंत वर्तमान से प्रेरित होकर भावी के निर्माता बने रहे। यों निर्माता दोनों हैं, पर एक अतीत के शिलापट्ट पर वर्तमान की ऐसी रेखाएँ खींचता रहा जो भावी की नियामिका बनीं और दूसरा वर्तमान की जाह्नवी से अमृतमयी पावन धार

कही कही ग्रनलकृत भाषा म
पत की ग्राम्या की ये पक्तियाँ देखि

खींचती उबहनी वह ग्रर
घोली से उभर उभर क
खिचते सग युग रस भरे
जल छलकाती रस बरर
बलखाती वह घर को जा

रगो के सहारे खड किये गये
ग्रौर इन्द्रधनुषी रगो का सहारा ग्र
नील रग के सहारे प्रस्तुत किये ग
मदुल ग्रधखुला ग्र ग । तात्पय यह
भावोच्छल ग्रधिक है वैचारिक कम

छद विधान

छायावादी कविता के छद
उन छन्दो को भी विस्मृत नही किय
ग्राये हैं। मात्रिक छदो मे रोला सर
पीयूषवष ग्रादि का प्रयोग ग्रधिक f
प्रयोग निराला ने किया यद्यपि प्रस
क्ली मुक्तछद म बधी प्रभावी क
कविताग्रो मे ग्राती है। प्रसाद की
प्रतिध्वनि व प्रलय की छाया
प्रभावित छन्दो के ग्राधार पर निराल

मूल्याकन

उपयु क्त विवेचन के सदम
का स्वर्णिम मधुर काव्य है। भाव
से ग्रागे का कन्म है। मधुर ग्र
वैयक्तिक ग्रभिव्यजना की रमणीय
लाक्षणिक वक्रता ग्रौर महज प्रत
कविताग्रो को गुनगुनाते हैं। छायाव
है। य समकालीन थ साथी थे f
एक वज्रादपि कठोर या तो दूसर
क्रान्ति का सजग प्रहरी। एक स
द्रुमो की छांह म ग्राराम पाता था
पर तपता था। युग न करवट स

5

- राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता
- प्रवृत्ति विश्लेषण
- वैयक्तिक कविता
- प्रवृत्ति विश्लेषण
- मूल्यांकन

मिकालवर भावी समाज के लिए नवल सृष्टि रचने म सलग्न रहा। एक ने ग्रतीत के समुद्र मथन से ग्रमृत निकालकर वर्तमान को दिया ग्रौर दूसरे ने वर्तमान जीवन की ग्रनुभावना कर भावी के लिए स्वप्न सँजोये। भावुक भी दोनो थे। प्रसाद की भावुकता ग्रकेली नही है। उन्ह सहचर के रूप म चिन्तन भी मिला है। ग्रत प्रसाद मे हृदय ग्रौर बुद्धि का समन्वय है, भाव ग्रौर तक का समायोजन हैं रग ग्रौर रूप की मैत्री है, दिव्य ग्रौर मधुर का सगम है, शरीर ग्रौर मन का सग्रथन हैं, लता ग्रौर वृत का मिलन है, पुष्प ग्रौर गध का ग्रथिबधन है ग्रौर क्षितिजो का सौन्दर्य है। पत मे भी यह समन्वय तो है, पर वह एकात्मकता नही जो प्रसाद के पास हैं। पत का चिन्तक ग्रौर भावुक पूरी तरह मिल नही पाया है। पत के पास भावुकता का तीर तो है जो पाठक के मम को बेध देता है, पर तर्क का वह कवच नही जो भावुकता के तीर से ग्रपनी रक्षा कर सके। फ्लत पत घायल करते हैं, किन्तु प्रसाद घायल करने के साथ-साथ उसकी मरहम पट्टी भी कर देते हैं।

☐

5 उत्तर छायावादी कविता : राष्ट्रीय सांस्कृतिक और वैयक्तिक कविता

सन् 1938 तक पहुँचते-पहुँचते छायावाद ह्रासोन्मुख होता गया और उसके समानांतर ही कुछ ऐसी कविताएँ लिखी जाने लगी जो अपने प्रारंभिक रूप में तो छायावादी थीं, किन्तु शीघ्र ही उनका रूप-स्वरूप बदल गया। छायावाद और प्रगतिवाद के मध्य में जिस कविता का प्रचलन हुआ वह दो रूपों में हमारे सामने आई है राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता और छायावादोत्तर गीति कविता अथवा प्रणयमूलक वैयक्तिक कविता। सामान्यतः इन दोनों काव्य-धाराओं की उपेक्षा की जाती रही है किन्तु इतिहासकार की दृष्टि इन्हें विस्मृति के गर्त में नहीं धकेल सकती है। यहाँ संक्षेप में इन पर विचार करना आवश्यक है क्योंकि ये वे धारायें हैं जो एक ओर तो छायावादी पृष्ठिका पर खड़ी हैं और दूसरी ओर प्रगतिवादी कविता के विकास के लिए ठोस भूमि तैयार करती प्रतीत होती हैं।

राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता

आधुनिक कविता की विशिष्ट प्रवृत्ति के रूप में राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता को लिया जा सकता है। इसमें देश-भक्ति और राष्ट्रीयता के भावों का गहरा प्रसार दिखाई देता है। अपने पूर्ववर्ती काव्य की तुलना में इस धारा में उग्रता गहरी है। इस उग्रता का कारण अंग्रेजों की साम्राज्यवादी एवं शोषक वृत्ति को माना जा सकता है। अंग्रेज अपने दमन-चक्र का निरन्तर विस्तार करते गये; देशवासी पिसते गये और अंग्रेज अपने देश को समृद्ध करते गये। इसी प्रवृत्ति की प्रतिक्रिया स्वरूप [illegible] छायावादी संस्कारों के कवियों के हृदय में विद्रोह की आग भड़क उठी। आग की लपटें जैसे-जैसे तेज होती गईं, वैसे-वैसे कवियों का संवेदनशील हृदय आक्रोश से भरता गया। ऐसे कवियों में माखनलाल चतुर्वेदी, रामधारीसिंह दिनकर, रामनरेश त्रिपाठी, बालकृष्ण शर्मा नवीन और सुभद्रा कुमारी चौहान आदि का नाम विशेषोल्लेख्य है। ये वे कवि हैं जिन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से राष्ट्रप्रेम को मुखरित किया है। डॉ० नगेन्द्र ने इन कविताओं को दक्षिण-पक्षीय विचारधारा के अन्तर्गत स्वीकार करते हुए लिखा है, "छायावाद में जहाँ गांधीवाद का सौन्दर्य व चिन्तनपक्ष मिलता है, वहाँ इन कविताओं में उसके भावात्मक और क्रियात्मक रूप की अभिव्यक्ति मिलती है।"[1]

---

1. डॉ० नगेन्द्र : आस्था के चरण पृष्ठ 235

छायावाद और प्रगतिवाद के मध्य सेतु रूप में जो काव्य-प्रयत्न सामने आये वे राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता और प्रणयमूलक वैयक्तिक कविता की संज्ञा से अभिहित किये जा सकते हैं। राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता जिस कलम से लिखी गई वह राग और उत्साह के स्वरों की साधना अधिक रत रही है। इन कवियो के हृदय में विदेशी शासन के प्रति जितना गहरा आक्रोश था, उससे कहीं अधिक प्रेम अपने देश के लिए था। इनका आक्रोश अपेक्षाकृत उग्र था। और इस उग्रता का कारण अंग्रेजों की साम्राज्यवादी नीति और शोषक वृत्ति थी। आग की लपटें जैसे जैसे तेज होती गई, वैसे वैसे कवियो का सवेदनशील हृदय आक्रोश से भरता गया। यही कारण है कि आजादी के दीवाने और स्वतत्र अस्तित्व के आकाक्षी इन कवियो ने देश-प्रेम नवनिर्माण, विद्रोह अतीत का सस्तुतिपरक गान और असहयोग व आत्मवलिदान के गीत अधिक गाये हैं। ये वे कवि थे जो राष्ट्रीय प्रेम के प्रसारक भी थे और आजादी की लड़ाई का एक हिस्सा भी थे।
वैयक्तिक प्रणयमूलक कविता आदर्शवादी और भौतिकवादी मूल्यो और मान्यताओं की मध्यवर्ती काव्य धारा है। यह वह कविता-धारा है जिसने छायावाद की अंगुली पकड़कर चलना सीखा पर किंचित् भिन्न मार्ग अपनाकर प्रगतिशील कविता के लिए भूमिका भी तैयार की। ऐसी स्थिति में इसे छायावाद की अनुजा और प्रगतिवाद की अग्रजा कहा जा सकता है।

5 उत्तर छायावादी कविता : राष्ट्रीय सांस्कृतिक और वैयक्तिक कविता

सन् 1938 तक पहुँचते-पहुँचते छायावाद ह्रासोन्मुख होता गया और उसके समानांतर ही कुछ ऐसी कविताएँ लिखी जाने लगी जो अपने प्रारंभिक रूप मे तो छायावादी थी, किन्तु शीघ्र ही उनका रूप-स्वरूप बदल गया। छायावाद और प्रगतिवाद के मध्य मे जिस कविता का प्रचलन हुआ वह दो रूपो मे हमारे सामने आई है राष्ट्रीय सास्कृतिक कविता और छायावादोत्तर गीति कविता अथवा प्रणयमूलक वैयक्तिक कविता। सामान्यत इन दोनो काव्य-धाराओ की उपेक्षा की जाती रही है किन्तु इतिहासकार को दृष्टि इन्हे विस्मृति के गर्त मे नही धकेल सकती है। यहाँ सक्षेप मे इन पर विचार करना आवश्यक है क्योंकि ये वे धाराये हैं जो एक ओर तो छायावादी पृष्ठिका पर खडी हैं और दूसरी ओर प्रगतिवादी कविता के विकास के लिए ठोस भूमि तैयार करती प्रतीत होती हैं।

राष्ट्रीय सास्कृतिक कविता

आधुनिक कविता की विशिष्ट प्रवृत्ति के रूप मे राष्ट्रीय सास्कृतिक कविता को लिया जा सकता है। इनमे देश-भक्ति और राष्ट्रीयता के भावो का गहरा प्रसार दिखाई देता है। अपने पूर्ववर्ती काव्य की तुलना म इस धारा मे उग्रता गहरी है। इस उग्रता का कारण अंग्रेजो की साम्राज्यवादी एव शोषक वृत्ति को माना जा सकता है। अंग्रेज अपने दमन-चक्र का निरन्तर विस्तार करत गये; देशवासी पिसते गये और अंग्रेज अपने देश को समृद्ध करते गये। इसी प्रवृत्ति की प्रतिक्रिया स्वरूप कतिपय छायावादी सस्कारो के कवियो के हृदय मे विद्रोह की आग भडक उठी। आग की लपटें जैसे-जैसे तेज होती गई, वैसे-वैसे कवियो का सवेदनशील हृदय आक्रोश से भरता गया। ऐसे कवियो मे माखनलाल चतुर्वेदी, रामधारीसिह दिनकर, रामनरेश त्रिपाठी, बालकृष्ण शर्मा नवीन और सुभद्रा कुमारी चौहान आदि का नाम विशेषोल्लेख्य है। ये वे कवि है जिन्होने अपनी कविताओ के माध्यम से राष्ट्रप्रेम को मुखरित किया है। डॉ० नगेन्द्र ने इन कविताओं को दक्षिण-पक्षीय विचारधारा के अन्तर्गत स्वीकार करते हुए लिखा है "छायावाद म जहाँ गाधीवाद का सौन्दर्य = चिन्तनपक्ष मिलता है, वहाँ इन कविताओं मे उसके भावात्मक और क्रियात्मक रूप की अभिव्यक्ति मिलती है।"[1]

---

1 डॉ० नगेन्द्र : आस्था के चरण पृष्ठ 235

प्रवृत्ति-विश्लेषण :

राष्ट्रीय सास्कृतिक कविता, जिस कलम से लिखी गई वह राग और उत्साह के स्वरो की साधना मे अधिक प्रवृत्त रही है। इस धारा के कवियो के हृदय म विदशी शासन के प्रति जितना गहरा आक्रोश था; उसस कही अधिक प्रेम अपन देश के लिये था। *यही कारण है की आजादी के दीवान और स्वतत्र अस्तित्व के हामी इन कवियों* ने देश प्रेम, नव-निर्माण, विद्रोह, अतीत का मस्तुतिपरक गान और असहयोग व आत्म बलिदान के गीत अधिक गाये हैं। ये वे कवि थ जो राष्ट्रीय प्रेम के प्रसारक भी थे और आजादी की लडाई का एक हिस्सा भी थे। यही वजह है कि इन की देशानुराग व्यंजक कविताओ मे अनुभूति की सचाई भी है और वास्तविक आक्रोश भी। इस काव्य धारा की प्रमुख प्रवृत्तियो का विश्लेषण इस प्रकार किया जा सकता है

१ देश भक्ति राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता का प्रमुख स्वर है। इसम न केवल उत्साह का भाव गहरा है, वरन राग का भाव भी विद्यमान है। या भी देशभक्ति व्यक्तिपरक न हाकर समष्टिपरक भाव है। अत इस धारा के कवियो म देशभक्ति राग और उत्साह स मिलकर पर्याप्त उदात्त हो गई है। देशभक्ति की भावना रीति काल मे भी थी, किन्तु वहाँ यह शृ गार की लहरो म खोई हुई थी। भूषण का स्वर बिहारी की शृ गारिकता से दब गया है। वीरगाथाकाल की देश-भक्ति हिन्दुत्व व सकीर्णता का पर्याय है। आधुनिक काल मे भारतेन्दु के सहारे यही देश भक्ति किंचित् नया रूप धारण कर सकी है। इसी नये रूप का व्यापक और उदात्त स्वर आलोच्य काव्य-धारा म उपलब्ध होता है। शौर्य का प्रदर्शन और वीर भाव ही देश भक्ति नही है। देश *भक्ति का सच्चा स्वरूप वही है जो राग और उत्साह की समन्वित अभिव्यजना* का पथ प्रशस्त करता है। 'उत्साह' राष्ट्रीयता का सूचक है और राग मानवीय सास्कृतिक रूप का। देश भक्ति की यह भावना भारतीय आत्मा माखनलाल, रामनरेश त्रिपाठी और नवीन जी के काव्य म स्पष्टत मुखरित हुई है।

2 राष्ट्रीय सास्कृतिक कविता मे उत्साह का जो रूप मिलता है, उसे पराधीनता और दमन के विरुद्ध प्रदर्शित सघर्ष मे देखा जा सकता है। यही वह स्थल है जहाँ स्वातत्र्य और बलिदान के गहरे भावो को देखा जा सकता है। अत भारत की आत्मा का प्रतीक कवि कह उठा है

> **बलि होने की परवाह नहीं, मैं हूँ कष्टों का राज्य रहे।**
> **मै जीता 'जीता जीता हूँ' माता के हाथ स्वराज्य रहे।**
> **"नही जीते जी सकता देख, विश्व मे झुका तुम्हारा भाल।**
> **वेदना मधु का भी कर पान आज उगलूँगा गरल कराल।।"**

एक ओर भारतीय मानस आजादी पाने के लिए बैचेन और आतुर था और दूसरी ओर विदेशी शासक इस स्वातन्त्र्य कामना को कुचलने

की योजनाएँ बनाते रहते थे। इस स्थिति से न तो दिनकर बेखबर थे और न बालकृष्ण शर्मा नवीन। अत हुकार' का रचयिता दिनकर हृदय म विद्रोह और आग लेकर स्वातन्त्र्य बोध से पूरित होकर कह उठा था

> असि की नोको से मुकुट जीत,अपने सिर उसे सजाती हूँ,
> ईश्वर का आसन छीन कूद मैं आप खडी हो जाती हूँ।
> थर थर करते कानून न्याय, इगित पर इन्हे नचाती हूँ
> भयभीत पातकी धर्मो से अपने पग मैं धुलवाती हूँ।
> सिर भुका घमण्डी सरकारें करती मेरा अर्चन-पूजन ।।

नवीन जी ने भी आततायियो और विदेशी कुचक्रिया के विरुद्ध सुप्त जन शक्ति को जगाया है। कवि का विश्वास है कि भारतीय जन शक्ति का अखण्ड भण्डार है। उसकी हुकार मे वह चेतन दाह है कि विदेशी शासक के प्राण तडपन लगे

> ओ भिखमगे! अरे पतित तू ओ मजलूम अरे चिर दोहित,
> तू अखण्ड भण्डार शक्ति का जाग अरे निद्रा सम्मोहित।
> प्राणों को तडपाने वाली हुकारों से जल थल भरदे,
> अनाचार के अम्बारों मे अपना ज्वलित पलीता भरदे।

यह उद्बोधन मामूली नही है। इसमे देश के यौवन का पौरुषेय दाह है और है ऐसी चिनगारी जो देशाभिमान के आहत होने पर आग की लपटो का रूप धारण कर सकती है। उत्साह और राग से प्रेरित होकर इस धारा के कवियो म विद्रोह का स्वर पर्याप्त साफ सुना जा सकता है। विदेशी शासको की दमन नीति से क्रुद्ध होकर दिनकर का कवि हुकार उठता है और उसकी आत्मा चीत्कार कर उठती है

> 'पौरुष की बेडी डाल पाप का अभयरास जब होता है।
> ले जगदीश्वर का नाम खड्ग कोई दिल्लीश्वर धोता है।।
> धन के विलास का बोझ दुखी दुर्बल दरिद्र जब ढोता है।
> दुखिया को भूखों मार भूप जब सुखी महल मे सोता है।
> सहती सब कुछ मन मार प्रजा, कसमस करता मेरा यौवन ।।

वीर भावो से ओतप्रोत इस कविता धारा म विरोधी को हिसक विधि स दबाने की अपेक्षा अहिसक व बलिदानी भावो स प्रभावित करने की कोशिश दिखाई देती है। अहिसा और बलिदान की इस भावना म पराजय की प्रच्छन्न स्वीकृति अवश्य दिखाई देती है। यही कारण है कि माखनलाल चतुर्वेदी 'बलिशाला ही हो मधुशाला' का तराना छेडते हुए शीशदान का गुणगान करते दिखाई देते हैं

बलि के कपन मे जो आती भटकी हुई मिठास ।
यौवन के बाजीगर करता हूँ उस पर विश्वास ।।[1]

× × × ×

रक्त है ? या है नसो मे क्षुद्र पानी !
जांच कर तू सीस दे देकर जवानी ।।[2]

इसी प्रकार जब 'सुभद्राकुमारी चौहान' मातृ मदिर मे हुई पुकार चढ़ा दो मुझको हे भगवान" गाती हैं और जब 'सोहनलाल द्विवेदी' 'बिना चढाय शीश नही टूटेंगी माँ की कड़ियाँ' गाते हैं तब ये दोनो भी उक्त भाव को ही व्यक्त करते दिखाई देते हैं। वस्तुत इस प्रकार की कविताओ मे आत्म बलिदान का भाव गहरा है। ये वे कविताएँ हैं जिनमे ध्वस की अपेक्षा निर्माण का मगलकारी रूप है। इसके सहारे विदेशियो के शासन और शोषण मे हारे-थके व्यक्तियो को निराशा के परित्याग और कर्मठ स्वभाव का वरण सकेत किया गया है। यह गांधीवादी अहिंसा का वह रूप है जिसमे प्राणोत्सग वरेण्य है, हिंसा नही। अपने अधिकारो की प्राप्ति सिर देकर करने की सलाह उत्साह के श्रेष्ठतम रूप को प्रकट करती है। वास्तव मे अहिंसा वीरता का उज्ज्वलतम रूप है। गाधीजी ने यदि हिंसा को छोडकर अहिंसा का पक्ष लिया था तो इसका अर्थ यह नही था कि वे कायर थे, बल्कि यही वि द समय की आवाज को ठीक ढग से सुन रहे थे। उस समय अहिंसा को नीति या सिद्धान्त रूप मे वरण करने के अलावा कोई चारा भी नही था। हमारे पास देहबल था ही नही जिसका सहारा लिया जाता और हम विदेशियो के खिलाफ कुरुक्षेत्र का मैदान तैयार करते। अत मारने की अपेक्षा मरकर विजय पाने की भावना ठीक समय म लिया गया ठीक निर्णय था। यही कारण है कि माखनलाल, नवीन, दिनकर और सोहनलाल द्विवेदी सभी क्रोधोन्मत्त नही होते, अहिंसा और बलिदान की जमीन पर खडे होकर उत्साहोन्मत्त होते हैं। उनके इस उत्साह का रचनात्मक रूप था 'जो भारत के उत्कर्ष—उसके स्वर्णिम भविष्य के भावन म अभिव्यक्त होता था। स्वतन्त्रता से पूर्व हिन्दी के राष्ट्रीय कवियो ने भारत के मुक्ति—स्वग के अगणित चित्रो द्वारा जनता के विषाद सकुल मन म स्फूर्ति और उत्साह भरकर राष्ट्रीय आन्दोलन म महत्वपूर्ण योग दिया ।[3]

---

1 हिमकिरीटिनी पृ॰ 76
2 हिमकिरीटिनी पृ॰ 113
आस्था के चरण पृ॰ 241

4 देश भक्ति के रागात्मक स्वरूप का अकन भी इस धारा के कवियो का प्रिय विषय रहा है। देशभक्ति को प्रगट करने वाला राग दो प्रकार का होता है—पहला वह जिसमे कवि देशवासियो के प्रति प्रेम और सहानुभूति प्रदर्शित करता हुआ उनके दुख दारिद्रय के प्रति करुणा-घट उडेलता है और दूसरा रूप वह है जिसमे देश जडता का प्रतीकत्व छोडकर मूर्तिमान और सजीव रूपधारण करके सामने आता है। कहने की आवश्यकता नही ये दोना रूप राष्ट्रीय सास्कृतिक कविता मे मिलते हैं। वस्तुत भारत जैसे दिव्य मातृ-भूमि के सैकडो गरिमापूर्ण चित्र इस काव्यधारा की अनमोल निधि है। इस निधि को उजागर करने के प्रयत्न मे देश के अतीत का गौरवगान किया गया है। निराला जैसे कवि ने भी 'भारति जय विजय करे' मे भारतमाता के पवित्र उदात्त और भव्य रूप को प्रस्तुत किया है"

लका पदतल शतदल गर्जितोर्मि सागर जल,

धोता शुचि चरण-युगल, स्तव कर बहु अर्थ भरे।

मुकुट शुभ्र हिम तुषार, प्राण प्रणव ओंकार,

ध्वनित दिशाएँ उदार, शतमुख शतख मुखरे।

अनेक कविताएँ गवाही देती हैं कि हिमालय, गगा, यमुना, सिंध, पाटलिपुत्र, दिल्ली और कपिलवस्तु आदि का न केवल राष्ट्रीय महत्व है, अपितु सास्कृतिक महत्व भी है। क्यो न हो? इन सबके साथ भारतीयो की अनगिनत स्मृतियाँ जो लिपटी हुई हैं। 'दिनकर' की 'हिमालय' 'पाटलिपुत्र की गगा' और 'दिल्ली' जैसी कविताएँ इसी भूमिका पर लिखी गई हैं। 'नवीन जी की' हिन्दुस्तान हमारा है, कविता भी भारतीय सास्कृतिक परिवेश को अभिव्यजित करने वाली सशक्त कविता है।

5 आर्य-सस्कृति की प्रस्थापना और सास्कृतिक विकास का स्वप्न इस काव्य-धारा के सभी कवियो मे मिलता है। आजादी के पूर्व जो पराजय, दमन के प्रति विद्रोह और असतोष के गीत गाते थे वे ही आजादी के बाद विजय घोष का गान करने लगे। 'सियाराम शरण गुप्त' के मागलिक भावो स युक्त गीत विश्व-शाति की घोषणा प्रतीत होते हैं। यही कारण है कि भारतीय आजादी का पर्व बधनो से मुक्ति के रूप म नही मनाया गया है। वह तो उन सभी देशो का मुक्ति पर्व है जो साम्राज्यवाद और उप-निवेशवाद के खिलाफ लडते रह हैं। इस धारा मे भारत की विजय भौतिक न होकर आत्मिक मानी गई है क्योकि यह शस्त्र की विजय न होकर गाधी के अहिसा शास्त्र की विजय थी।

6 इस धारा के कवियो ने जनता को प्रमुखत यह बताया कि प्रत्येक व्यक्ति के पास शक्ति का असीम स्रोत है, किन्तु उसका उपलाभ तभी प्राप्त हो सकता है जबकि जनमानस मे जागृति और सघर्ष के गहरे भाव हो । जागृति से भरकर आत्मविश्वास के प्लेटफार्म पर खडे होकर नवीन जी ने 'चिरदोहित' और भिखमगे भारत को जागृति का सदेश दिया है। कवि कहता है .

"ओ भिखमंगे, अरे पराजित, ओ मजलूम, अरे चिरदोहित,
तू अखण्ड आधार शक्ति का, जाग अरे निद्रा सम्मोहित ।
प्राणो को तडपाने वाली हुंकारों से जल-थल भरदे ।
अंगारों के अंबारों मे अपना ज्वलित पलीता घर दे ।।"

कहने का तात्पर्य यह है कि जनता मे जागृति व आत्मविश्वास का भाव जगाने के लिये इस धारा के कवियो ने देश-भक्ति, राष्ट्रीयता और सास्कृतिक उत्थान के स्वरो को मुखरित किया है । कही-कही क्राति और ध्वस के स्वर भी सुने जा सकते हैं । "कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे उथल-पुथल मच जाये" जैसी पक्तियो का रचयिता नवीन और दिनकर इस क्षेत्र मे अग्रणी प्रतीत होते है । इसके अतिरिक्त आध्यात्मिकता और सामाजिकता के समन्वय पर भी जोर दिया गया है जिसे 'रामनरेश त्रिपाठी' की "मेरे लिये खडा था, दुखियो के द्वार पर तू, मैं बाट जोहता था तेरी किसी चमन मे" जैसी पक्तियो मे देखा जा सकता है । आजादी के दीवाने और स्वातत्र्य बोध के कायल इस धारा के कवियो ने देश की आजादी का समर्थन भी किया है । जब रामनरेश त्रिपाठी कहते हैं "चाहिए घर का रूल" अथवा "करेंगे क्या लेकर आप वर्ग, हमारा भारत ही सुख स्वर्ग" तब वे स्वातत्र्यभाव को ही अभिव्यक्त करते हैं । सक्षेप मे कह सकते हैं कि इस धारा की कविताओ के स्पष्टत. दो रूप हैं पहला वह जिसमे युग-धर्म और युग बोध का समन्वित रूप चित्रित किया गया है । दूसरा वह जो अपने युग के लिए सार्थक तो है ही, उसमे युग निरपेक्ष उत्कर्ष की स्थिति भी दिखलाई देती है । ध्यान से देखें तो इस काव्य-धारा की रचनाओ मे केवल तात्कालिक व सामाजिक-राजनैतिक उद्देश्य ही अभिव्यक्त नही हुये है, अपितु इनमे मानव जीवन को शक्ति प्रदान करने वाले साम्य, साधना, न्याय और स्वाधीनता आदि मूल्यो की भी प्रतिष्ठा की गई है । माखनलाल चतुर्वेदी की रचनाओ मे देश के प्रति गहन प्रेम और देश-कल्याण के लिये आत्मोत्सर्ग की भावना मिलती है तो सियारामशरण गुप्त मे विश्वबधुत्व और मानवता । नवीन जी प्रणय और राष्ट्रीयता के मिले जुले कवि हैं । उनमे राग और उत्साह का अद्भुत एकीकरण मिलता है । दिनकर की राष्ट्रीयता मे भी राग-उत्साह और प्रगतिशील तत्वो व जीवन-मूल्यो का स्वर स्पष्टत प्रतिध्वनित हुआ है । यो फैशन के नाम पर हिन्दी के अनेक कवियों ने राष्ट्रीय और सास्कृतिक भावो की अभिव्यजना की, किन्तु दिनकर, नवीन

ग्रौर मैथिलीशरण इस क्षेत्र मे ग्रागे रहे। 'नवीन' की राष्ट्रीयता सांस्कृतिक मूल्यो का रस लेकर पल्लवित ग्रौर पुष्पित हुई है तो दिनकर की राग-उत्साह ग्रौर प्रगतिशीलता के मच पर।

वैयक्तिक कविता :

छायावादी चेतना के समानातर या उससे ही एक दिशा विशेष मे विकसित काव्य-चेतना का एक पक्ष यदि राष्ट्रीय सास्कृतिक चेतना से वलयित था तो दूसरा पक्ष प्रणय, मस्ती ग्रौर मादकता की जमीन पर विकसित व्यक्तिवादी चेतना से। वैयक्तिक चेतना प्रवण इस काव्य धारा को प्रणय ग्रौर मस्ती की काव्य धारा भी कहा जा सकता है। यह काव्यधारा ग्रादर्शवादी ग्रौर भौतिकवादी मूल्यो ग्रौर मान्यताग्रो की मध्यवर्ती काव्यधारा है। इसमे ग्रादर्शवादी विचारधारा की व्यक्तिवादी ग्रौर भौतिकवादी वामपक्षीय धारणा का स्थूल ग्रौर मूर्त रूप है तथा परपरा ग्रौर ग्रध्यात्म के सूक्ष्म ग्रादर्शो के प्रति ग्रनास्था है। यह वह काव्यधारा है जिसने छायावाद की कोख से जन्म लिया ग्रौर किंचित् भिन्न मार्ग पर प्रवाहित होकर ग्रागामी प्रगतिशील कविता के लिए भूमिका तैयार की। ऐसी स्थिति मे इसे 'छायावाद की ग्रनुजा ग्रौर प्रगतिवाद की ग्रग्रजा' कहा जा सकता है। इस काव्यधारा के प्रमुख कवियो मे हरिवशराय बच्चन, रामेश्वर शुक्ल ग्र चल, भागवतीचरण वर्मा ग्रौर नरेन्द्र शर्मा ग्रादि के नाम विशेषत उल्लेखनीय हैं। इन सभी ने मस्ती ग्रौर ग्रल्हडता की कविता लिखी है। सभवत इसी ग्राधार पर इस काव्य धारा को कतिपय समीक्षको ने 'हालावादी' नाम से भी ग्रभिहित किया है।

वैयक्तिक कविता के प्रादुर्भाव के ग्रनेक कारण है। इनमे कुछ तो ऐतिहासिक ग्रौर सामाजिक हैं ग्रौर कुछ मनोवैज्ञानिक ग्रौर साहित्यिक कारण हैं। इन कारणो पर प्रकाश डालते हुए डॉ० नगेन्द्र ने लिखा है 'ऐतिहासिक सामाजिक कारणो मे सबसे प्रमुख तो था तत्कालीन जीवन मे व्यक्तिवाद की प्रतिष्ठा। वह दर्शन, राजनीति, ग्रर्थ-व्यवस्था तथा समाजव्यवस्था सभी म व्यक्तिवाद का युग था–जब ग्रनेक स्वदेशी-विदेशी प्रभावो के कारण मानव-चेतना मध्ययुगीन सामन्तवादी रुढियो से प्राय मुक्त हो चुकी थी ग्रौर ग्रपनी सत्ता के प्रति जागरूक हो गई थी। दर्शन के क्षेत्र मे बहुदेववाद के स्थान पर एकेश्वरवाद ग्रथवा ग्रद्वैतवाद की पुन प्रतिष्ठा, राजनीति मे व्यक्ति का बढता हुग्रा प्रभाव, ग्रर्थव्यवस्था मे पैत्रिक सम्पत्ति के स्थान पर व्यक्ति के ग्रपने पुरुषार्थ द्वारा ग्रर्जित पूंजी का विकास ग्रौर समाज के क्षेत्र मे व्यक्ति के प्रयत्नो की वर्धमान सफलता ग्रादि ऐसे सार्वभौम कारण उपस्थित हो गये थे जिनसे व्यक्तिवाद को ग्रत्यन्त प्रोत्साहन मिला"।[1] समाज मे मध्यवर्ग का महत्व बढ गया ग्रौर वही तत्कालीन समाज का व्याख्याता भी बना। उसने शिक्षा, साहित्य,

1 ग्रास्था के चरण पृष्ट 254

"यों भुज भरकर हिये लगाना है क्या कोई पाप ?
ललचाते अधरों का चुम्बन क्यों है पाप–कलाप ?

कहीं-कहीं तो 'नवीन' जी भी इस प्रणयावेग में इतने डूबे हैं कि ज्ञान, ध्यान, पूजा और पोथी के फट जाने की भी चिन्ता न करके कह उठे हैं—

हो जाने दे गर्क नशे में, मत पड़ने दे फर्क नशे में
ज्ञान ध्यान पूजा पोथी के फट जाने दे वर्क नशे में
ऐसी पिला कि विश्व हो उठे एक बार तो मतवाला
साकी अब कैसा विलम्ब भर भर ला तन्मयता हाला ॥

असल में मस्ती, खुमार और प्रणयावेग की यह कविता कहीं कहीं तो नैतिक सीमाओं को व्यर्थ का बोझ मानती हुई मुक्त और निर्बन्ध जीवन जीने की कामना को यहाँ तक ले आई है 'वह मादकता ही क्या जिसमें बाकी रह जाये जग का भय'। (बच्चन) यहाँ एक प्रश्न उठता है कि इन कवियों ने जिस मुक्त प्रेम और मुक्त सहचरण का वर्णन किया है क्या वह उस समय था या यदि नहीं था तो क्या उसके लिए तत्कालीन परिस्थितियों में कोई गुंजाइश थी ? मेरी धारणा है कि नर-नारी के मध्य उन्मुक्त भावों का आदान-प्रदान और यहाँ तक कि खुलकर साथ घूमने की इजाजत भी तत्कालीन समाज में नहीं थी। अतः उन्मुक्त प्रेम और स्वच्छन्द प्रेम की कल्पना सरस और मोहक तो थी, किन्तु व्यावहारिक नहीं थी। बच्चन, अंचल, नरेन्द्र शर्मा सभी के मानस में प्रेमिल तरंगें उठती थीं, किन्तु उठने के साथ ही वे बिला जाती थीं। नतीजा यह निकला कि उन्मुक्त प्रेम और विलास के गायक ये कवि निराशा, असंतोष और विषाद-अवसाद के गायक बनते गये। यों इस अवसाद का एक कारण आर्थिक वैषम्य और जीवनगत अभाव भी थे।

2 नरेन्द्र शर्मा, अंचल और बच्चन में जो विषाद भाव मिलता है, वह अबाध सौन्दर्य-पिपासा और संसार की क्रूरता की टकराहट से उत्पन्न हुआ है। इस विषाद के कई रंग हैं। यही कभी तो इन कवियों को नियति शासित प्रतीत होता है और कभी अन्य सामाजिक संदर्भों से जुड़ा प्रतीत होता है। सामाजिक संदर्भों के प्रति तो विद्रोह भी किया जा सकता है, किन्तु नियति के प्रति समर्पण के अलावा और कोई रास्ता नहीं है। नरेन्द्र शर्मा की 'प्रवासी के गीत' रचना इसका प्रमाण है। हाँ, यह ध्यान रहे कि नियति शासित होकर भी कवि की अभिव्यंजना है बेपर्द और बेलाग ही। वे कहते हैं

विश्व में अपवाद हूँ उपहास हूँ निष्ठुर समय का।
हथकड़ी बेड़ी बनादी नियति ने सब कामनाएँ ॥
दीन बंदी हूँ सुमुखि, पर भृकुटि संचालन करो तो ॥
तोड़ सकता हूँ निमिष में विश्व की सब शृंखलाएँ ॥

3 वैयक्तिक कविता की तीसरी स्वर तन्त्री मे निराशा और उदासी को लिया जा सकता है। यह निराशा प्रेम मूलक भी है और सामाजिक कारणो से भी उद्भूत है। जहाँ-जहाँ निराशा, टूटन, अवसाद और थकान है वहाँ-वहाँ कवियो का मानस वैयक्तिक और सामाजिक सघर्षों से लुट-पिटकर ही वैसा हुआ है। सामाजिक बधन, आर्थिक रिक्तता और देश की पराधीनता के कारण इन युवा कवियो का मानस न केवल जर्जरित हो गया था बल्कि टूट सा गया था। उनकी आर्द्र सवेदनाओ के चुक जाने के कारण अधरो का रस सूखता गया, वाणी की स्निग्धता और तन की ऊष्मा आत्मपीडन, टूटन और अवसाद से भरती गयी। अत ये कवि इन्ही भावो के गायक बनते गये। सभवत इसी कारण कुछ आलोचको ने इन कवियो के रोमास को 'क्षयी रोमास' कहा है; किन्तु यह ध्यातव्य है कि यह क्षयी रोमास सर्वत्र नही है, केवल वही है जहाँ अतृप्तियो और असफलताओ की पीडा ने इन्हे भीतर से झकझोर कर रिक्त कर दिया है। जहाँ यह रिक्ति है वहाँ ये रिक्त पात्र की तरह तो हो ही गये हैं, सारे जहान की निराशा के प्रतीक भी बन गय हैं।

4. वैयक्तिक कविता मे एक ओर तो अनियन्त्रित और अनिर्बधित भाव से प्रणयावेग की अभिव्यक्ति की गई है और दूसरी ओर आहत मन मे घर कर चुके अकेलेपन को अभिव्यक्त किया गया है। इन दोनो प्रवृत्तियो को निरूपित करने वाली ये पक्तियाँ देखिय

अनियन्त्रित प्रणयावेग :

1 "जब करूँ मैं प्यार
हो न मुझ पर कुछ नियत्रण
कुछ न सीमा, कुछ न बंधन
तब रुकूँ जब प्राण प्राणों से करें अभिसार।"

[एकात सगीत]

2. 'इस प्रेरित लोलित रति गति मे जब झूम झमकता विसुध गात
गोरी बाँहों मे बस प्रिय को कर दूँ चुम्बन से सुरा स्नात ।।

[अंचल अपराजिता]

अकेलेपन की अनुभूति -

"कितना अकेला आज मैं
सघर्ष मे टूटा हुआ
दुर्भाग्य से लूटा हुआ

परिवार से छूटा हुआ, कितना अकेला आज मैं ।
तू अकेला है अकेला कहा मुझसे हर सुबह, हर शाम ने ।।

[बच्चन]

'बच्चन' क कवि ने जिस अकेलेपन को सहा है यही उनके मानस मे पीडा, असफलता निराशा और सत्रास को जगा गया है। यह सत्रास, यह पीडा इस धारा के अन्य कवियो मे भी देखी जा सकती है । 'हृदय मे सताप मेरे/ देह मे है *ताप/ कौन है जो बात पूछे/ कौन है जो अश्रु पोंछे/ अश्रु मेरे सूख जाते/* किन्तु अपने आप' / जैसी पक्तियो म भी नरेन्द्र शर्मा ने अकेलेपन की अनुभूति और तज्जनित पीडा को ही वाणी दी है।

5 वैयक्तिक कविता मे उपलब्ध एक स्वर विद्रोह और आक्रोश का भी है । आर्थिक वैषम्य और सामाजिक समस्याओं से आहत होकर इन युवा कवियो का अह भाव *कही कही तो आहत विषधर की तरह फुफकारता प्रतीत होता है* । यह आहत अह इस काव्य धारा मे कही तो व्यक्ति के *प्रति व्यक्ति के विद्रोह* मे, कही नियति के प्रति आक्रोश के रूप मे और कही ईश्वरीय सत्ता के प्रति विद्रोह के रूप मे मुखरित हुआ है । बच्चन' के काव्य म विद्रोह के इन सभी रूपों को देखा जा सकता है । 'एकात सगीत' की य पक्तियाँ देखिये

1 व्यक्ति के प्रति व्यक्ति का विद्रोह

"मेरे पूजन आराधन को; मेरे सपूर्ण समर्पण को,
जब मेरी कमजोरी कहकर, मेरा पूजित पाषाण हँसा ।
तब रोक न पाया आसू मैं !!"

2. सस्था के प्रति विद्रोह

"धर्म सस्थाओ के बधन, तोड बना है वह विमुक्त मन ।"

इसी प्रकार 'क्षत शीश, मगर नत शीश नही' म नियति के प्रति विद्रोह व्यजित है तो 'प्रार्थना मत कर' मतकर, मतकर, मनुज पराजय के स्मारक हैं मठ, मस्जिद, गिरिजाघर म व्यक्ति का ईश्वर के प्रति विद्रोह भाव अभिव्यजित है ।

6 वैयक्तिक कविता मे व्यक्तिवादी दर्शन ही प्रमुखत मुखरित हुआ किन्तु यह छायावादी वैयक्तिक दर्शन मे भिन्न है । वहाँ एक अध्यात्म का आवरण सघन आस्था को प्रचारित करता दिखाई देता है तो यहाँ भौतिक पर्यावरण के सघन स्वीकार के कारण मान्य एव प्रस्थापित आस्थाओ के प्रति सन्देहात्मक और नकारात्मक दृष्टि दर्शना ही अधिक दिखाई देती है । चाहे बच्चन हो, चाहे अचल और चाहे नरेन्द्र शर्मा सभी के काव्य मे एक निषेधात्मक जीवन दर्शन दिखाई देता है । हाँ, बच्चन मे यह सर्वोपरि और सर्वाधिक सघन रूप में अभिव्यजित हुआ है । उनका परवर्ती काव्य इसका अपवाद है । इतने पर भी यह कहना गलत

है कि इस नकारात्मक दर्शन की कोई स्वस्थ परिणति नहीं हुई। नकार धीरे-धीरे स्वीकार बनता गया है। जीवन की अवसादमयी और निषेधमूलक स्थितियों से बाहर आकर बच्चन अंचल सभी जिजीविषा और आस्था के शिखरों की ओर बढ़े हैं। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि इस वैयक्तिक काव्य धारा में प्रतिफलित नकारात्मक दर्शन का एक भावात्मक पक्ष भी है। डॉ० नगेन्द्र की यह मान्यता ठीक है कि प्रत्येक भाव में जहाँ अभाव छिपा हुआ है, वहाँ प्रत्येक अभाव में भी भाव की सत्ता है। भाग्यवाद तथा संदेहवाद आदि का भावात्मक पक्ष एक सा भोगवाद ही है। भोगवाद के अतिरिक्त इस दर्शन का एक दूसरा भावात्मक रूप भी है जो उससे अधिक स्पृहणीय है और उसका आधार है मानव महानुभूति। यह दुखवाद का सहज परिणाम है। जिस बांधवभाव की सृष्टि बड़े-बड़े जीवनसिद्धान्त नहीं कर पाते, वह दुःख की समानता द्वारा सहज ही जागृत हो जाता है। सुख का समभावी प्रतिद्वन्दी है और दुःख का समभागी बांधव। यह सहज मानव महानुभूति या बांधव-भाव व्यापक मानववाद का ही एक अंग है।[1] ध्यान से देखें तो इस वैयक्तिक कविता के मानववाद में मानव महानुभूति और मानव मुक्ति के भाव भी मिलते हैं। 'बच्चन' ने तो अपने परवर्ती काव्य में सत्य, यथार्थ और समसामयिक परिवेश से इतना करीबी रिश्ता कायम कर लिया कि लगता ही नहीं यह उसी बच्चन की कविताएँ हैं जो यौवन, मस्ती और प्रणय की कविताएँ लिखा करता था। स्वप्नों का गायक बच्चन जब सत्य को पहचान लेता है तो वह न केवल अपने परिवेश को देखता है, अपितु उसमें हुए मूल्यगत विघटन से क्षुब्ध भी होता है, "आज सत्य / असह्य इतना हो गया है / कान में सीसा गला ढलवा सकेंगे / सत्य सुनने को नहीं तैयार होंगे" । [चार खेमे चौंसठ खूँटे] वस्तुतः 'बच्चन' ने अपने परवर्ती काव्य में मानव-मुक्ति और मानव महानुभूति दोनों से प्रेरित होकर कविताएँ लिखी हैं। कुल मिलाकर यही कह सकते हैं कि इस काव्य धारा में जो चिन्तन अभिव्यक्त हुआ है वह व्यक्तिवादी दर्शन है और उसका आधार मानव के भौतिक अस्तित्व की सहज स्वीकृति है। मानवीय अस्तित्व सुख-दुःख; स्वप्न और यथार्थ के मेल से ही सुरक्षित रह सकता है। उसके लिए कर्म, संघर्ष आस्था और मानवीय जिजीविषा आवश्यक है। स्पष्ट ही यह वह दर्शन है जो व्यक्तिवाद से भाग्यवाद और भोगवाद की राहों से होकर मानववाद की ओर बढ़ा है। इस मानववाद को नरेन्द्र, अंचल और बच्चन सभी की बाद की कविताओं में देखा जा सकता है।

7 इस वैयक्तिक कविता धारा में गीत भी हैं और मुक्त छंद बद्ध कविताएँ भी हैं। प्रायः जहाँ मानसिक ऊहापोह चित्रित है, प्रणय और तज्जनित भावों का अभिव्यंजन है वहाँ इन कवियों की कविता छंदबद्ध और प्रवाहमयी है। इसके विपरीत जहाँ कविता अनुभूति को पीछे कर विचारों की राह पर चली है, वहाँ प्रायः मुक्तछंद का प्रयोग किया गया है। वैचारिक स्वतन्त्रता के आग्रह पर छंद

1 आस्था के चरण पृष्ठ 261

के बंधनो को स्वत ही शिथिल हो जाना पडा है। यो समग्रत इस कविता म अभिव्यक्ति मूलक सादगी दिखलाई देती है। यद्यपि इस धारा के कवियो की भाषा है तो परिष्कृत, किन्तु उसमे प्रयुक्त शब्दावली हमारी जानी-पहचानी लगती है। शैली मे इतना आकर्षण और प्रभावी सौन्दर्य है कि शब्द सस्वर और पाठक से मुखातिब हो स्वय बात करते जान पडते है। 'बच्चन' का काव्य इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। शिल्प की शक्ति को द्विगुणित और शतगुणित करने का कार्य इन कवियो की ईमानी अनुभूतियो ने भी किया है क्योकि वे न तो अस्पष्ट हैं, न उलझी हुई हैं और न छायावादियो की तरह वायवीय ही हैं। इसी से इस धारा के कवियो की उपमाए, कथनभगिमाए भी सीधी और आत्मीय हो गई हैं। उनमे परायापन भी नही है और आरोपण भी नही है। अत कुल मिलाकर यही कह सकते हैं कि इस कविता मे जो कला प्रयुक्त हुई है वह सहज, विश्वसनीय और ऋजुतायुक्त है। लेकिन अभिव्यक्तिगत सादगी का अर्थ यह नही कि इसमें रगो का प्रसार कम है या सौन्दर्य की आक्रामक छवियाँ नही हैं। वे तो है क्योकि मूलत तो यह कविता युवा मानस मे बनती-सँवरती सवेदनाओ की ही कविता है न।

मूल्यांकन–

समग्र विवेचन के पश्चात् यही कहा जा सकता है कि छायावाद की अनुजा और प्रणय, मस्ती और बसतोपन भावो की वाहिका वैयक्तिक कविता एक अर्थ मे विश्वसनीय और यथार्थ कविता है। इसमे 'क्षयी रोमास' देखना, वासना का वेग देखकर नाक-भौ सिकोडना और प्रणयोन्माद के स्पष्ट चित्र देखकर उसे सस्ती और हल्की बताना उसके प्रति अन्याय है। हमारी धारणा है कि आरोपण यहाँ नही है, प्रेम और सौन्दर्य की छवियो पर सकोच की अर्गला डालकर किसी भी कवि ने अपने मनोवेगो को नियत्रित करने का प्रयास नही किया है। बच्चन, अ चल और नरेन्द्र शर्मा की कविता मे आई अनुभूतियाँ न केवल सहज और विश्वसनीय हैं, अपितु ईमानदार भी है। 'निशा निमत्रण' 'मिलन-यामिनी' और 'प्रवासी के गीत' इसके उदाहरण हैं। वस्तुत निश्छल अनुभूतियो की ऐसी बेपर्द व्यजना न तो छायावाद मे है, न छाया-वादोत्तर काव्य म। "आज मुझसे दूर दुनियाँ / है चिता की राख कर मे / माँगती सिंदूर दुनियाँ" / जैसी अकृत्रिम व्यजना, "कल / कल पर विश्वास किया कब करता है पीने वाला" या "आज हाथ मे था, वह खोया कल पर कौन भरोसा है" कहने वाला वर्तमानजीवी, क्षणभर को उन्मुक्त भोगी लग सकता है, पर उसका सहज स्वीकार भी नजरदाज नहीं किया जा सकता है। बच्चन के काव्य मे भरती का माल नही है क्योकि वहाँ सरल, ऋजु, और निश्छल अनुभूतियो की खपत ज्यादा है। हाँ नरेन्द्र शर्मा 'कहीं-कही' कच्चा माल लेकर अवश्य पाठको के सामने आते रहे हैं। जहाँ ऐसा हुआ है वही कविता कृत्रिम और अभिव्यक्ति शिथिल हो गई है।

□

6

- प्रगति प्रगतिशील और प्रगतिवाद
- प्रगतिवाद का अर्थ
- प्रेरणा-भूमि
- प्रवृत्ति विश्लेषण

  सामाजिक चेतना

  प्रकृति-सौदर्य

  नारी-भावना

  राष्ट्रीय भावनाएँ

  आस्था प्रेरित मानवता

  अन्तर्राष्ट्रीय सवेदनाएँ

  लोक चेतना

  व्यग्य वोध

  ईश्वर और धर्म

  वर्ग-सघर्ष और क्राति-भावना

- शिल्प
- समाकलन

५

छायावाद ने जीवन सौन्दर्य के संगमरमरी ताज को बना तो दिया, किन्तु वह आंखों को ही तृप्त कर सका। उसके झरोखों से मंदिर बयार तो आ सकी, पर उसका स्पर्श मात्र सिहरन पैदा कर सका, जीवन की अदृश्य शक्तियों को जागृत कर यथार्थ को झेलने की हिम्मत न दे सका। जीवन मात्रस्वप्न नहीं है। सत्य भी है। अतः उसके लिए केवल सपने काफी नहीं हैं। यही कारण है कि छायावादियों का स्वप्न सत्य के ताप से झुलसने लगा और धीरे-धीरे भीतर ही भीतर जनमानस में एक सुगबुगाहट हुई। जीवन चेतना ने करवट ली। एक नया मानवतावाद जन्मा, जीवन यथार्थ की ठोस धरती पर आ खड़ा हुआ और इसे अभिव्यक्ति देने वाला काव्य प्रगतिवाद कहलाया। प्रगतिवादी काव्य के जन्म और विकास में राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश तो सहायक हुआ ही है, मार्क्सवादी दर्शन, फ्रायडीय चेतना और छायावाद की जीवन शून्य व्यक्तिवादी कविता के प्रति प्रतिक्रियाभाव भी रहा है। .. प्रगतिवाद मूलतः रचना और आलोचना के क्षेत्र में नये दृष्टिकोण का वाहक बनकर आया था। उसकी दृष्टि धरती और समाज की ओर रही। उसने उपयोगितावादी मूल्यों को न केवल कविता से जोड़ दिया, अपितु अनिवार्यता के रूप में भी प्रस्तुत किया। प्रगतिवाद ने वर्ग-भेद की खाई को पाटने का काम तो किया ही, मनुष्य को सामाजिक और राजनैतिक भूमिका भी प्रदान की। .. .. वस्तुतः जो मानवीय चेतना अन्तर्जगत के गहन गह्वरों में जाकर भ्रमित हो गई थी और भटकन के प्रवेग में बाह्य जगत की पद्धति, रीति नीति और मानवीय समस्याओं को विस्मृति के गर्त में डाल चुकी थी, उसे सही अर्थ में समाजोन्मुखी करने का काम प्रगतिवाद ने ही किया।

6 प्रगतिवाद

छायावाद ने जीवन-सौन्दर्य के संगमरमरी ताज को बना तो दिया, किन्तु वह आँखों को ही तृप्त कर सका। उसके झरोखों से मदिर बयार तो आ सकी, पर उसका स्पर्श मात्र सिहरन पैदा कर सका। जीवन-शक्तियों को जागृत कर यथार्थ को झेलने की हिम्मत न दे सका। जीवन कोई स्वप्न नहीं है, सत्य है। अतः उसके लिए केवल सपन काफी नहीं हैं। यही कारण है कि छायावादियों का स्वप्न सत्य के ताप से झुलसने लगा और धीरे धीरे भीतर ही भीतर जनमानस में एक सुगबुगाहट हुई। जीवन-चेतना ने करवट ली और सपनों का गायक, सौन्दर्य का चित्रकार और भावोदधि में उतरकर उसके तल से दीप्ति और लावण्य के मोती खोज कर लाने वाला पंत भी जनता की भावनाओं का प्रतिनिधि बनकर नये जीवन सत्य की ओर अग्रसर हुआ। उसके पैर उस मिट्टी की ओर बढ़े जो जन्म भी देती है और जीवन-धारण करने के साधन भी। ऐसा अकारण नहीं, सकारण और सोद्देश्य हुआ। छायावाद अपने अन्तिम समय में कुण्ठाग्रस्त हो गया था। उसमें गत्यावरोध उत्पन्न हो गया था। धीरे धीरे इस स्थिति को साहित्यकारों ने पहचाना और तदनुकूल नये आयामों का विकास होता गया। एक नया मानवतावाद जन्मा, एक नयी चेतना-लहर आई और जीवन सपनों के कटघरे से निकल कर ठोस धरती पर आ खड़ा हुआ। धरती से मनुष्य को गहरे जोड़ने वाला मानवतावादी दृष्टिकोण अपने प्रारंभिक स्वरूप में पर्याप्त उदार था, शोषितों का उद्धारक था, किन्तु जब यह उद्धार सीमित क्षेत्र में ही निर्धारित किया जाने लगा तो राष्ट्रीयता का आविर्भाव हुआ। इसके मूल में जो दृष्टि थी, वह प्रगतिवादी थी जिसमें दलितों के प्रति सहानुभूति का भाव था। जब यही दृष्टि मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद और फ्रायडवाद की छाया में विकसित होकर सामने आई तो साहित्यिक हलकों में इसे 'प्रगतिवाद' की संज्ञा से अभिहित किया गया।

प्रगति प्रगतिशील और प्रगतिवाद :

गति जीवन का पर्याय है और अगति मृत्यु का। 'गति' 'प्र' उपसर्ग के योग से निर्मित होकर जिस शब्द के रूप में प्रस्तुत होता है उस 'प्रगति' का सामान्य अर्थ है आगे बढ़ना। जब यही 'प्रगति' शब्द साहित्य के संदर्भ में प्रस्तुत होता है तब वह उस साहित्य-सर्जना का अवबोधक बनकर आता है जो जीवन को निर्माणात्मक

गति प्रदान करती है। इस स्थिति में प्रगतिवाद साहित्य का वह रूप है जो जीवन को स्वस्थ एवं हितकारी दिशा प्रदान करता है। यो यह सामान्य अर्थ है। इसका विशिष्ट अर्थ तो मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद पर आधारित है। अत: प्रगतिवाद वह साहित्य-धारा है जो एक विशेष पद्धति से और विशेष दिशा में आगे बढ़ती है और उसी ओर जीवन को भी ले जाती है। निश्चय ही यह विशेष पद्धति और विशेष दिशा द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की ही दिशा है।

'प्रगतिवाद' के साथ ही 'प्रगतिशील' शब्द भी निरन्तर व्यवहृत होता रहता है। कुछ समीक्षक प्रगतिवाद और 'प्रगतिशील' को एक दूसरे का पर्याय व समानार्थक शब्द समझते हैं जो उनका भ्रम मात्र है। 'प्रगतिवाद' एक खास किस्म के साहित्य के लिये व्यवहृत शब्द है। इसके विपरीत 'प्रगतिशील' शब्द की परिधि में पर्याप्त व्याप्ति और विस्तृति है। फिर प्रगतिशीलता कब नहीं रही? वह तो युगानुरूप सदर्भों में प्रत्येक काल में रही है और रहेगी। कारण परिवर्तनशीलता जीवन, समाज और साहित्य का शाश्वत धर्म है। अत: प्रगतिशीलता युग-धर्म की व्याख्या का नाम है। जब 'प्रगति' शब्द में 'वाद' जुड़ जाता है तो वह एक देश-काल विशेष और समाज की मन: स्थिति के प्रकर्ष को तो निरूपित करता है, पर अपनी सीमाओं के घेरे में बंद भी हो जाता है। छायावाद की कोख से जन्मा हिन्दी का नया साहित्य प्रगतिशील तो है, किन्तु एक विशिष्ट सिद्धान्त और दर्शन के वादात्मक वृत्त में घिर जाने से सकीर्ण और निश्चित अर्थ का द्योतक भी हो गया है। अत: 'प्रगतिवाद' और 'प्रगतिशील' में वही अन्तर है जो 'वाद' और 'शील' में है। प्रगति दोनों में विद्यमान है, परन्तु एक की प्रगति 'वाद' युक्त है और दूसरे की 'शील' सयुक्त। 'शील' एक आचरणिक प्रक्रिया है और युगानुरूप साँचे में ढलकर नैरन्तर्य का बोध कराती है। इसके विपरीत 'वाद' का घेरा अधिक जड़, निर्जीव और अतिरिक्त विचारात्मक है। यही कारण है कि 'प्रगतिवाद' हिन्दी साहित्य में इतिहास बन गया और तत्कालीन परिस्थितियों से आक्रान्त होकर वात्याचक्र की तरह उठा और कुछ ही वर्षों में विलीन भी हो गया। 'प्रगतिशीलता' इस दौर से कभी नहीं गुजरती है। 'प्रगतिवाद' एक ही विशेष दृष्टि की—मार्क्सीय दृष्टि और धारणा की कीली पर घूमता है जबकि प्रगतिशीलता अनेक 'प्रोग्रेसिव' सदर्भों में स्नात होकर मानवता के विकास की भी हामी बनी रहती है। 'प्रगतिवाद' की प्रगति केवल शोषित, दमित और उत्पीडितों के प्रति सहानुभूति और समानानुभूति की भावना की परिचायिका है जबकि प्रगतिशील सर्जकों की प्रगति मानवीय जीवन की सर्वांगीण विकास यात्रा को मानवता के पाथेय से पूरा करती है। अत: विवेचित प्रगतिवादी कवियों ने व्याख्या के स्तर पर अपने इस मार्क्सवादी प्रगत्युन्मुखी दर्शन को प्रगतिशील बताया तो, किन्तु वे प्रगतिशीलता के नाम पर साम्यवादी 'प्रोपेगैण्डा' ही करते रहे। इन दोनों के अन्तर को प्रगतिशील विचारक शिवदानसिंह चौहान ने स्पष्ट शब्दों में यों कहा है "प्रगतिशील साहित्य और ये दोनों एकार्थक नहीं हैं और न प्रगतिशील लेखक का प्रगतिवादी होना

जरूरी है।" स्पष्ट ही प्रगतिशीलता की परिधि सच्ची *मानवता;* राष्ट्रीयता, जनतन्त्र, मानव-कल्याण और सांस्कृतिक उन्नयन से दीप्त और अनुरंजित होने के कारण व्यापक है। इसके अतिरिक्त प्रगतिवाद की 'अलमारी' में सीमित जगह होने के कारण केवल मार्क्सवादी दृष्टिकोण की प्रचारात्मक पुस्तकें ही समा पाती हैं।

प्रगतिवाद का अर्थ

अब प्रश्न है कि 'प्रगतिवाद' क्या है? 'प्रगति' और वाद के मेल से बने इस शब्द का सामान्य अर्थ ऊपर बताया जा चुका है। यहाँ इसका *काव्यसापेक्ष अर्थ-निरूपण* ही हमारा उद्देश्य है। जैसा कि कहा गया है प्रगतिवाद का मूलाधार द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद है जिसका प्रणेता मार्क्स है। मार्क्स राजनीतिज्ञ था। अत कहा जा सकता है कि राजनीति के क्षेत्र का मार्क्सवाद या साम्यवाद सामाजिक क्षेत्र का समाजवाद और दर्शन के क्षेत्र का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद ही साहित्य के क्षेत्र म प्रगतिवाद के रूप मे स्वीकृति पाये हुए है। हिन्दी के कवि समीक्षको और विचारको ने प्रगतिवाद की परिभाषा अपने-अपने ढग से दी है, किन्तु सभी परिभाषाओ म मार्क्सीय दर्शन की ही साहित्यिक अभिव्यंजना को प्रगतिवाद कहा गया है। श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा ने लिखा है 'प्रगतिवाद सामाजिक यथार्थवाद के नाम पर चलाया गया वह साहित्यिक आन्दोलन है जिसमे जीवन और यथार्थ के वस्तु-सत्य को उत्तर-छायावाद काल मे प्रश्रय मिला और जिसने सर्वप्रथम यथार्थवाद की ओर समस्त साहित्यिक चेतना को अग्रसर होने की प्रेरणा दी।" शिवदानसिंह चौहान ने प्रगतिवाद की व्याख्या और परिभाषा मे लिखा है "प्रगतिवाद साहित्य की धारा नही, साहित्य का मार्क्सवादी दृष्टिकोण है, जैसे रससिद्धान्त साहित्य की धारा नही, साहित्य का प्राचीन आध्यात्मिक दृष्टिकोण है। अत 'प्रगतिवाद' को सौन्दर्यशास्त्र सम्बन्धी मार्क्सीय दृष्टिकोण का हिन्दी नामकरण समझना चाहिए।" इन कथनो से स्पष्ट है कि 'प्रगतिवाद' कोई साहित्यिक दृष्टिकोण या धारा नही है। वह तो मार्क्सीय दृष्टिकोण और लक्ष्यो की सम्पूर्ति के लिए लिखा गया प्रचारात्मक साहित्य है। गाधी के सिद्धातो पर आधारित साहित्य जैसे गाधीवादी या अहिंसावादी साहित्य कहा जाता है, वैसे ही मार्क्सीय सिद्धान्तो के प्रचारार्थ निर्मित साहित्य ही प्रगतिवादी या मार्क्सवादी कहलाने का अधिकारी है। हाँ, जब इन सिद्धान्तो को पूरी तरह पचाकर या सर्जक के व्यक्तित्व का अविभाज्य अग बनाकर कलात्मक रीति से प्रस्तुत किया जाय और वह प्रस्तुति समग्र मानवता की हितसाधिका या सरक्षिका हो तब उसे साहित्य की व्यापक परपरा मे स्थान दिया जा सकता है, अन्यथा नही।

डॉ॰ नगेन्द्र ने भी 'प्रगतिवाद' को इसी भूमिका पर समझाया है। उनके अनुसार "प्रगतिवाद साम्यवाद का पोषक है और पूँजीवाद का शत्रु है। बल्कि यो कहना चाहिए कि प्रगतिवाद साम्यवाद की ही साहित्यिक अभिव्यक्ति है"।[1] वह जीवन के

1. डॉ॰ नगेन्द्र . आस्था के चरण पृष्ठ 266

त्मक भौतिकवाद केवल भौतिक विधान को स्वीकार करता है। ईश्वर और आत्मा की सत्ता का अस्वीकृत करता है। 'प्रगतिवाद' इसी द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का साहित्यिक रूपान्तर है। इस मार्क्सीय दर्शन का हीगेल के दर्शन से प्रेरणा प्राप्त हुई। 'हीगेल' ने सृष्टि क मूल म तीन अवस्थाओं को ही स्वीकृति दी है वाद, प्रतिवाद और युक्तवाद (Thesis, Antithesis and Synthesis) प्रत्यक वाद का प्रतिवाद हाना जरूरी है क्योंकि इम वाद–प्रतिवाद के सामजस्य स ही सिन्थेमिस' स्थापित होता है। मार्क्स ने चेतन को नकार दिया और विचार की अपेक्षा बाह्य जगत् की सत्ता को सवारा। उमन माना कि पदार्थ—'मैटर' ही चेतना का आधार है। इसके निमित्त धनात्मक और ऋणात्मक तत्वों (Positive and Negative) म सघर्ष अनिवार्य है क्योंकि मघर्ष के अभाव म चेतना ही स्फुरित और प्रकट नही हो सकती है। यही द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद है। इसी के सहारे वर्ग-सघर्ष की भावना विकसित हुई। परिणामस्वरूप उक्त दर्शन से प्रेरित व प्रभावित होकर जो साहित्य रचा गया उसम धर्म और ईश्वर का विरोध, वर्ग-सघर्ष की भावना का चित्रण साम्राज्यवाद और पूंजीपतियो का विरोध मार्क्स और रूस आदि का स्तवन, यथार्थ का चित्रण, शोषितो का चित्रण और क्रान्ति का सशक्त स्वर निनादित है।

'प्रगतिवाद' पर इसी द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद व साम्यवाद का प्रभाव है। साम्यवाद की स्थापना के लिए और मानव के हित के लिए क्रान्ति का स्वर इसी उद्देश्य व मान्यता का परिणाम है। प्रगतिवाद के उक्त दो तत्वो–द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद और साम्यवाद के अतिरिक्त तीसरा तत्व राष्ट्रीयता की भावना भी है। किन्तु ध्यान रहे राष्ट्रीयता केवल सर्वहारावाद अथवा जनवाद का ही पर्याय है। वस्तुत प्रगतिवाद को जिन शक्तियो व सिद्धान्तों ने प्रभावित किया है, उनम 'डार्विन' और 'फ्रायड' को भी विस्मृत नही किया जा सकता है। डा० नगेन्द्र ने ठीक लिखा है कि जीवन के भौतिक बौद्धिक मूल्यों की प्रतिष्ठा मे फ्रायड का योग 'मार्क्स' से कम नही है। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि प्रगतिवाद की जन्म-कथा मे उपरिनिर्दिष्ट सभी स्थितियो और मान्यताओ का हाथ है। हाँ, इनके अलावा यदि किसी साहित्यिक धारा की जीवन शून्यता ने भी इसे प्रेरित किया तो वह निश्चय ही छायावाद की वायवीयता अस्पष्टता, अर्धव्यक्त सत्यानुभूतियाँ और जीवनविरहित कल्पनातिशयता ही है। छायावाद अपने अन्तिम वर्षों म कुठाग्रस्त हो गया था। उसम गतिहीनता व निष्प्राणता के साथ साथ जीवन-तत्वो का अभाव भी चरम सीमा पर पहुँच गया था। स्वय छायावादी कल्पनाओ के धनी पत ने इस कमजोरी को जान लिया था। अत उन्होने ही पहल करके प्रगतिवादी रचनाओ का प्रणयन प्रारभ कर दिया था। उन्होने 'युगान्त' की घोषणा करके 'युगवाणी' प्रस्तुत करके प्रगतिवादी धारा से अपना नैकट्य स्थापित कर लिया था। निराला की प्रकृति तो पहले से ही प्रगतिशील थी।

1. आस्था के चरण पृष्ठ 265–66

बम ! यही है प्रगतिवाद के जन्म और विकास स्थापन की संक्षिप्त कथा। हिन्दी म जब 'प्रगतिवाद' का आगमन हुआ तब सन् 1937-38 का समय था। हिन्दी के लेखकों, समीक्षकों और कवियों ने मार्क्स, हीगेल और ऐंजिल्स को पढा, समझा और वे भी उसके प्रवाह म बह गये। इस काव्यधारा के प्रमुख कवियों म नागार्जुन, रागेय राघव, भगवतीचरण वर्मा, दिनकर, त्रिलोचन, रामविलास शर्मा, शील, शिवमंगल सिंह सुमन, केदारनाथ अग्रवाल, शमशेर और भारतभूषण अग्रवाल आदि कवियों का नाम लिया जा सकता है। 'पंत' और 'निराला' की रचनाएँ भी खासी प्रगतिवादी है किन्तु ये कवि इसके प्रभाव से सिक्त हो कर भी पूरी तरह मार्क्सवादी कवि नही है। इनकी प्रगतिवादी कविताओं मे भी छायावादी चेतना का रंग है। साथ ही इनकी कवितायें प्रगतिवाद की अपेक्षा प्रगतिशील अधिक हैं। यो पंत ने 'मार्क्स' का स्तवन भी किया है और मार्क्सवाद को स्थान भी दिया है :

धन्य मार्क्स ! चिर तमच्छन्न पृथ्वी के उदय शिखर पर।
तुम त्रिनेत्र के ज्ञान चक्षु से प्रकट हुए प्रलयंकर ।।

किन्तु उनका मार्क्सवाद आध्यात्मिक शिखरों से जा मिला है। यही स्थिति निराला की है। वे भी सांस्कृतिक-उत्थान और तदुपरान्त हस्तगत हुई मानवता के गायक है। इन कवियों की काव्य-चेतना म काव्यात्मकता अधिक है, प्रचारात्मकता और सिद्धान्त निष्ठता कम है। निराला ने तो प्रगतिवादियों व प्रयोगवादियों को व्यंग्य का निशाना भी बनाया है।

प्रवृत्ति-विश्लेषण :

'प्रगतिवाद' मूलत रचना और आलोचना के क्षेत्र मे नये दृष्टिकोण का वाहक बनकर आया है। उसकी दृष्टि समाज की ओर रही है। उसने उपयोगितावादी मूल्यों को न केवल कविता से जोड दिया, अपितु अनिवार्य बना कर भी प्रस्तुत किया। वस्तुत, 'प्रगतिवाद' और 'छायावाद' की दृष्टि दर्शना मे दो ध्रुवों का अन्तर है। एक समाज से कटकर कल्पना कानन म विचरता हुआ निजी सुख-दुख से पीडित रहा और दूसरा वर्ग-वैषम्य और ऊँच, नीच के खानों मे बँटे इन्सान के दर्द को सहानुभूतिपरक शब्दावली मे व्यक्त करता रहा। छायावादी कवियों की दृष्टि आकर्षण के तार से इस तरह बिंधी रही की वे जनमानस और उसकी सामाजिक अभिव्यक्ति की ओर झुक ही नही सके। अत किसी स्वस्थ सामाजिक दर्शन की अनुपस्थिति मे जनमानस क्षुब्ध हो उठा। इसी क्षुब्ध मानस की प्रतिक्रिया है प्रगतिवादी कविता। यही कारण है कि प्रगतिवाद मे समाज की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। इसम उस समाज की तसवीर है जो पीडित और शोषित है। प्रगतिवाद ने वर्ग भेद की खाई को पाटने का काम तो किया ही, साथ ही मनुष्य को सामाजिक और राजनीतिक भूमिका भी प्रदान की। इसके मूल मे कार्लमार्क्स की विचारधारा का प्रमुख हाथ है। 'मार्क्सवाद' की प्राय सभी प्रवृत्तियाँ और मान्यताएँ प्रगतिवादी काव्य मे दिखाई देती हैं। हाँ, कुछेक विशेषताएँ ऐसी भी हैं जो प्रगतिवाद की प्रगतिशील चेतना को व्यक्त करती हैं। प्रगतिवाद की प्रमुख प्रवृत्तियों का इस प्रकार विश्लेपित किया

जा सकता है सामाजिक जीवन के प्रति आग्रह, रूढ़ियों के प्रति विरोध और विद्रोह, शोषितों और पीड़ितों के प्रति महानुभूति की भावना। यथार्थपरक दृष्टि के वाहक इन कवियों ने प्रकृति, प्रेम, नारी, ईश्वर और धर्म को जिस नजरिये से देखा है वह प्रगतिशीलता का ही एक आयाम है। इस काव्यधारा में एक ओर तो 'मार्क्स' व 'रूस' का प्रशस्तिवाचन है तो दूसरी ओर पूँजीपति वर्ग का विरोध है, एक ओर वर्ग संघर्ष का चित्रण है तो दूसरी ओर ग्राम्य संस्कृति की प्रतिष्ठापना का प्रयास भी है।

सामाजिक चेतना

आदर्श के तरल वायुमंडल से निकलकर यथार्थ की पक्की जमीन पर आते ही प्रगतिवादी कवियों ने जन जीवन को देखा, हृदयंगम किया और कविताबद्ध किया। इस प्रक्रिया में जन जीवन की भीतरी और बाहरी दोनों ही तसवीरें उभरकर सामने आई हैं। सामाजिक उन्नति और नव निर्माण के दौरान सबसे पहले रूढ़ियों पर प्रहार किया गया। वे धार्मिक और नैतिक मान्यताएँ ताक में रख दी गई जो युगों से चली आ रही थीं। शोषितों और पीड़ितों के करुण गायक इन कवियों ने एक ओर मानवतावादी भावना का प्रसार किया तो दूसरी ओर शोषक वर्ग के प्रति उपेक्षा भाव भी दिखाया। इन्होंने किसान, मजदूर और मध्यवर्ग के लोगों की सामाजिक स्थिति को बड़ी सदाशयता के साथ देखा और उनके प्रति सहानुभूति प्रदर्शित की। यह तो निर्विवाद है कि इस क्षेत्र में यह छायावाद से आगे का कदम था। स्मरणीय यह है कि सामाजिक जीवन की यथार्थपरक तसवीर उतारते हुए भी ये कवि इस प्रचार में अधिक लगे रहे कि हमें शोषितों से सहानुभूति है, हम समाज का पुनर्गठन करना चाहते हैं। इससे यह तो प्रकट होता है कि ये कवि जीवन की ओर मुड़े हैं, किन्तु यह ठीक से जाहिर नहीं होता कि इन्होंने सामाजिक जीवन के अन्तस् में प्रवेश करके उसकी विकृत-विगलित और वास्तविक स्थितियों को नजदीक से देखा है। ऐसा उस जगह तो और भी साफ नजर आता है जहाँ ये कवि राजनैतिक दलबंदी, मार्क्स व रूस का खुला गुणगान करते नहीं अघाते हैं। प्रचारात्मक सदर्भों की भूलभुलैया में सामाजिक जीवन जहाँ-तहाँ बिखर गया है। व्यक्ति के सुख दुख का वह पहलू उसकी वे विवशताएँ, वे वशाघाती स्थितियाँ और वे असमर्थताएँ आकार नहीं पा सकी है जो जन जीवन के अन्तरंगी पहलू को गंभीरता से व्यक्त कर सकती हैं। समाज में चलते फिरते नर-कंकालों का वर्णन, मानव देहधारी जीवों का यथार्थ अंकन, उनकी विवशताओं का परिगणन मात्र कविता नहीं हो सकता है। हाँ, कविता वहाँ है जहाँ सामाजिक जीवन की विभीषिकाएँ, आपा-धापी; स्वार्थपुष्ट मनोवृत्तियाँ और दीन हीन स्थितियाँ रचनात्मक धरातल पर अभिव्यक्त हुई हैं। पंत के परवर्ती काव्य में और 'निराला' की प्रगतिशील कविताओं में इस रचनात्मक भूमि को देखा जा सकता है। यों यह रचनात्मक भूमि केदार अग्रवाल, शिवमंगलसिंह सुमन, नागार्जुन और मुक्तिबोध की कविताओं में है, किन्तु

जहाँ ऐसा नहीं है वहाँ से कविता गायब है, जीवन एकांगी है और शैली न केवल परिगणनात्मक हो गई है, बल्कि भद्दी और अकाव्यात्मक भी हो गई है। केदार ने लिखा है—

"अंध वासना मे नर खूब जिये, रँडियो के साथ सोया,
नर्क मे डूबा
सत्य, ज्ञान उच्चादर्श गड़ी मल-मूत्र की नालियों मे बहते हैं।"

इसी प्रकार जब 'रांगेय राघव' लिखते हैं कि "ठहर जा जालिम महाजन, तनिक तो तू खोल वह मदिरा विघूर्णित आंख अपनी, देख, कहाँ से लाया बना साम्राज्य" तो पूँजीवादी शक्तियो के खिलाफ आवाज ता सुनाई देती है, किन्तु यह आवाज कवि की संवेदना का हिस्सा नही मालूम देती है। देशव्यापी वर्ग-वैषम्य के बिम्ब प्रस्तुत करना, पीडितो और शोषितों के प्रति हमदर्दी प्रकट करना, शोषको को ललकारना और श्रमरत व्यक्तियो की बगल म खडे होकर उनकी बात सुनना-सुनाना सामाजिक चेतना की व्यंजना ता है, पर वैसी व्यंजना नही जो पाठक की चेतना का भी हिस्सा बन सके। हाँ, सुमन; मुक्तिबोध और नागार्जुन म ऐसी व्यंजनाएँ है और खूब हैं। कारण, ये कवि न केवल सामाजिक यथार्थ के चित्रकार है, अपितु समाज की विकृत-गहिल और विसगत स्थितियो के ध्वस पर नवनिर्मितियो के भी पक्षधर रहे हैं और इसी प्रयत्न मे इनकी कविताएँ 'रचना' का गुण भी लिए हुए दिखलाई देती हैं। मात्र यथार्थ का चित्रण करना या यथार्थ के नाम पर विकृतियो का कूड़ा इकट्ठा कर देना भर काफी नही होता है। उसके लिए जरूरी है कि कवि जनता को आश्वस्त करे, उसे आस्था और निर्माण के लिए प्रेरित करे और दलित-श्लथ समाज को नये सकल्प द्वारा तक जान की प्रेरणा भी दे ताकि नर ककालो मे भी जीवन पैदा हो सके, निराश-हताश व्यक्तियो की चेतना मे भी ऐसी शक्ति जाग सके जो मानवता को नष्ट होने से रोक सके। इस सामाजिक चेतना के सदर्भ मे 'मुक्तिबोध' की ये पंक्तियाँ पठनीय हैं— "ओ नागात्मन्! सक्रमण-काल मे धीरे धरो/ ईमान न जाने दो!! खोदो जड मिट्टी को खोदो/ ओ भूगर्भ शास्त्री/ भीतर का, बाहर का व्यापक सर्वेक्षण कर डालो / सामाजिक चेतना के पक्षधर और यथार्थ बोध के वाहक कवि की संवेदना का प्रसार उन लघु मानवो तक है जो दलित, शोषित और जीवनहीन है। मुक्तिबोध का कवि सभी दलितो-पतितो और उपेक्षितो के भीतर तक की यात्रा कर आया है और उसने अपनी इस अन्तर्यात्रा की सहानुभूतियो को जो निष्कर्ष दिया है वह यथार्थ है, काव्यात्मक है और है संवेदनात्मक

"मुझे भ्रम होता है कि प्रत्येक पत्थर मे चमकता हीरा है
हर एक छाती में आत्मा अधीरा है,
प्रत्येक सुस्मित में विमल सदानीरा है,

मुझे भ्रम होता है कि प्रत्येक वाणी मे, महाकाव्य पीडा है,
पल भर में सबमे से गुजरना चाहता हूँ
प्रत्येक उर मे से तिर आना चाहता हूँ
इस तरह खुद को ही दिये-दिये फिरता हूँ।"

कवि शिवमगलसिंह सुमन के काव्य मे सामाजिक विकृतियो के जो चित्र मिलते हैं, वे 'नागार्जुन' और मुक्तिबोध की ही भाँति जीवन की अन्दरूनी स्थितियो के 'ग्राफ' हैं। इन्होंने न केवल सामाजिक रूढ़ियो और परपरागत मान्यताओं का चित्रण किया है, अपितु उनसे उत्पन्न विभीषिकाओं और असमानताओं के निराकरण के लिए स्वस्थ समाज की कल्पना भी की है। इनकी सामाजिक चेतना निर्माणात्मक है। उसमे राख के ढेर मे छिपी चिनगारी को आग की लौ मे बदलने की आवयामय चेतना भी है और अस्वीकृतियो के ध्वस पर स्वीकृतियो मे जीवन को लहलहाते देखने की कामना भी, तभी तो कवि ने लिखा है :

पापी पेट पालने में ही, स्नेह सरसता छली गई है
छाती पर पत्थर धर माँ, अभी काम पर चली गई है
किसका स्नेह लाडला पथ पर, दीन दुखी अनाथ पडा है
यह किसका ककाल पडा है।

इन पक्तियो मे कवि की सामाजिक चेतना का स्वस्थ रूप दिखलाई देता है। यहाँ एक ओर तो दलितो व पीडितो के प्रति सहानुभूति का भाव है, दूसरी ओर पेट की आग से जलने वाली ममता की मूर्ति माँ की, स्नेह और सरलता जैसी मूल्यो के अभाव मे कटती, जिन्दगी का बिम्ब है। कवि का प्रतिपाद्य यह बताना है कि अपने स्नेह के जीवित प्रतिरूप को दुखी और अनाथ की तरह जमीन पर पडा छोडकर, छाती पर पत्थर रखकर जब माँ को पेट की आग बुझाने के लिए काम करना पडता है तब सामाजिक विकृतियाँ, मूल्यहीनता और अवाम्य जिन्दगी की स्थितियाँ त्रासद रूप धारण कर लेती हैं। ऐसी जिन्दगियो को सही जिन्दगियो मे बदलने और मानवीय मूल्यो की पुनर्प्रतिष्ठा की ललक का ही परिणाम है कि ये पक्तियाँ लिखी गई है। वस्तुत प्रगतिवादी काव्य की सामाजिक चेतना का असली रूप यही है। यदि यह स्वस्थ और चेतन दृष्टि सभी कवियो की रही होती तो प्रगतिवादी कविता के खाते मे कुछ वर्ष और 'क्रेडिट' हो गये होते।

आस्था प्रेरित मानवता

सामाजिक यथार्थ की दृष्टि से प्रगतिवादी कविता आशा, आस्था और निष्ठा की किरणें प्रसारित करती है। यद्यपि प्रगतिवादी कवि वर्तमान जीवन की विषमता दुख दैन्य और त्रासद स्थितियो से भली भाँति परिचित रहा है, किन्तु फिर भी वह

विचलित कहीं नही होता है। कारण; उसकी प्रचेता बुद्धि उसे भविष्य के प्रति ग्राश्वस्त करती है ग्रौर कवि विश्वास का सम्बल लिए जीवन की कुरूपताग्रो, विकृतियो ग्रौर ग्रार्थिक वैषम्य जनित पीडा को भी सहता जाता है। उसकी ग्रास्था का कमल विकसित होता जाता है। 'मुक्तिबोध' ने लिखा है

> **मेरे इस सांवले चेहरे पर कीचड के धब्बे हैं, दाग हैं;**
> **ग्रौर इस फैली हुई हथेली पर जलती हुई ग्राग है;**
> **ग्रग्नि विवेक की।**
> **नहीं नहीं वह तो है ज्वलत सरसिज**
> **जिन्दगी के दलदल कीचड में घँसकर**
> **वक्ष तक पानी में फँसकर;**
> **मैं वह कमल तोड लाया हूँ!।**

ग्रास्था की इस डोर को थामकर ही प्रगतिवादी कवि घुटन, निराशा ग्रौर पराजय की ग्रनुभूतियो पर विजय पाता रहा है। एकाकीपन का बोध यदि उसे उदासी के खाई-खन्दक मे कभी ढकेलता भी है तो वह व्यापक सामाजिकता की भूमिका पर खडा होकर उस खन्दक से निकल ग्राता है। इसी भूमिका पर खडे होकर 'त्रिलोचन' का कवि सोचता है कि "मैं न ग्रकेला कोटि-कोटि है मुझ जैसे तो"। यही भावना प्रगतिवादी कवि को ग्राशा, विश्वास ग्रौर दृढता की ग्रोर ले जाती है। केदार, रामविलास ग्रौर नागार्जुन सभी मे इस ग्रास्था प्रेरित भाव ग्रौर तज्जनित मानवतावादी दृष्टि को देखा जा सकता है। देश व्यापी-वर्ग वैषम्य का ग्रकन, पीडितो ग्रौर दलितो के प्रति सहानुभूति-प्रदर्शन, उत्पीडको व शोषको के विरुद्ध विद्रोह का स्वर ग्रौर धरती व धरती के पुत्र के प्रति मानवीय सवेदना का ग्रभिव्यक्तीकरण प्रगतिवादी कविता का मूल कथ्य है। यही कथ्य उसे मानवता से जोडता है। डॉ० शिवकुमार मिश्र का यह कथन सत्य प्रतीत होता है जिसमे कहा गया है "मानववाद के नाम पर घोर व्यक्तिवाद का नजारा दिखाने वाली तथा मानव मूल्यो के नाम पर ग्रराजकता का प्रचार करने वाली विचारणाग्रो की ग्रसलियत स्पष्ट करते हुए प्रगतिवादी कविता ने सिद्ध किया है कि मानववाद कोई लेबुल नही है कि हर कोई उसे ग्रपनी छाती से चिपकाये विज्ञापित करता फिरे"।[1] मेरी धारणा है कि प्रगतिवादी कविता मे जहाँ साम्प्रदायिक ग्रौर मार्क्सीय घेरे से निकलकर प्रगतिशील दृष्टिकोण ग्रपनाया गया है वही वह मानववादी हो गई है। इतना ही नही ग्रपनी इसी दृष्टि के कारण उसने मनुष्य के सचेतन व्यक्तित्व को प्राथमिकता दी है। इस भूमिका पर उसकी सारी कोशिश मानव-मुक्ति ग्रौर उसके स्वतन्त्र व्यक्तित्व के सामाजिक रूप को व्याख्यायित करने की ग्रोर रही है। मानव-मुक्ति ग्रौर व्यापक धरातल पर समग्र मानव-जाति की हित चिन्तना ही उसे मानवतावादी दृष्टि से भी जोडती है।

1 डॉ० शिवकुमार मिश्र : प्रगतिवाद पृ० 54

मुझे भ्रम होता है कि प्रत्येक वाणी मे, महाकाव्य पीडा है,
पल भर में सबमें से गुजरना चाहता हूँ
प्रत्येक उर मे से तिर आना चाहता हूँ
इस तरह खुद को ही दिये-दिये फिरता हूँ ।"

कवि शिवमगलसिंह सुमन के काव्य मे सामाजिक विकृतियो के जो चित्र मिलते हैं, वे 'नागार्जुन' और मुक्तिबोध की ही भाँति जीवन की अन्दरूनी स्थितियो के 'ग्राफ' हैं। इन्होने न केवल सामाजिक रूढ़िया और परपरागत मान्यताओ का चित्रण किया है, अपितु उनसे उत्पन्न विभीषिकाओं और असमानताओ के निराकरण के लिए स्वस्थ समाज की कल्पना भी की है। इनकी सामाजिक चेतना निर्माणात्मक है। उसम राख के ढेर मे छिपी चिनगारी का आग की लौ मे बदलने की आशामय चेतना भी है और अस्वीकृतियो के ध्वस पर स्वीकृतियो के जीवन का लहलहाते देखने की कामना भी, तभी तो कवि न लिखा है

पापी पेट पालने में ही, स्नेह सरसता छली गई है
छाती पर पत्थर धर माँ अभी काम पर चली गई है
किसका स्नेह लाडला पथ पर, दीन दुखी अनाथ पड़ा है
यह किसका ककाल पडा है।

इन पक्तियो म कवि की सामाजिक चेतना का स्वस्थ रूप दिखलाई देता है। यहाँ एक ओर तो दलितो व पीडितो के प्रति सहानुभूति का भाव है, दूसरी ओर पेट की आग स जलने वाली ममता की मूर्ति माँ की, स्नेह और सरलता जैसी मूल्यो के अभाव मे कटती, जिन्दगी का बिम्ब है। कवि का प्रतिपाद्य यह बताना है कि अपने स्नेह के जीवित प्रतिरूप को दुखी और अनाथ की तरह जमीन पर पडा छोडकर छाती पर पत्थर रखकर जब माँ को पेट की आग बुझाने के लिए काम करना पडता है तब सामाजिक विकृतियाँ, मूल्यहीनता और अकाम्य जिन्दगी की स्थितियाँ त्रासद रूप धारण कर लती हैं। एसी जिन्दगियो को सही जिन्दगियो म बदलने और मानवीय मूल्यो की पुनर्प्रतिष्ठा की ललक का ही परिणाम है कि ये पक्तियाँ लिखी गई हैं। वस्तुत प्रगतिवादी काव्य की सामाजिक चेतना का असली रूप यही है। यदि यह स्वस्थ और चेतन दृष्टि सभी कवियो की रही होती तो प्रगतिवादी कविता के खाते म कुछ वर्ष और 'क्रेडिट' हो गये होते।

आस्था प्रेरित मानवता

सामाजिक यथार्थ की दृष्टि से प्रगतिवादी कविता आशा, आस्था और निष्ठा की किरणें प्रसारित करती है। यद्यपि प्रगतिवादी कवि वर्तमान जीवन की विषमता दुख दैन्य और त्रासद स्थितियो से भली भाँति परिचित रहा है, किन्तु फिर भी वह

विचलित कही नही होता है। कारण उसकी प्रचेता बुद्धि उसे भविष्य के प्रति आश्वस्त करती है और कवि विश्वास का सम्बल लिए जीवन की कुरूपताओ विकृतियो और आर्थिक वैषम्य जनित पीडा को भी सहता जाता है। उसकी आस्था का कमल विकसित होता जाता है। मुक्तिबोध ने लिखा है

> **मेरे इस सांवले चेहरे पर कीचड के धब्बे हैं, दाग हैं,**
> **और इस फैली हुई हथेली पर जलती हुई आग है,**
> **अग्नि विवेक की।**
> नहीं नहीं वह तो है ज्वलत सरसिज
> जिन्दगी के दलदल कीचड में धँसकर
> वक्ष तक पानी में फँसकर,
> मैं वह कमल तोड लाया हूँ ![1]

आस्था की इस डोर को थामकर ही प्रगतिवादी कवि घुटन निराशा और पराजय की अनुभूतियो पर विजय पाता रहा है। एकाकीपन का बोध यदि उस उदासी के खाई-खन्दक मे कभी ढकेलता भी है तो वह व्यापक सामाजिकता की भूमिका पर खडा होकर उस खन्दक से निकल आता है। इसी भूमिका पर खडे होकर त्रिलोचन का कवि सोचता है कि मैं न अकेला कोटि-कोटि है मुझ जैसे तो। यही भावना प्रगतिवादी कवि को आशा विश्वास और दृढता की ओर ले जाती है। केदार रामविलास और नागार्जुन सभी मे इस आस्था प्रेरित भाव और तज्जनित मानवतावादी दृष्टि को देखा जा सकता है। देश व्यापी वर्ग वैषम्य का अवन पीडितो और दलितो के प्रति सहानुभूति प्रदर्शन उत्पीडको व शोषको के विरूद्ध विद्रोह का स्वर और धरती व धरती के पुत्र के प्रति मानवीय सवेदना का अभिव्यक्तीकरण प्रगतिवादी कविता का मूल कथ्य है। यही कथ्य उसे मानवता से जोडता है। डॉ० शिवकुमार मिश्र का यह कथन सत्य प्रतीत होता है जिसमे कहा गया है मानववाद के नाम पर घोर व्यक्तिवाद का नजारा दिखाने वाली तथा मानव मूल्यों के नाम पर अराजकता का प्रचार करने वाली विचारणाओ की असलियत स्पष्ट करते हुए प्रगतिवादी कविता ने सिद्ध किया है कि मानववाद कोई लबुल नही है कि हर कोई उसे अपनी छाती से चिपकाये विज्ञापित करता फिरे।[1] मेरी धारणा है कि प्रगतिवादी कविता मे जहाँ साम्प्रदायिक और मार्क्सीय घेरे से निकलकर प्रगतिशील दृष्टिकोण अपनाया गया है वही वह मानववादी हो गई है। इतना ही नही अपनी इसी दृष्टि के कारण उसने मनुष्य के सचेतन व्यक्तित्व को प्राथमिकता दी है। इस भूमिका पर उसकी सारी कोशिश मानव मुक्ति और उसके स्वतन्त्र व्यक्तित्व के सामाजिक रूप को व्याख्यायित करने की ओर रही है। मानव–मुक्ति और व्यापक धरातल पर समग्र मानव–जाति की हित चिन्तना ही उस मानवतावादी दृष्टि से भी जोडती है।

1 डॉ० शिवकुमार मिश्र प्रगतिवाद पृ० 54

अन्तर्राष्ट्रीय सवेदनाओं का निरुपण

प्रगतिवादी कविता की एक उल्लेखनीय विशेषता अन्तर्राष्ट्रीय सवेदनाओ की अभिव्यक्ति है। इस अभिव्यजना की इमारत प्रगतिवाद के उस जीवन दर्शन पर खडी है जा इस धारा के कवियो मे धरती प्रेम से उद्‌भूत हुआ है। यही कारण है कि भारत की दलित शोपित जनता के प्रति सहानुभूति का राग अलापने वाले य कवि राष्ट्रीयता से अन्तर्राष्टीयता की ओर भी बढे हैं। अन्तर्राष्ट्रीय सवेदनाओ को जो अभिव्यक्ति प्रगतिवाद मे मिलती है वह बडी सशक्त है। रूस हो या अमरीका अफ्रीका हा या वियतनाम जनता के सघर्षों तथा अभियानो म प्रगतिवादी कवियो ने पूरी मानवीय आस्था व दृढता प्रेरित निप्ठा को व्यक्त किया है। लुमुम्बा की हत्या पर भी नागार्जुन उतने ही दुखी हैं जितने कि गाधी की हत्या पर। वे कहते हैं—

> मैं सुनता हूँ अफ्रीका की आत्मा का आक्रोश,
> मैं सुनता हूँ काली धरती के कण-कण का रोष ।'

'शमशेर की अमन का राग' कविता भी व्यापक अन्तर्राष्ट्रीय बोध की जमीन पर लिखी गई है। इस जमीन पर खडे होकर पूव पश्चिमी का भेद भेद नहीं रह गया है, बल्कि एक ही आत्मा का ताना बाना बन गया है। उसके हृदय म समस्त सस्कृतियाँ एकाकार होकर एक ही रग खिलाती दिखाई देती है

> "ये पूरब-पच्छिम मेरी आत्मा के ताने बाने हैं
> मैंने एशिया की सतरगी किरनों को अपनी दिशाओं के गिर्द लपेट लिया
> और मैं यूरोप व अमेरिका की नरम आंच की धूप छांव पर,
> बहुत होले होले नाच रहा हूँ।
> सब सस्कृतियाँ मेरी सरगम मे विभोर हैं
> क्योंकि मैं हृदय की सच्ची सुख शाति का राग हूँ'॥

अन्तर्राष्ट्रीय सवेदना का यही प्रसार जिसम मनुष्य मनुष्य के दुख दर्द के इतिहास भूगोल को समझता है, देश-विदेश के मनष्यो के प्रति मानवीय प्यार लेकर उसे सब म वितरित करने को व्याकुल रहता है, युवा कवि रणजीत की कविताओ म भी बखूबी चित्रित हुआ है। पूरी निष्ठा के साथ व्यापक कैनवेस पर लिखी गई ये पक्तियाँ तो पढिये

> 'लेकिन मैं क्या करूँ,
> मेरे ज्ञान ने मेरी सवेदनाओं के क्षितिज कितने फैला दिये हैं
> कि दुनियाँ के कोने-कोने मे मैं अपने दोस्तो और दुश्मनों को देख रह हूँ
> मेरे दोस्त जो मेरे दुश्ममों से एक निर्णायक लडाई मे जूझ रहे हैं

ग्रौर पेरिस के किसी चौराहे पर फहरता हुग्रा मजलूमों का एक बुलन्द
इरादा जजीवर मे उठी हुई मुट्ठियों का एक जुलूस
न्यूयार्क मे रगभेद के खिलाफ कडकता हुग्रा एक नारा
मुझे उस तरह रोमांचित करता है जिस तरह महिनों की जुदाई के बाद
तुम्हारा पहला ग्रालिगन
ग्रौर टोकियो में एक मजबूरन टूटी हुई हडताल
लियोपोल्डविल में एक गिरफ्तारी,
सिगापुर में झुकी हुई गरदनो का एक का एक वापस लिया गया ग्रान्दोलन
मेरे दिल पर ग्रवसाद का इतना बोझ रख जाता है
कि मैं घटों किसी से बात भी नहीं कर पाता।"

[ये सपने ये प्रेत से]

राष्ट्रीय चेतना

यदि प्रगतिवादी कविता का वस्तुपरक विश्लेषण करें तो राष्ट्रीयता ग्रौर देश प्रम की भावनाएँ उसकी उल्लेख्य प्रवृत्तियो म शामिल करनी पडेंगी। राष्ट्र के प्रति प्रम, देश की धरती के प्रति सम्मान ग्रौर इस धरती की हर साँस से सम्पृक्ति का भाव प्राय सभी प्रगतिवादियो मे मिलता है। उल्लेख्य बात यह है कि राष्ट्रीय चेतना का ग्रथ देश की जड भौगोलिक सीमाग्रो की प्रशस्ति मात्र नहीं है। उसम वह सभी ग्रन्तर्भावित है जो इस देश ग्रौर इसकी मिट्टी से जुडा है। धरती के जर्रे जर्रे के प्रति ममत्व, हर उस जीवधारी के प्रति ममत्व जो यहाँ की मिट्टी से पैदा

विरोध म 3 शाति प्रसार की कामना म 4 सामाजिक सुधारो की भूमिका पर किये गये नव निर्माण की व्यजना के रूप मे 5 लोक जीवन की यथार्थ स्थितियो के ग्रकन म। विदेशी दासता के विरोध म रामविलास शर्मा, सुमन रांगेय राघव सभी ने ग्रावाज उठायी है ग्रौर उस भारतीय जनता का हार्दिक ग्रभिनदन किया है जो स्वाधीनता जैसे मूल्य को पाने के लिए प्राण पण से जुट रही थी। नागार्जुन की 'तपण व शपथ' जैसी रचनाएँ इसी सदभ को व्यक्त करती हैं। वस्तुत प्रगतिवादी कविता म न केवल साम्राज्यवादी शोषण के विरुद्ध ग्रावाज उठायी गई है, ग्रपितु ग्रपने देश के उन व्यक्तियो पर भी कहर बरसाया गया है जो ग्रपनी स्वार्थी वृत्तियो से प्ररित होकर देश के प्रति गददारी करत रहे।

इसी क्रम मे प्रगतिवादियो ने देश की आन पर मर मिटने वालो का स्तवन भी किया है, उन्हें काव्याजलियाँ भी भेंट की हैं और जन-समुदाय का सहानभूति व करुणा के जल से अभिषेक भी किया है जो पूँजीपतियो के शोषण का शिकार बना था। इस राष्ट्रीयता का एक सदर्भ वहाँ प्रगट होता है जहाँ कवि पूरी आस्था और सकल्प-शक्ति के साथ अभिशापित-तापित जीवन बिताने वाली जनता का एक नई शक्ति के साथ पूँजीपतियो के खिलाफ खडा होने की प्रेरणा देता है। साम्प्रदायिक भावो का विरोध युद्ध के स्थान पर शाति-प्रसार-स्थापन की कामना और नवनिर्माण की लालसा की सूचक अभिव्यक्तियो म भी राष्ट्रीयता और देश प्रेम की भावनाएँ ही कार्यरत दिखलाई देती हैं। जनता का शाति और सहजीवन की प्रेरणा देने वाले ये कवि राष्ट्रीयता का मत्र भी फूँकते रह हैं और पूँजीवाद क विरोध म आवाज भी उठाते रहे हैं। वर्ग वैषम्य इनके मन-प्राण को आन्दोलित करता रहा है तभी तो 'सुमन' का कवि-हृदय गा उठा है.

> बिक रहा पूत नारीत्व जहाँ, चाँदी के थोये टुकडों में।
> कर्त्तव्य पालता धनिक वर्ग मदिरा के जूँठे प्यालों में।।

इस काव्यधारा मे 1936 के आस पास सामाजिक सुधारो के लिए किये गये प्रयत्नो को भी वाणी मिली है। इसमे नारी स्वतत्रता, अस्पृश्यता का विरोध, शोषण और उत्पीडन के प्रति आक्रोश और घृणा के भाव प्रमुख हैं। असल म राष्ट्रीयता प्रगतिवादी काव्य की बहुत बडी उपलब्धि है। समूचे काव्य मे देशवासियो के सुख-दुख, उनकी आशा आकाक्षा तथा जीवन की विविध स्थितियो का चित्रण भी राष्ट्रीयता का ही सदर्भ प्रस्तुत करता है।

प्रगतिवादियो द्वारा देश और धरती की जनता के प्रति प्रदर्शित प्रेम-भावना भी राष्ट्रीयता का ही उदात्त और उन्नत रूप है। 'नागार्जुन' और 'केदार' का काव्य इसका उदाहरण है। 'नागार्जुन को धरती का स्तवन मात्र नाकाफी लगता है। यही कारण है कि वे सर्वसहनशीला, उन्नतपूर्ण वसुधरा के लिए श्रम की माँग करते हैं। 'नागार्जुन' ऐसी अन्नपूर्णा वसुधरा के समक्ष विनयावनत होकर कह उठे हैं

> "देवि ! तुम्हारी वसुधरा का वित्ता वित्ता रत्नाकर है
> जनयुग का यह रिक्तहस्त कवि
> देवि ! तुम्हारे लिए आज निज शीश झुकाता।।"

केदार, त्रिलोचन और रामविलास शर्मा की कविताएँ भी अपने अचल की मिट्टी की गध से गधित हैं। उनमे अचल विशेष के सास्कृतिक बिम्ब प्रस्तुत हुए हैं और इन बिम्बो म न केवल धरती की गध है, अपितु धरतीवासियो की हर्ष विषाद की स्याही से लिखी गई दैनदिनी भी है। यह धरती प्रेम जब और आगे बढा है तो अपने अचल की सीमाओ से भी आगे चला गया है। नागार्जुन के 'बाँदा' पहुँचने पर केदार अपनी धरती के प्रेम को सँजोते हुए भी नागार्जुन के रूप मे मिथिला की धरती

को देखकर उसके [illegible]

"आओ साथी गले लगा लूँ
तुम्हे, तुम्हारी मिथिला की प्यारी धरती को
तुममे ध्याये विद्यापति को
और वहाँ की जनवाणी के छंद चूम लूँ
और वहाँ के गढ़ पोखर का पानी छू कर नैन जुड़ा लूँ
और वहाँ की आवहवा से वह सुख पा लूँ
जो गीतों मे गाया जाकर कभी न चुकता"

इन पंक्तियों मे कवि का धरती प्रेम, जो राष्ट्रीयता का ही उदात्तीकरण है; विद्यमान है। डॉ० शिवकुमार मिश्र ने इन पंक्तियो पर टिप्पणी करते हुए लिखा है : "ये पंक्तियाँ ऊपर से देखने पर बहुत मामूली प्रतीत होती हैं, परन्तु इन्हें वही लेखनी और वही हृदय जन्म दे सकता है जिसका रेशा-रेशा इस धरती का अभिन्न अंग हो। पश्चिमी दर्शन की व्याख्याएँ कविता मे की जा सकती हैं, आधुनिकता का दावा पेश करते हुए शिल्प का समारोह भी जुटाया जा सकता है, नयेपन के नाम पर मानसिक ड्रामा की सजीव तसवीरें भी उतारी जा सकती हैं, प्रेम के नाम पर धरती तथा जनता के प्रेम को छोडकर दर्द और मुहब्बत के बडे-बडे किस्से कहे जा सकते हैं, परन्तु गोली से मारा जाकर भी न मरने वाला धरती तथा जनता का प्रेम नहीं उत्पन्न किया जा सकता और बिना उसके इन पंक्तियो की सृष्टि भी नहीं की जा सकती है। कोशिश करने वाले कोशिश करके देख सकते हैं।"[1] देश प्रेम संवलित राष्ट्रीयता इस रूप में और भी उभरकर सामने आती है जब 'केदार' का कवि हृदय की बात कहते हुए कहता है : "यह धरती है उस किसान की / जो मिट्टी का पूर्ण पारखी, / जो मिट्टी के संग-साथ है" / कहने की आवश्यकता नहीं कि प्रगतिवादी कवि ने धरती प्रेम व देश प्रेम की भावनाओ के माध्यम से राष्ट्रीय भावना को ही अभिव्यक्ति दी है। हाँ, कतिपय स्थलो पर प्रचारात्मक उक्तियो ने भाव-सौन्दर्य को कुछ खंडित किया है। फलतः वहाँ कविता जीवन-संचार नहीं कर पाई है।

लोक चेतना

पर आल्हा अवश्य सुनेंगे, रामायण का सस्वर पाठ जरूर करेंगे, तिथि-त्यौहारो में उत्सव तथा समारोह अवश्य मनायेंगे तथा ग्रहण या सक्रान्ति पर गोल-के-गोल बाँधकर गगास्नान को जरूर जायेंगे। साँझ सवेरे हथेलियो म धुले पुछे जलपात्र रखे कन्याओ तथा गृह बधुओ का मन्दिरों म जल चढ़ाने जाना तो रोज की बात है। दगल और कुश्तियाँ तो यहाँ की अपनी चीज हैं।', 'तात्पर्य यह है की प्रगतिवादी कविता में ग्राम्य जीवन के दु ख, दैन्य, पूजन, आराधन, राम विलास और उत्सव समारोह आदि सभी का चित्रांकन किया गया है। यही मानजीवन का वह परिपार्श्व है जो नयी कविता म और अधिक फैल गया है।

व्यग्य बोध :

प्रगतिवादी कविता का व्यग्य भी तीखा है। नागार्जुन, केदार व मुक्तिबोध म व्यग्य का नया रूप मिलता है। आज की सामाजिक व्यवस्था ही कुछ ऐसी है कि मनुष्य का मूल्य कीडे मकोडे स अधिक नही रह गया है। यही कारण है कि विक्षुब्ध गर्भवती ईश्वर से प्रार्थना भरी याचना करती है—

वैभव की विशाल छत्रछाया मे
स्वर्ण-सिहासन पर
रखी देख मन्दिरों मे पत्थर की मूर्तियाँ
क्षुब्ध हो गर्भवती
ईश्वर से माँगती है वरदान
केवल पाषाण हो
कोख की मेरी भी सन्तान !

केदार और नागार्जुन भी अच्छे व्यग्यकार हैं। केदार ने निकम्मे व्यक्तियो पर अच्छा व्यग्य किया है —

धोबी गया घाट पर राही गया बाट पर
मै न गया घाट और बाट पर
बैठा रहा टाट पर
जीता रहा ओस चाट-चाट कर ॥

नागार्जुन व्यग्यो के शिल्पी हैं। राजनैतिक नेताओ, सरकारी गैर-सरकारी, भ्रष्टाचार, घूसखोरी, बेईमानी, रईसो के ऐशोआराम मन्त्रियो और मठाधीशो की वासना लोलुप दृष्टि सभी नागार्जुन की व्यग्य-चेतना म समा गये हैं। प्रगतिवादियो मे नागार्जुन का व्यग्य अलग ही पहचाना जा सकता है। उनकी, 'पैसा चहक रहा है' जयति नखरजिनी, 'बजट कार्तिक;' दुखरनभा, प्रेत का बयान, तालाब की मछलियाँ और विजयी के वशधर कविताएँ इसका प्रमाण है। 'मुक्तिबोध' भी व्यग्यकार हैं। उनकी 'अँधेरे म' कविता के कई स्थल सुन्दर व्यग्य के उदाहरण हैं। आगे चलकर नयी कविता में जिस व्यग्य का विकास हुआ है, उसके लिए नागार्जुन का व्यग्य पृष्ठभूमि का काम करता है। प्राइमरी पाठशाला के मुदर्रिस दुखरनभा तथा उनकी शाला व

शिष्यमंडली का यह चित्र देखिये :

> "घुन खाए शहतीरों पर की बारहखड़ी विधाता बांचे
> फटी भीत है, 'छत' चूती है, ग्राले पर विसतुइया नाचे।
> लगा-लगा बेबस बच्चों पर मिनट-मिनट में पांच तमाचे
> इसी तरह से दुखरन‌मास्टर गढ़ता है आदम के सांचे।।

भूख से मरकर भी ग्राजाद भारत का ग्रध्यापक यही कहता है : 'तनिक भी पीर नहीं, दुख नहीं दुविधा नहीं / सरलता पूर्वक निकले थे प्राण / सह न सकी ग्रांत जब पेचिश का हमला।" 'प्रेत का बयान' का व्यग्य ग्राक्रामक भले न हो, परन्तु पाठक की संवेदना को भीतर तक छू जाता है। उसमें निम्नमध्यवर्गीय ग्रौर अल्पवेतनभोगी शिक्षक की करुणतम स्थिति को निरूपित करते हुए स्थापित व्यवस्था के प्रति व्यग्य किया गया है। ग्रत. वह नुकीला भले न हो, प्रभावी तो है ही। उसकी शैली कनपटीमार भले न हो; व्यवस्था की ग्रव्यवस्था की संकेतक जरूर है।

ईश्वर ग्रौर धर्म :

प्रगतिवादियों की प्रगतिशील चेतना ने ईश्वर ग्रौर धर्म के प्रति उदासीनता ही व्यक्त की है। इसके मूल में भौतिकवादी दृष्टि ही प्रमुख है। मार्क्सवादियों ने ग्रपनी विचारधारा में ईश्वर ग्रौर धर्म दोनों के ग्रागे प्रश्न चिन्ह लगा दिया था। प्रगतिवादियों ने इसी दृष्टि को ग्रपनाया है। ग्रत इनके काव्य में इन दोनों का ही खुलकर विरोध हुग्रा है। यह विरोध उन प्राचीन मान्यताग्रों के प्रति है जो रूढ़ियाँ बन गई हैं ग्रौर हमारा समाज जिन्हें ग्रपनी थाती समझकर जाने-ग्रनजाने ढो रहा है। केदार की'चित्रकूट के बौडम यात्री' रामविलास की 'मूर्तियाँ' ग्रौर पतजी की 'ग्रामदेवता' ग्रादि कविताग्रों में यही विरोध-भाव ग्रभिव्यक्ति पा सका है। ईश्वर ग्रौर धर्म के प्रति उपेक्षा भाव व्यग्य के सहारे ग्रभिव्यक्त हुग्रा है। जिस ईश्वर को लोग बड़े श्रद्धाभाव से याद करते हैं, उसका सम्मान प्रगतिवादियों ने 'घृणा की धूल' से किया है। नागार्जुन ने कलकत्ते की काली माई पर व्यग्य करते हुए 'कितना खून पिया है / जाती नहीं खुमारी / सुर्ख ग्रौर लम्बी है मैया जीभ तुम्हारी" / जैसी पक्तियाँ लिखी हैं। स्पष्ट है कि धर्म ग्रौर ईश्वर के प्रति व्यग्यभरी उपेक्षा प्रगतिवादियों में मिलती है। इसी उपेक्षा को विकसित रूप में नयी कविता में देखा जा सकता है। ईश्वर ग्रौर धर्म की उपेक्षा के मूल में विज्ञान की उपलब्धियाँ भी कार्यरत रही हैं। मानव ग्रस्तित्व के प्रति चिन्ता ग्रौर सतर्कता का भाव भी इसी भूमिका पर विकसित हुग्रा है।

वर्ग सघर्ष की तैयारी के लिये धर्म ग्रौर ईश्वर, परलोक ग्रौर भाग्य पर विश्वास न करना ग्रौर ईश्वर को ग्रसफल, मृत व धर्म को ग्रफीम का नशा मानकर चलने का भाव प्रगतिवादी कविता का उल्लेखनीय संदर्भ है। पत तक ने 'ईश्वर को मरने दो, वह फिर जी उठेगा" कहकर इसी भाव को पुष्ट किया है। ईश्वर के प्रति 'ग्र चल' का घृणाभाव भी इन पक्तियों में ग्राकर सिमट गया है :

पर आल्हा अवश्य सुनेंगे, रामायण का सस्वर पाठ जरूर करेंगे, तिथि त्योहारों में उत्सव तथा समारोह अवश्य मनायेंगे तथा कतकी या सक्रान्ति पर गोल-के-गोल बाँधकर गगास्नान को जरूर जायेंगे। साँभ सवेरे हथलियो म घुले पुष्प जलपात्र रखे कन्याओ तथा गृह वधुओ का मन्दिरो म जल चढ़ाने जाना तो रोज की बात है। दगत और कुश्तियाँ तो यहाँ की अपनी चीज हैं।, तात्पय यह है कि प्रगतिवादी कविता म ग्राम्य जीवन के दु ख दैन्य, पूजन आराधन राम विराम और उत्सव समारोह आदि सभी का चित्राकन किया गया है। यही ग्रामजीवन का वह परिपाश्व है जो नयी कविता म और अधिक फैल गया है।

व्यग्य बोध

प्रगतिवादी कविता का व्यग्य भी तीखा है। नागार्जुन, केदार व मुक्तिबोध म व्यग्य का नया रूप मिलता है। आज की सामाजिक व्यवस्था ही कुछ ऐसी है कि मनुष्य का मूल्य कीडे मकोड स अधिक नही रह गया है। यही कारण है कि विक्षुब्ध गभवती ईश्वर से प्रार्थना भरी याचना करती है—

> **वैभव की विशाल छत्रछाया में**
> **स्वर्ण सिंहासन पर**
> **रक्खी देख मन्दिरो मे पत्थर की मूर्तियां**
> **क्षुब्ध हो गभवती**
> **ईश्वर से माँगती है वरदान**
> **केवल पाषाण हो**
> **कोख की मेरी भी सन्तान !**

केदार और नागार्जुन भी अच्छे व्यग्यकार हैं। केदार ने निकम्मे व्यक्तियो पर अच्छा व्यग्य किया है —

> **धोबी गया घाट पर राही गया बाट पर**
> **मैं न गया घाट और बाट पर**
> **बैठा रहा टाट पर**
> **जीता रहा ओस चाट चाट कर ॥**

नागार्जुन व्यग्यो के शिल्पी हैं। राजनैतिक नेताओ, सरकारी गैर-सरकारी, भ्रष्टाचार, घूसखोरी बेईमानी रईसो के ऐशोआराम मत्रियो और मठाधीशो की वासना लोलुप दृष्टि सभी नागार्जुन की व्यग्य-चेतना म समा गये हैं। प्रगतिवादियो म नागार्जुन का व्यग्य अलग ही पहचाना जा सकता है। उनकी 'पैसा चहक रहा है जयति नखरजिनी 'बजट कातिक, दुखरनभा प्रेत का बयान तालाब की मछलियाँ और विजयी के वशधर कविताएँ इसका प्रमाण है। 'मुक्तिबोध भी व्यग्यकार हैं। उनकी 'अँधेरे म कविता के कई स्थल सुदर व्यग्य क उदाहरण हैं। आगे चलकर नयी कविता म जिस व्यग्य का विकास हुआ है उसके लिए नागार्जुन का व्यग्य पृष्ठभूमि का काम करता है। प्राइमरी पाठशाला के मुदर्रिस दुखरनभा तथा उनकी शाला व

शिष्यमडली का यह चित्र देखिये

> "घुन खाए शहतीरों पर की बारहखडी विधाता बाँचे
> फटी भीत है, 'छत' चूती है, आले पर विसतुइया नाचे।
> लगा-लगा बेवस बच्चो पर मिनट-मिनट मे पाँच तमाचे
> इसी तरह से दुखरनभा मास्टर गढता है आदम के साँचे ।।

भूख से मरकर भी आजाद भारत का अध्यापक यही कहता है 'तनिक भी पीर नही दुख नही दुविधा नही / सरलता पूर्वक निकले थे प्राण / सह न सकी आंत जब पेचिश का हमला । प्रेत का बयान' का व्यग्य आक्रामक भले न हो, परन्तु पाठक की सवेदना को भीतर तक छू जाता है। उसम निम्नमध्यवर्गीय और अल्पवेतनभोगी शिक्षक की करुणतम स्थिति को निरूपित करत हुए स्थापित व्यवस्था क प्रति व्यग्य किया गया है। अत वह नुकीला भले न हो, प्रभावी तो है ही। उसकी शैली कनपटीमार भल न हो, व्यवस्था की अव्यवस्था की सबतक जरूर है।

ईश्वर और धम .

प्रगतिवादियो की प्रगतिशील चेतना ने ईश्वर और धर्म के प्रति उदासीनता ही व्यक्त की है। इसके मूल मे भौतिकवादी दृष्टि ही प्रमुख है। मार्क्सवादियो ने अपनी विचारधारा मे ईश्वर और धर्म दोनो के आगे प्रश्न चिन्ह लगा दिया था। प्रगतिवादियो ने इसी दृष्टि को अपनाया है। अत इनके काव्य म इन दोनो का ही खुलकर विरोध हुआ है। यह विरोध उन प्राचीन मान्यताओ के प्रति है जो रूढियाँ बन गई हैं और हमारा समाज जिन्हे अपनी थाती समभकर जाने-अनजाने ढो रहा है। केदार की चित्रकूट के बौडम यात्री' रामविलास की 'मूर्तियाँ और पतजी की 'ग्रामदेवता' आदि कविताओ मे यही विरोध-भाव अभिव्यक्ति पा सका है। ईश्वर और धर्म के प्रति उपेक्षा भाव व्यग्य के सहारे अभिव्यक्त हुआ है। जिस ईश्वर को लोग बडे श्रद्धाभाव से याद करत हैं उसका सम्मान प्रगतिवादियो ने 'घृणा की धूल' से किया है। नागार्जुन ने कलकत्ते की काली माई पर व्यग्य करते हुए 'कितना खून पिया है / जाती नही खुमारी / सुर्ख और लम्बी है मैया जीभ तुम्हारी' / जैसी पक्तियाँ लिखी हैं। स्पष्ट है कि धम और ईश्वर के प्रति व्यग्यभरी उपक्षा प्रगतिवादियो म मिलती है। इसी उपेक्षा को विकसित रूप म नयी कविता म देखा जा सकता है। ईश्वर और धम की उपेक्षा के मूल म विज्ञान की उपलब्धियाँ भी कार्यरत रही है। मानव अस्तित्व के प्रति चिन्ता और सतकता का भाव भी इसी भूमिका पर विकसित हुआ है।

वर्ग सघर्ष की तैयारी के लिये धर्म और ईश्वर, परलोक और भाग्य पर विश्वास न करना और ईश्वर को असफल, मृत व धर्म का अफीम का नशा मानकर चलने का भाव प्रगतिवादी कविता का उल्लेखनीय सदभ है। पत तक न ईश्वर को मरने दो, वह फिर जी उठेगा" कहकर इसी भाव को पुष्ट किया है। ईश्वर के प्रति 'अचल' का घृणाभाव भी इन पक्तियो मे आकर सिमट गया है

"आज भी जन-मन जिसे करबद्ध होकर याद करते।
नाम ले जिसका गुनाहों के लिए फरियाद करते।।
किन्तु मैं उसका घृणा की धूल से सत्कार करता।।"

वर्ग-संघर्ष और क्रान्ति की भावना :

प्रगतिवादियों के अनुसार कविता में वर्ग संघर्ष को वाणी देना अनिवार्य है। इन्होंने वर्ग-संघर्ष के साथ ही सामाजिक और आर्थिक क्रान्ति को भी आवश्यक माना है। 'नॉवल एण्ड द पीपुल' के रचयिता 'रॉल्फ फॉक्स' 'ऑन आर्ट एण्ड लिटरेचर' के सर्जक लेनिन और 'इल्यूजन एण्ड रियेलिटी' के लेखक श्री कॉडवेल ने साहित्य में उक्त दृष्टिकोण की अभिव्यंजना पर जोर दिया है। दिनकर, अंचल और नागार्जुन की कविताओं में वर्ग-संघर्ष के अंकन के साथ ही सर्वहारा वर्ग के प्रति सहानुभूति अभिव्यक्त की गई है। 'हाहाकार' शीर्षक कविता में दिनकर ने लिखा है "देख कलेजा फाड़ दे रहे कृषक आज शोणित की धारें, और उठी जाती उन पर ही वैभव की ऊँची दीवारें"। इसके साथ ही अंचल का सर्वहारा वर्ग यह रूप लिये हुए है "और यही परिवार खड़ा है। भूखे शिशु अकुलाती माता, बच्चे से जिसको केवल पैदा करने का है नाता"। यही दुरवस्था क्रांति की जननी है। ये कवि क्रांति के द्वारा समाजव्यापी रूढ़ियों के गलित पलित कुष्ठ को क्रांति के नश्तर से 'ऑपरेट' करना चाहते थे। यही कारण है कि ये कवि 'हो यह समाज चिथड़े-चिथड़े शोषण पर जिसकी नींव पड़ी" कहकर 'इन्कलाब जिन्दाबाद' का नारा लगाते हैं। दिनकर ने क्रांति का उद्‌घोष करते हुए लिखा है :

श्वानों को मिलता दूध-वस्त्र, भूखे बालक अकुलाते हैं
माँ की हड्डी से चिपक, ठिठुर जाड़े की रात बिताते हैं
युवती के लज्जा वसन बेच जब ब्याज चुकाये जाते हैं
मालिक जब तेल फुलेलों पर पानी सा द्रव्य बहाते हैं
पापी महलों का अंधकार, देता मुझको तब आमन्त्रण।।

यही भाव जिसमें क्षोभ भरा आक्रोश है; अंचल की निम्नांकित पंक्तियों में भी देखा जा सकता है :

वह नस्ल जिसे कहते मानव, कीड़ों से आज गई बीती।
बुझ जाती तो आश्चर्य न था, हैरत है पर कैसी जीती।।

प्रकृति-सौन्दर्य

छायावादी कविता में प्रकृति की अभिनव सुषमा मिलती है। प्रकृति के प्रति जो दृष्टिकोण छायावादियों का था, ठीक वही प्रगतिवादियों का नहीं था। राजनैतिक और मार्क्सीय प्रभाववश वातावरण में अपेक्षाकृत कठोरता आ गई थी। इससे यह स्वाभाविक भी नहीं था कि ये प्रकृति की रूप-छवियों का चित्रांकन करते। यों कुछ अच्छी प्रकृति कविताएँ नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल और शिवमंगलसिंह की

रचनाओं मे मिल जाती हैं, किन्तु प्रगतिवादी काव्य उस अर्थ मे प्रकृति काव्य नही रहा जिस अर्थ मे छायावादी काव्य। अत प्रकृति की कोमल छवियो के अभाव से काव्य मे वह रसात्मकता भी नहीं आ सकी जिसकी अपेक्षा रसिकों को रहती है। नागार्जुन के 'सतरगे पखो वाली' काव्य सकलन मे 'बसत की अगवानी' और 'नीम की दो टहनियाँ' कविताएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। वसन्तागम का यह दृश्य देखिये :—

दूर कहीं पर अमराई मे कोयल बोली
परत लगी चढ़ने झींगुर की शहनाई पर
वृद्ध वनस्पतियों की ठूँठी शाखाओं मे
पोर-पोर टहनी-टहनी का लगा दहकने
टेसू निकले, मुकुलो के गुच्छे गदराए
अलसी के नीचे फूलों पर नभ मुस्काया।
—नागार्जुन [सतरगे पखों वाली]

बसन्तागमन के अवसर पर प्रकृति जिस मादकता और मस्ती का वातावरण प्रस्तुत करती है, उसका सौन्दर्य इन पक्तियो मे हल्का ही है। यह प्रकृति का चित्रण भर है, उपभोग जन्य मस्ती से युक्त मदिर अभिव्यजन नही। हाँ, 'नीम की टहनियो' का उल्लास इसकी अपेक्षा अधिक प्रभावकारी है। रामविलास शर्मा के 'रूपतरग' मे ग्रामीण-प्रकृति की हल्की फुल्की छवियाँ है। शर्माजी ने प्रकृति को जिस रूप मे देखा है, उसी रूप मे अकित कर दिया है। इनमे सौन्दर्य को देखने की नई दृष्टि है। 'प्रत्यूष के पर्व', 'शारदीया' और 'दिवास्वप्न' कविताओं मे ग्रामीण प्रकृति के चित्र हैं। नयी कविता मे लोक-जीवन के परिप्रेक्ष्य मे जो प्रकृति वर्णन हुआ है, वह बहुत कुछ इसी का विकास है। शिवमगलसिंह सुमन के काव्य मे प्रकृति का स्वाभाविक रूप ही व्यक्त हो सका है। कही शुद्ध रूप मे और कही प्रतीक रूप मे प्रकृति का चित्रण भी मिलता है। 'निर्झर' कविता मे प्रकृति की प्रतीकात्मक व्यजना है। यो कहीं-कहीं लोकजीवन का सस्पर्श भी मिलता है। सध्या का एक चित्र देखिये और 'सुमन' के कवि-हृदय की भावुकता का अनुमान लगाइये

विहग आकुल, नीड मुखरित
रागमय लज्जित दिशायें
थके हारे श्रमिक सुस्थिर
दिग्वधू लेतीं बलायें

इसी प्रकार 'केदार अग्रवाल को खेतों मे फसलो का स्वयवर सजता दिखाई देता है तो 'बसती हवा' की मस्ती भी। उदाहरणार्थ य पक्तियाँ देखिये —

"एक बीते के बराबर यह हरा ठिगना चना
बाँधे मुरैठा शीश पर छोटे गुलाबी फूल का
सजकर खड़ा है।

का सम्बन्ध रखता था। अतः प्रगतिवादियो ने उसे जो व्यावहारिकता प्रदान की वह सहज ही विश्वसनीय बन गई। 'अंचल' जैसे कवियो ने उसे' 'प्रणय की खिलाडिन' और मात्र नारी' रूप मे प्रस्तुत करके भव्यता और पावनता से दूर कर दिया। रागेय-राघव, नागार्जुन, शिवमगलसिंह आदि की कविताओ म जो थोडे से चित्र आये हैं, उनके आधार पर यही कहा जा सकता है कि ये कवि नारी की सामाजिक स्थिति को सुधारने की बराबर बात करते रहे और उसे सभी नैतिक बन्धनो से दूर करके व्यावहारिक बनाने का प्रयत्न करते रहे हैं।

नारी के साथ ही मानव की मुक्ति कामना का भी स्वर प्रबल होता गया। कवियो ने मनुष्यो को समाज का महत्वपूर्ण अ ग मान लिया। परिणामत मनुष्यो के जीवन मे क्रांति की आग सुलगने लगी। शोषित शोषक के प्रति विरोध लेकर खडे हो गये। प्रगतिवादी कविता म प्रमुखत मानव के दो रूप मिलते है—एक तो वह जिसमे वह समाज का सफल प्रतिनिधि बनकर सामाजिक उन्नति के साथ अपनी उन्नति भी समझने लगा। दूसरा वह जो नवनिर्माण और राष्ट्रीय भावनाओ का वाहक बनकर सामने आया है।

सक्षेप मे यही कहा जा सकता है कि प्रगतिवाद ने साहित्य के माध्यम से यथार्थ को अभिव्यक्ति दी है। वह छायावादी स्वप्नो से जागृत हो यथार्थ की भूमि पर खडा हुआ है। यद्यपि यह ठीक है कि यथार्थता के कारण ही उसम भाव सौन्दर्य कम हो गया, किन्तु यह भी ठीक है कि उसने छायावादी कथ्य की सीमा को पार कर नये विषयो को काव्य मे स्थान दिया। इस दृष्टि से उसकी प्रगतिशील चेतना को सदेह की दृष्टि से नही देखा जा सकता है। हाँ, राजनैतिक मतवाद और साम्य-वाद के परिवेश मे उसकी कथ्यगत नवीनता सकीर्णता की परिधि मे अवश्य सिमटती गई है। यही कारण है कि रूढियो के प्रति किया गया विरोध और जनजीवन के निर्माण का पक्ष व्यावहारिकता की ओर अग्रसर होता हुआ भी विशेष प्रभाव न डाल सका। प्रगतिवादी काव्य की सबसे बडी सीमा राजनैतिक मतवाद का स्पर्श करती है। राजनीति के दल दल मे फँस जाने के कारण अधिकाश प्रगतिवादी रच-नाएँ स्वस्थ प्रभाव नही डालती हैं। वर्गवादी भावनाओ ने भी प्रगतिवाद को सकीर्ण-ता प्रदान की है। परिणामत कविता मानव मन को प्रभावित करने मे असमर्थ रह गयी। थोथी सहानुभूति, जो प्रचार भावना से आन्दोलित थी, थोड़े ही दिनो मे शात हो गई। आगे चलकर प्रगतिवादियो की इस सीमा को तोडने का साहसिक कदम नयी कविता ने उठाया। यही कारण है कि नयी कविता का कथ्यगत विस्तार पूर्ववर्ती काव्य से व्यापक और स्वच्छद दायरे मे घूम सका है। अधिकाश छायावादी और प्रगतिवादी विषयो का विस्तार हुआ है, तो युगीन सदर्भ मे अनेक नये विषयो की अवतारणा और विस्तारणा भी हुई है।

अभिव्यंजना-शिल्प

प्रगतिवादी कविता के सम्बन्ध मे जब भी कभी शिल्प की चर्चा की जाती है तो यह बात बार-बार दुहराई जाती कि वह शिल्प प्रति उदासीन है, उसकी भाषा ऊबड़-खाबड़ है तथा उसकी छन्द योजना बासी और उखड़ी हुई है। साथ ही प्रतीकों का तो एकदम अभाव है। इस आरोप में सत्य का अंश है तो सही, किन्तु इतना नही जितना बताया जाता है। प्रगतिवादियों की सबसे बड़ी उपलब्धि भाषा को जन-जीवन के स्तर पर लाने की है। यो इन कवियो ने वस्तु के समान शिल्प को महत्व नही दिया है, किन्तु भाषा में उसका झुकाव जनसाधारण की शब्दावली की ओर है। नागार्जुन और त्रिलोचन की भाषा ग्राम जनता की भाषा है, उसमें मुहावरों और लोकोक्तियो का गौरव सुरक्षित है। वस्तुत प्रगतिवाद की भाषा रेशम के तारो की भांति मुलायम न होकर खादी की तरह खुरदरी है, किन्तु उसका यह खुरदरापन रेशमी तारो से अधिक टिकाऊ है क्योकि यह समान्य मनुष्य की पसद है, शहजादों की नहीं। गहरे, हल्के, मोटे, पतले सभी प्रकार के रंगो और धागो से बनी यह भाषा कथन की विशेष भंगिमाओं के कारण प्रभाव की सृष्टि करती है। इस भाषा ने यह बता दिया है कि कोमलकांत शब्दो के जड़ाव-बनाव से ही भाषा प्रभावशील नहीं बनती है, अपितु वह सीधे-सरल और बोलचाल के शब्दो से भी दमकने लगती है। अतः विषयवस्तु मे सौन्दर्य भरने का काम प्रगतिवाद भले ही न कर सका हो, किन्तु छायावादी युग की धूमिल, अस्पष्ट और नक्काशीदार भाषा को जनसाधारण के पार्श्व मे बिठाने का श्रेय इसी को है। 'अंचल' ने यह कहकर कि 'अनुभूति की प्रचुरता काव्य-भाषा को भी अधिक सरल; वेसाख्ता और यथार्थवाहिनी बना देती है'[1] मेरे उपर्युक्त मत का ही समर्थन किया है। इसी प्रकार उज्ज्वल बौद्धिक शब्दजाल मे सत्याभासो का तम है[2] कहकर नरेन्द्र शर्मा ने भी गुरु गंभीर और तत्सम शब्दावली का विरोध ही किया है, किन्तु ऐसा कहने मे उन्होंने स्वयं कैसी शब्दावली से काम लिया है, यह ध्यातव्य है। प्रगतिवादियों को वस्तु के मूल्य पर शिल्प का महत्व कतई ग्राह्य नही हो सका। इसके पीछे दृष्टि यह रही है कि "वस्तु किसी भी कलाकृति की बुनियाद होती है। शिल्प का उससे भिन्न कोई महत्व नही होता है......ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार भीतर के मनुष्य के अभाव में उसका बाह्य धर्म न तो सांस ले सकता है और न जीवित ही रह सकता है।[3]

इन तथ्यों और मान्यताओं के संदर्भ में यदि प्रगतिवादी कविता के शब्द विधान पर विचार करें तो तीन बातें सामने आती हैं–1. इनकी काव्य भाषा जन भाषा

1. प्रतिवंका : नवम्बर–दिसम्बर 1956 पृ० 482
2. हंसमाला : 1956 पृ० 22
3. लिटरेचर एण्ड रियलिटी पृ० 49

के निकट है। उसमें तत्सम शब्द तो गाहे-बगाहे ही आये है। 2. प्रगतिवादी कविता की भाषा म आडम्बर नहीं है, चमत्कार नहीं है और जानबूझकर भाषा को वैयक्तिक और जटिल बनाने की प्रवृत्ति नहीं है। 3 शब्दों म मार्वेतिकता लाक्षणिकता और विकृति नहीं है। इनकी भाषा मे एक ओर उर्दू फारसी के शब्द हैं तो दूसरी ओर जनपदीय और आचलिक शब्द है। भाषा म लोक जीवन की शब्दावली का अपना सौन्दर्य है। नागार्जुन की भाषा तो आम जुबान की भाषा है। उन्होंने सस्कृत की तत्सम और समासगर्भित शब्दावली का प्रयोग तो अपवादिक रूप से ही किया है। 'अमल धवलगिरि क शिखरो पर बादल को घिरत देखा है और हे कोटि शीर्ष हे कोटि बाहु, हे कोटि चरण युग की लक्ष्मी भव की विभूति धर रही तुम्हारा स्वयवरण' जैसी पक्तियाँ अपवाद स्वरूप किसी विशेष मनोदशा की सूचक हैं। प्रगतिवादियों का व्यग्य पैना और मारक है। अत ऐसे स्थलो पर भाषा चुस्त जटिल और पैनी हो गई है। न तो छायावादी लाक्षणिकता यहाँ है और न भाषा की अद्वितीयता और भव्यता ही है। उसम कलावादियो की सी पच्चीकारी भी नहीं है तो श्लेष यमक रूपक और मानवीकरण की चमत्कृत और अभिभूत करने वाली मुद्राएँ भी नहीं हैं। अत प्रगतिवादियो का भाषा विषयक प्रदेय यही है कि इन कवियो ने भाषा को 'पल्लव' और 'परिमल' के घेरे से निकालकर 'ग्राम्या' और 'बेला' के दरवाजे पर ला खडा किया। इसकी सामाजिक यथार्थ जनित अनुभूतियो के ताप से पिघलकर लाक्षणिक और वक्रता प्रधान भाषा सीधी और सरल हो गई। वह युग की गगा बन गई। नतीजा यह निकला कि वह सूनी सडक तक भी दौड सकी और यदा कदा भय प्रासादो को देखने या कहें कि उन्हें जमीन पर लाने के लिए परिष्कृत भी बनी रही। इस साधारणता के कारण म प्रगतिवादियो म चूक भी हुई। प्रचार और प्रोपेगेण्डा के अतिरेक के कारण शब्द की भीतरी शक्तियो का मर्म अनुद्घाटित रह गया। सरलता के नाम पर फूहड और भदेस शब्दावली कविता मे आ जमी और लचर विन्यास शब्द-अपव्यय व नीरस शब्दो के साथ गद्यमयता भी आती गई। एक प्रकार से प्रगतिवादी कविता की भाषा काव्य भाषा नहीं रह सकी।

7 छायावादी कविता ने प्रतीको की जो परपरा डाली थी, उसम प्रमुख तत्व प्रकृति का था। इससे उसमें जीवन की गहराई को नापने वाले प्रतीकों की कमी रही। प्रगतिवादी कविता म जिन प्रतीको का उपयोग हुआ उन्होने आदर्श और मधुरता के छद्म की कलई खोल डाली। उन्होने गुलाब जैसे फूल की सुन्दरता का परपरा के परिपार्श्व म ही देखा, किन्तु उन्होने कविता की प्रकृति के अनुरूप सौन्दर्य के पर्दे मे छिपे हुए शोषण का भी खोज निकाला। प्रगतिवादी कविता रूढ सस्कृति की विरोधिनी होने के कारण सास्कृतिक प्रतीको के भी दो रूप प्रस्तुत करती है पहले प्रकार के प्रतीक परपरागत सस्कृति के तत्वों का प्रतिनिधित्व करते हैं और दूसरे नवीन समाजवादी सस्कृति के पक्षधर हैं। प्रगतिवादी कवियो के काव्य म उन प्रतीकों की

सख्या ही अधिक है जो सास्कृतिक वर्ग के हैं; किन्तु वे यथार्थ की नवीनता से सम्बंधित हैं। प्रकृति प्रतीक भी हैं, किन्तु ये कोमल पक्ष को दबाकर कठोर पक्ष को ही प्रस्तुत कर सके हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि प्रगतिवादी कवि मर्ज और मरीज का कवि है, तन्दुरुस्ती और तन्दुरुस्त का नहीं। वह मर्ज के खिलाफ एक अभियान छेड रहा और शिफा की प्रस्थापना के लिए उसने कटुतम दवा के घूंट तैयार किये है। अग्नि शिखा (खूनी क्रान्ति) आग (विप्लव) काले बादल (भ्रांति का वातावरण) गदी भील (मध्यकालीन जीवन) गिद्ध और जोंक (पूंजीपति और शोषक) छिपकली (आधुनिका) नागपाश (पूंजीवादी व्यवस्था) विषधर (पूंजीपति) साँप (सूदखोर) होली (क्रान्ति) लोहमुष्टि (जनशक्ति) और नया सवेरा (साम्यवादी समाजवादी व्यवस्था) आदि प्रतीक कवियो की प्रगत्युन्मुखी चेतना के वाहक हैं। इतना ही नही जो 'गुलाब' अपने मादक सौन्दर्य से अभी तक कपोलों की लालिमा का प्रतीकार्थ रखता था वही प्रगतिवादी कविता मे आकर एक वर्ग विशेष का प्रतीक बन गया। वह 'डाल पर इतराता कैपीटलिस्ट' हो गया और कहा गया कि उसकी खुशबू और रौनक खाद का खून चूसने के कारण है। सास्कृतिक प्रतीक भी इस काव्यधारा मे बहुतायत से मिलते हैं। भारतीय जन-जीवन के चित्रण मे भी अनेक रीति रिवाजो की व्यजना सास्कृतिक प्रतीकों के ही माध्यम से हुई है। सांस्कृतिक प्रतीको मे भी ऐतिहासिक प्रतीक अधिक हैं। नीरो जार, हिटलर, यहूदी तो प्रतीक बने ही हैं; घास की रोटी भी प्रतीक बन गई है। नये प्रतीको मे 'हल' और हँसिया' के प्रतीक जहाँ साम्यवादी भावना के द्योतक हैं, वहाँ मार्क्सवादी व्यवस्था की प्रशस्ति मे 'लाल सेना' का प्रतीक भी आया है। कतिपय कविताएँ तो पूरी की पूरी प्रतीकात्मक हो गई है।

प्रगतिवादियो की उपमान योजना नैसर्गिक अधिक है क्योकि उसका स्रोत जन जीवन है। प्रकृति के हरे भरे आंचल की ओर ताकते हुए भी इस कविता मे आये अधिकाश उपमान सामाजिक हैं। यही कारण है की इन्हें रात कोयले की खान-सी, और मजदूरनी सी प्रतीत हुई है तो जनता का जीवन 'रद्दी की टोकरी सा' और मानवता 'फूटे बर्तन से' उपमित की गई है। यहाँ प्राकृतिक उपमान भी छायावाद जैसे नही हैं—

> 'पानी सी प्रिय स्वच्छ आग-सी, निर्मल कांति पर्व सी पावन।
> हँसती हुई कृषक बाला सी, उगते खेतों सी मनभावन॥

वस्तुत अलकरण के क्षेत्र मे प्रगतिवादी कवि मुहताज गहनो का जिसे खूबी खुदा न दी का अनुगामी है। इतने पर भी इस कविता मे जो उपमान दिखाई देते हैं, वे दैनिक जीवन के सदर्भों से लिये जाने के कारण विशेष प्रभावकारी बन गये है। प्रगतिवादियो की अलकार-धारा छायावादी कविता के बाँध तोडकर बहुत आगे बढ गई है। इसमे जीवन का नग्नरूप, सघर्षों की भीषणता, उज्ज्वल भविष्य की आकाक्षाएँ और कहीं-कही नग्न आशाएँ निरूपित होती रही हैं। कभी-कभी राजनैतिक

समाकलन

'प्रगतिवाद' नवीन चेतना ग्रौर नयी शैल्पिक उपलब्धियो का काव्य है। इसका प्रारभिक स्वरूप भले ही 'मार्क्स, लेनिन, ऐन्जिल्स' के सिद्वातो का साहित्यिक ग्रभिव्यजन रहा हो, किन्तु ग्रपने विकसित रूप मे यह प्रगतिशीलता का वाहक है, नव्य मानवीय मूल्यो का सकेतक है। ऐसी स्थिति में प्रगतिवाद दोष रहित भी है ग्रौर दूषण सहित भी है। इसमे ग्राई प्रचारात्मकता, सैद्धातिक मताग्रह ग्रौर विज्ञापनी वृत्ति यदि इसके दोष हैं तो इन्ही से विकसित सामाजिक बोध, जीवन मूल्यो की पहचान, स्वातत्र्य-भावना, राष्ट्रीयता ग्रौर ग्रन्तर्राष्ट्रीय सवेदनाग्रो का निरूपण इसकी महत्तम उपलब्धियाँ हैं। मानव प्रेम, मानव-मुक्ति, काव्य शास्त्रीय जकड से कविता की मुक्ति ग्रौर छद के बेमानी बधनो व तुक के बेतुके ग्राग्रह का त्याग प्रगतिवादी कविता की प्रगतिशीलता के वरणीय प्रतिमान हैं जिनका उपयोग ग्रागे चल कर नयी कविता ने किया है। वस्तुत जो मानवीय चेतना ग्रन्तर्जगत के गहन-गह्वरो मे जाकर भ्रमित हो गई थी ग्रौर भटकन के प्रवेग में बाह्य जगत की पद्धति, रीति-नीति ग्रौर मानवीय समस्याग्रो को विस्मृति के गर्त मे डाल चुकी थी, उसे सही ग्रर्थ म समाजोन्मुख करने का कार्य प्रगतिवादियो ने ही किया था। ग्रौर जो भी हो प्रगतिवाद ने छायावाद की स्वप्निल दुनियाँ को धूप मे लाकर खडा कर दिया ग्रौर बता दिया कि जीवन की वास्तविकताग्रो का साक्षात्कार बद कमरो मे नही खुले मैदान मे किया जा सकता है।

7

- प्रयोग और प्रयोगवाद
- अर्थ-निर्धारण
- नकेनवाद
- प्रवृत्ति-विश्लेषण
- मूल्य-विमर्श
- प्रयोगवाद और नयी कविता
- नयी कविता : अर्थ और स्वरूप
- नयी कविता और परम्परा
- प्रवृत्ति-निरूपण
- समापवर्तन

समाकलन

'प्रगतिवाद' नवीन चेतना और नयी शैल्पिक उपलब्धियो का काव्य है। इसका प्रारंभिक स्वरूप भले ही 'मार्क्स, लेनिन, ऐन्जिल्स' के सिद्धातो का साहित्यिक अभिव्यजन रहा हो, किन्तु अपने विकसित रूप मे यह प्रगतिशीलता का वाहक है, नव्य मानवीय मूल्यो का सकेतक है। ऐसी स्थिति मे प्रगतिवाद दोष रहित भी है और दूषण सहित भी है। इसमे आई प्रचारात्मकता, सैद्धातिक मताग्रह और विज्ञापनी वृत्ति यदि इसके दोष हैं तो इन्ही से विकसित सामाजिक बोध, जीवन-मूल्यो की पहचान, स्वातत्र्य-भावना, राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीय सवेदनाओ का निरूपण इसकी महत्तम उपलब्धियाँ हैं। मानव-प्रेम, मानव-मुक्ति, काव्य शास्त्रीय जकड से कविता की मुक्ति और छद के बेमानी बधनो व तुक के बेतुके आग्रह का त्याग प्रगतिवादी कविता की प्रगतिशीलता के वरणीय प्रतिमान हैं जिनका उपयोग आगे चल कर नयी कविता ने किया है। वस्तुत जो मानवीय चेतना अन्तर्जगत के गहन-गह्वरो मे जाकर भ्रमित हो गई थी और भटकन के प्रवेग में बाह्य जगत की पद्धति, रीति-नीति और मानवीय समस्याओ को विस्मृति के गर्त मे डाल चुकी थी, उसे सही अर्थ म समाजोन्मुख करने का कार्य प्रगतिवादियो ने ही किया था। और जो भी हो प्रगतिवाद ने छायावाद की स्वप्निल दुनियाँ को धूप मे लाकर खडा कर दिया और बता दिया कि जीवन की वास्तविकताओ का साक्षात्कार बद कमरो मे नही खुले मैदान मे किया जा सकता है।

*

प्रयोगवाद वैचित्र्य-प्रदर्शन, बौद्धिकता, सत्यानुभूतियों की कच्ची सिलावट और शिल्पाग्रह की कविता प्रतीत होता है। उसमे न तो व्यापक जीवन के चित्र हैं, न विस्तृत फलक पर प्रस्तुत किये गये वे जीवन-सदर्भ हैं जो प्रास पास के परिवेश मे बिडम्बनाओ और विसगतियो के खाद-पानी से तैयार हुए हैं। वह तो जरूरी गैर-जरूरी चीजो का गोदाम भर प्रतीत होती है। असल मे प्रयोगवाद प्रयोगो का आरम्भ था, चरम परिणति नहीं। अत जब ये प्रयोग सतुलित हुए और बाढ़ का पानी उतरा तो कविता मे सतुलन भी आया और परिष्कार भी। वह राग-सवेदनो की भूमिका पर जीवन से गहरे जुडती चली गई। जब ऐसा हुआ तब उसे ही नयी कविता नाम दिया गया। नयी कविता प्रयोगवाद का स्वस्थ एव सतुलित दिशा मे किया गया एक ऐसा विकास है जो अग्रगामुखी सवेदनाओ को सकार कर नये मार्गों की ओर अग्रसर हुआ है। उसका गोत्रीय सम्बध प्रयोग-वाद से ही है। नयी कविता युगीन सदर्भों मे आधुनिक भावबोध और सौन्दर्य-बोध के स्तर पर खडे मानवीय परिवेश को पूर्ण वैविध्य के साथ नये शिल्प मे प्रस्तुत करने वाली काव्य-धारा है। वह प्रत्यक क्षण लघुमानव और समकालीन जीवन से प्रेरित अनुभूतियो को मुक्त छद की पीठ पर नयी 'टेकनीक' में पाठकों तक सम्प्रेषित कर आस्वाद्य बना रही है। उसने तुच्छ से तुच्छ, महान् से महान, बाह्य और आतरिक चेतन और अचेतन आदि सभी क्षेत्रो से प्रेरित अनुभूतियो को यथार्थवाहिनी भाषा और शैली के खोल मे लपेट कर अभिव्यक्ति के द्वार पर ला खडा किया है।

7 प्रयोगवाद से नयी कविता तक

प्रयोग और प्रयोगवाद

'प्रयोगवाद' शब्द दो शब्दों के सयोग का परिणाम है- प्रयोग और वाद। इसमे पहला शब्द 'प्रयोग' विज्ञान से सम्बन्धित है तो दूसरा 'वाद' सिद्धान्त अथवा मताग्रह के घेरे से। घेरे को तोड़ना आवश्यक है। अत उसे छोड दिया जाय तो ठीक होगा। प्रयोग का अर्थ है किसी वस्तु की पूर्वमान्य प्रकृति का पुनर्ज्ञान प्राप्त करना। प्रयोग का उद्देश्य सत्यान्वेषण और उससे पाये सत्य का ग्रहण है। इस आधार पर प्रयोग एक प्रक्रिया है, कोई उद्देश्य नही है। प्रयोग की प्रक्रिया के आधार पर हम पारपरिक मान्यताओ का पुनरन्वेषण और पुनर्परीक्षण भी करते हैं और नये उपलब्ध सत्यो के आलोक म नयी दिशा भी प्राप्त करते हैं। वस्तुत प्रयाग जीवन को यथार्थ के पाश्व से देखन की प्रेरणा प्रदान करता है। युग करवट लेता है तो अनेक पुरानी मान्यताएँ उसकी करवट तले चूर हो जाती हैं और कुछ नयी मान्यताएँ उभरने लगती हैं। कभी-कभी ऐसा भी हो जाता है कि नये उभरते मान मूल्यो के वाहक पुरानो को प्रयोग की तुला पर तौलते है। इस परीक्षण मे यदि वे खरे उतरते हैं तो किंचित् परिवर्तन के साथ स्वीकार कर लिये जाते हैं, किन्तु जब ऐसा नही होता तब नयी मर्यादाएँ नयी सभावनाओ के द्वार खटखटाती है। यही वह भूमि है जहाँ से प्रयोगो की प्रक्रिया प्रारभ होती है। प्रयोग की यह प्रक्रिया प्रत्येक काल मे विद्यमान रहती है। कारण, प्रयोग निर्धारित सत्य को अतिम सत्य नही मानते है। वे उसका पुनर्परीक्षण करते हैं, सभावनाओ के नये क्षितिजो को उद्घाटित करते हैं और नवीनता के पक्ष धर होने के कारण पूर्णता का दावा नही करते हैं। प्रयोग की यह प्रवृत्ति जीवन और साहित्य दोनो मे बखूबी देखी जा सकती है। आधुनिक हिन्दी कविता की विकास यात्रा का यह मोड तो विशेषकर इसी प्रयोग-प्रक्रिया का परिणाम है। प्रयोग प्रत्येक काल मे होते हैं और होते रहगे, किन्तु 'प्रयोगवादियो' ने प्रयोगो का वरण करते हुए यह आग्रह भी किया है कि उनके प्रयोग सर्वथा नवीन हैं तथा कविता के अन्तर्गत वर्षों से चली आरही जड़ता और नियमो की शृंखला को झटके से तोडते हैं।

हिन्दी कविता मे 'प्रयोगवाद' उक्त नियमो और उनसे बनी भूमिका पर ही विकसित हुआ है। नवीनता और अपनी पहचान अलग कराने का मोह ही 'प्रयोगवाद के मूल मे दिखाई देता है। अत 'प्रयोगवाद' शब्द उन कविताओ का रूढ-सकेतक बनकर आया है जिनमे नया भाव-बोध व नयी संवेदनाएँ और इनकी अभिव्यजना के

लिये प्रयुक्त नया शैल्पिक चमत्कार है। 'तारसप्तक' हिन्दी कविता मे प्रयोगवाद लेकर आया। इसमें 'टेक्नीक' के जो नये प्रयोग उपलब्ध होते हैं, उनका सूत्रपात तो पहले ही हो गया था, किन्तु प्रयोगवाद का प्रारंभ उस समय से नही माना जा सकता है। प्रयोग तो माखनलाल चतुर्वेदी, बच्चन, पंत और निराला के काव्य में भी देखे जा सकते हैं। 'नलिनविलोचन' के प्रयोग भी अपना महत्व रखते हैं जो 'तारसप्तक' के प्रकाशन-काल से पहले ही सामने थे। आचार्य बाजपेयी की मान्यता है कि 'निराला की अपेक्षा बच्चन को नवीनतम कविता शैली के अधिक निकट कहा जा सकता है—शैली की दृष्टि से नये काव्य का आरंभ बच्चन से होता है''। ध्यान देने की बात यह है कि शिल्प-विषयक प्रयोग बच्चन, पंत और निराला में मिलते अवश्य हैं, किन्तु वे ऐसे नहीं जो प्रयोगवाद के शिल्प की भाँति एक विशेष आन्दोलन का रूप लेकर आये हों। पंत और बच्चन ने प्रयोग किये अवश्य हैं, किन्तु प्रयोग उनका लक्ष्य न था या यों कह कि ये प्रयोग करते हुए भी इनके प्रति सतर्क न थे। इनकी दृष्टि वस्तु की ओर जितनी लगी थी, शिल्प की ओर उतनी नही थी। हाँ निराला का काव्य अवश्य प्रयोग की भूमि का स्पर्श करता जान पड़ता है।

तारसप्तक' के पूर्व के कवियों म यदि किसी को नयी कविता के पूर्व रूप प्रयागवाद के निकट माना जा सकता है तो वे निराला ही हो सकते हैं, किन्तु नयी कविता की प्रयोगशील प्रवृत्ति का व्यवस्थित रूप तो 'तारसप्तक' से ही मानना होगा। कारण, 'तारसप्तक' के सातों कवियों का सारा ध्यान शिल्पगत प्रयोगो और नयी संवेदनाओं के प्रकाशन की ओर था। इसके सभी कवि शिल्प के प्रति आग्रही रहे हैं। 'प्रयोगो' के प्रति आकर्षण और तदनुरूप नये मार्गों का अन्वेषण सभी प्रयोगवादी कवियों का लक्ष्य रहा है। इस सम्बंध मे अज्ञेय ने अपना मत प्रस्तुत करते हुए लिखा है 'प्रयोग का कोई वाद नहीं होता। प्रयोग अपने आप मे इष्ट नही है। वह साधन है, दोहरा साधन है क्योंकि एक तो वह उस सत्य को जानने का साधन है जिसे कवि प्रेरित करता है, दूसरे वह उस प्रेषण की क्रिया को और उसके साधनो को जानने का साधन है। . .. प्रयोगवादी कवि किसी स्कूल के नहीं है। अभी राही हैं, राही भी नही, वरन् राहो के अन्वेषी हैं।'' स्पष्ट है कि 'प्रयोगवाद' एक ऐसी साहित्यिक धारा को दिया गया नाम है जिसने स्थापित मान्यताओं को पुनर्परीक्षित करके नये प्रयोग किये। वस्तुत नये प्रयोगों के माध्यम से 'प्रयोगवाद' साहित्य में क्रान्ति लेकर आयी नयी काव्य-धारा थी।

अर्थ-निर्धारण

'प्रयोगवाद' के अर्थ निर्धारण का प्रयास अनेक समीक्षकों ने किया है। कतिपय ऐसी प्रमुख मान्यताएँ यहाँ उद्धृत हैं जिनसे प्रयोगवाद को समझने मे सहायता मिल सकती है। इस क्रम म पहला मत लक्ष्मीकांत वर्मा का है। उन्होंने लिखा है "प्रयोग वाद ज्ञात से अज्ञात की ओर बढ़ने की बौद्धिक जागरूकता है। यह जागरूकता व्यक्ति—सत्य और व्यापक सत्य के स्तरों पर व्यक्ति की अनुभूति की सार्थकता को भी

महत्वपूर्ण मानती है। प्रयोगवाद व्यक्ति-अनुभूति की शक्ति को मानते हुए समष्टि की सपूर्णता तक पहुँचने का प्रयास है।......प्रयोगवाद एक ओर व्यक्ति अनुभूति को समष्टि अनुभूति तक उत्सर्ग करने का प्रयास है, तो दूसरी ओर वह रूढ़ि का विरोधी और अन्वेषण का समर्थक भी है।" उधर डॉ० धर्मवीर भारती का विचार है कि "प्रयोगवादी कविता मे भावना है, किन्तु हर भावना के आगे एक प्रश्नचिन्ह लगा हुआ है। इसी प्रश्नचिन्ह को आप बौद्धिकता कह सकते हैं। सास्कृतिक ढाँचा चरमरा उठा है और यह प्रश्नचिन्ह उसी की ध्वनि मात्र है"। श्री गिरिजाकुमार माथुर ने 'प्रयोगवाद' के सम्बध में लिखा है कि "प्रयोगो का लक्ष्य है व्यापक सामाजिक सत्य के खण्ड अनुभवो का साधारणीकरण करने मे कविता को नवानुकूल माध्यम देना जिसमे व्यक्ति द्वारा इस व्यापक सत्य का सर्वबोधगम्य प्रेषण सभव हो सके"। इन मतो के आलोक में यही कहा जा सकता है कि 'प्रयोगवाद' अब तक प्रचलित काव्य धाराओ से भिन्न एक ऐसा काव्य प्रयत्न था जिसमे व्यक्ति सत्य, बौद्धिकता और युगानुरूप अभिव्यक्ति के नये माध्यमो की तलाश की गई थी। हाँ, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इस प्रयत्न मे बौद्धिकता का वरण कुछ ऐसी अतिवादिता के साथ किया गया कि प्रयोगवादी रचनाएँ व्यक्ति-मन की उलझी सवेदनाओं, अस्पष्ट और परस्पर विरोधी कथनो का समूह बनती गई। परिणाम स्वरूप कविता या तो कुठा, निराशा और भटकन का शिकार हुई या बेचैन मन की अभिव्यक्ति और अनर्गल व अनपेक्षित सदर्भों की प्रवाचिका बन कर रह गई।

प्रश्न है कि ऐसा क्यो हुआ और प्रयोगवादी कविता के पनपने मे कौनसे कारण और प्रभाव प्रेरणा बनकर आये? मैं समझता हूँ इसके लिए किसी एक कारण को जिम्मेदार नही ठहराया जा सकता है। युगीन सदर्भ, स्थापित मान्यताओ की जकड, विज्ञान द्वारा प्रदत्त बौद्धिकता, वैयक्तिकता के प्रति आग्रह, व्यक्तित्व का विघटन, जीवन की विविध जटिलताएँ, जीवनव्यापी निराशा और पराजय से उत्पन्न अनुभूतियाँ वैश्विक क्षितिज पर पल-पल घटित होने वाले राजनैतिक और सास्कृतिक परिवर्तन, छायावाद की धूमिल अभिव्यक्ति तथा प्रगतिवाद की राजनैतिक मतवादिता व मार्क्सीय दृष्टि दर्शन के कारण नये की उपलब्धि के प्रयास मे प्रयोगवाद का विकास हुआ। इस सम्बध मे डॉ० देवराज ने लिखा है कि पुरानी कविता रूढ़िग्रस्त और अरोचक हो उठी थी, दूसरे काव्य भाषा को जन भाषा के निकट लाना था अथवा काव्य निबद्ध अनुभूति को जन-जीवन के सपर्क मे लाना था। अत बदलते हुये जीवन की नयी सभावनाओ के उद्‌घाटन के लिए अथवा नये मूल्यो की प्रतिष्ठा व नवीन प्रयोग करने के लिये 'प्रयोगवाद' का जन्म हुआ।" इसी से मिलता-जुलता मत 'दिनकर' का भी है। उन्होंने 'प्रयोगवाद' के जन्म और उद्‌भव को स्पष्ट करते हुये लिखा है जब प्रगतिवाद के नाम पर साहित्य मे कनस्तर बजाय जाने लगे और साहित्यिक मूल्यो का ह्रास होने लगा, तब यह आवश्यक हो गया कि हिन्दी मे कला और शैली के हिलते हुये महत्व को फिर से सुस्थिर करने का प्रयास किया जाय। यही प्रयास धीरे-धीरे बढ़कर प्रयोगवाद बन गया।"

यह निर्विवाद है कि युग बदलता है तो जीवन और जगत के सम्बन्ध में मानदण्ड भी बदलते हैं, यही नियम प्रयोगवाद पर भी लागू होता है। यहाँ पर भी साहित्य सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के मानदण्ड बदले हैं। छायावाद की वायवीय कल्पना और शब्द विन्यास की मसृणता के कारण जो अनुभूतियाँ अर्धव्यक्त थी; उन्हें सामाजिक भूमिका पर प्रगतिवाद ने पूर्ण व्यक्त बनाने का श्रम उठाया। परन्तु इस श्रम के परिणामस्वरूप हिन्दी कविता को मार्क्सवाद के सिद्धांतों का बोझा भी उठाना पड़ा। नतीजा यह निकला कि कविता विज्ञापनी होती गई और जब कविता विज्ञापनी हो जाती है तो कला-शिल्प की चिन्ता भी स्वतः ही छूट जाती है। अतः कविता को कलात्मक सौष्ठव और स्वस्थ सामाजिकता प्रदान करने के लिये प्रयोगवाद आविर्भूत हुआ। नये-नये प्रयोग होते गये और इन प्रयोगों को पाश्चात्य साहित्य ने भी प्रभावित किया। इसी प्रभाव के कारण इस काव्य-प्रयत्न को कुछ समीक्षकों ने 'रूपवाद'(Formalism) का रूपान्तर स्वीकार किया और कुछ ने इसे अंग्रेजी कविता की 'इमेजिस्ट' धारा का समानार्थी माना। मुझे लगता है कि ये दोनों ही धारणाएँ अतिवादी है। वस्तुतः इनका प्रभाव तो यहाँ है, किन्तु प्रयोगवाद को मात्र इनका रूपान्तर स्वीकार करना अनौचित्यपूर्ण है। यों 'प्रयोगवाद' में 'प्रयोग' की जो चेतना है वह परीक्षण और अन्वेषण पर आधारित होने के कारण बौद्धिकता की अधिक कायल है। अतः इस धारा के कवियों ने साधारणीकरण के स्थान पर विशेषीकरण को विशेष महत्व दिया है।

'प्रयोगवाद' को अज्ञेय प्रयोगशील कहना अधिक सार्थक मानते हैं। 'शील' और वाद के अन्तर की बात प्रगतिवाद के सदर्भ से विवेचित की जा चुकी है। अतः उसकी आवृत्ति यहाँ निरर्थक है। 'प्रयोगवाद' के प्रमुख कवियों में 'तारसप्तक' के सभी कवियों को लिया जा सकता है। यद्यपि इन सातों में कुछ ऐसे भी हैं जो प्रगतिवाद के साथ भी जुड़े हुये हैं। ऐसे कवियों में रामविलास शर्मा, और नेमिचंद जैन प्रमुख हैं। हाँ, ये सभी कवि प्रायः माध्यवर्ग के ही हैं जिन्होंने अपने मध्यवर्गीय समाज के व्यक्ति के सत्य को प्रेषित किया है। ऐसी स्थिति में यह कहना अधिक उचित प्रतीत होता है कि प्रयोगवाद ह्रासोन्मुख मध्यवर्गीय समाज के जीवन का चित्र है। यही कारण है कि इस धारा के कवियों ने अपनी कविताओं के द्वारा वही सब कुछ कहने का प्रयत्न किया है जो इन्होंने भोगा और अनुभवा है। जीवन के कटु से कटुतम और भयकर से भयकरतम व यथार्थ से अतियथार्थ तक के भोगे हुए क्षणों का अंकन प्रयोगवाद में मिलता है। ये सारी स्थितियाँ कलाकारों के 'स्व' की अग्नि में तप-तचकर ही कविता में आई हैं।

प्रपद्यवाद

'प्रयोगवाद' का सम्बन्ध 'प्रपद्यवाद' से भी है। इसे ही 'नकेनवाद' (नरेश, केसरीकुमार और नलिनविलोचन) के नाम से भी अभिहित किया जाता है। प्रयोगवाद

और नकेनवाद दोनों में पर्याप्त समानता है। संभवतः इसी कारण नकेनवादियों ने अपनी दससूत्रीय घोषणा मे प्रयोगवाद को ही विश्लेपित किया है। प्रपद्य में ये दस बातें कही गई हैं: 1, प्रपद्यवाद भाव और व्यजना का स्थापत्य है 2. प्रपद्यवाद सर्वस्वतन्त्र है। उसके लिये शास्त्र या दल निर्धारित नियम अनुपयुक्त हैं 3. प्रपद्यवाद महान् पूर्ववर्तियो की परिपाटियो को भी निष्प्राण मानता है 4. प्रपद्यवाद दूसरो के अनुकरण की तरह अपना अनुकरण भी वर्जित समझता है 5. प्रपद्यवाद को मुक्तक काव्य नही स्वच्छद काव्य की स्थिति अभीष्ट है 6. प्रयोगशील प्रयोग को साधन मानता है, प्रपद्यवादी साध्य 7. प्रपद्यवाद की प्रणाली दृग्वाक्यपदीय (Verbi–Voco–Visual method) है। 8 प्रपद्यवाद के लिए जीवन और कोष कच्चे माल की खान है 9. प्रपद्यवादी प्रयुक्त प्रत्येक छन्द और शब्द का निर्माता है 10. प्रपद्यवाद दृष्टिकोण का अनुसधान है। इन दस सूत्रो के बाद दो सूत्र और जोडे गये: 1. प्रपद्यवाद मानता है कि पद्य मे उत्कृष्ट केन्द्रण होता है और यही गद्य और पद्य मे अन्तर है 2 प्रपद्यवाद मानता है कि चीजो का एक मात्र सही नाम होता है। वस्तुतः ये उपरिसकेतित सूत्र यद्यपि प्रपद्यवाद के हैं किन्तु इन्हे प्रयोगवाद के सूत्रो के रूप मे भी ग्रहण किया जा सकता है। कारण ये ही सूत्र और तथ्य प्रयोगवाद मे भी किंचित् हेर-फेर के साथ स्वीकृत हैं। अब प्रश्न यह है कि प्रयोगवाद की सीमा रेखा क्या है? स्पष्ट ही प्रयोगवाद की सीमा रेखा को सन् 1943 से सन् 1953 तक स्वीकार किया जा सकता है। सन् 43 मे प्रकाशित तारसप्तक 51 मे प्रकाशित 'दूसरा सप्तक' प्रयोगवाद के प्रमुख सग्रह हैं। 'तारसप्तक' मे मुक्तिबोध, नेमिचंद, भारत भूषण, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार, रामविलास और अज्ञेय की कविताओ को स्थान प्राप्त है तो 'दूसरा सप्तक' मे 'भवानीप्रसाद मिश्र' 'शकुन्त माथुर', 'हरिनारायण व्यास', 'शमशेर', नरेश मेहता, रघुवीर सहाय और भारती की कविताओ को स्थान मिला है। इन दोनो सप्तको के अतिरिक्त 'प्रतीक' और 'पाटल' जैसी पत्रिकाओ ने भी प्रयोगवाद को काफी बढावा दिया। 'नकेन के प्रपद्य' और 'चित्रेतना' भी इसी शृंखला मे आती हैं।

प्रवृत्ति-विश्लेषण :

'प्रयोगवाद' के अर्थ, स्वरूप, महत्व और प्रेरक तत्वो के इस निरूपण मे उसकी कतिपय विशेषताएँ भी स्वतः ही आ गई हैं फिर भी कुछ अन्य विशेषताएँ ऐसी हैं जो अलग से विवेचन की अपेक्षा रखती हैं। उन्ही का सक्षिप्त विवेचन यहाँ किया जा रहा है। ध्यातव्य यह है कि प्रयोगवाद विदेशी कविता से प्रभावित और प्रेरित तो है, किन्तु वह अनुकरण भर नही है। उसमे आई बौद्धिकता, दुरूहता; रसहीनता, अतियथार्थवादिता, चमत्कृति, अतिवैयक्तिकता, गद्याभास की प्रवृत्ति, नवीनता के नाम पर किये गये अनर्गल और बेमानी प्रयोग व मन की दमित भावानुभूतियों का प्रकटीकरण आदि ऐसी विशेषताएँ हैं जिनके लिए भारतीय परिवेश की जटिलता भी जिम्मेदार है। हाँ; शिल्पाग्रह जनित वैचित्र्य-प्रदर्शन को पाश्चात्य प्रभाव मान सकते हैं।

1. प्रयोगवादी कविता ह्रासोन्मुख मध्यवर्गीय समाज के जीवन के चित्र प्रस्तुत करती है। उसमे जिस व्यक्ति-सत्य के सम्प्रेषण का व्रत लिया गया है, वह इसी समाज का अनुभूत एव कटु यथार्थ है। यथार्थ का यह अभिव्यंजन घुंए के कडवे घूंटो के पीने के समान है।

2 प्रयोगवाद मे व्यापक जीवनानुभूतियो का अकन न होकर व्यक्ति की दैनदिनी के वे पृष्ठ चित्रित हुए हैं जिनकी लिखावट तो साफ और बेलाग है, किन्तु उसका सम्बन्ध कवियो के 'स्व' से है। 'स्व' के प्रति ममत्व की घनता ने ही इन कवियो के काव्य को सीमितार्थी बना दिया है।

3 जीवन की जटिलताओ को भोगने के कारण प्राय सभी प्रयोगवादियो ने बौद्धिकता का वरण किया है। इनकी बौद्धिकता राग-प्रेरित नही है। उसमें बौद्धिक चमत्कार का अंश इतना ज्यादा है कि यह अनुभव ही नही होता कि कविता का सम्बन्ध राग से भी हो सकता है। बौद्धिकता की आंच मे पिघलकर इनका राग-दीप्त हृदय और उसकी आर्द्र-संवेदनाएँ सूख गई है। फलत कविता दुरुहता और अस्पष्ट अभिव्यक्तियो का गोदाम बन गई है। यह ठीक है कि युग बदल रहा था और बदलते युग मे बुद्धि का प्रभाव बढ रहा था, किन्तु वह इतना नही था कि कविता कविता न रहकर बौद्धिक व्यायाम हो जाय तथा उसका रूप ही कुरूप हो जाय।

4 जीवन की जटिलताएँ कब नही रही हैं और कब वे कविता मे आकार नही पा सकी हैं? प्रायः सदैव ही। हाँ, मात्रा का अन्तर हो सकता है, किन्तु प्रयोगवाद मे अभिव्यक्त जटिलताओ ने तो कविता को न केवल दुरूह बनाया है अपितु उसकी सम्प्रेषणीयता को भी बाधित कर दिया है। फलत साधारणीकरण की अपेक्षा विशेषीकरण को महत्व मिलता गया और कविता तथा पाठक के बीच एक दुर्लंघ्य खाई बढती गई।

5. प्रयोगवाद ने प्रयोगातिशयता के कारण वर्ज्य विषयो व निषिद्ध कक्ष के वार्ता-प्रसगो को भी यथार्थवाद के नाम पर अभिव्यक्त किया। इसी अतियथार्थवादी प्रवृत्ति के कारण पत ने लिखा कि 'प्रयोगवाद की निर्झरिणी कल-कल छल-छल करती हुई फ्रायडवाद से प्रभावित होकर स्वप्निल, फेनिल स्वर-सगीतहीन भावनाओ की लहरियो से मुखरित उपचेतन अवचेतन की रुद्ध-क्रुद्ध ग्रन्थियो को मुक्त करती हुई, दमित कुंठित वासनाओ को वाणी देती हुई लोक-चेतना के स्रोत मे नदी के द्वीप की तरह प्रगट होकर अपने पृथक् अस्तित्व पर अड गयी है।"

6 वैयक्तिकता छायावाद मे भी थी, किन्तु प्रयोगवाद मे वह चरम सीमा पर है और इसका कारण विशेषीकरण की प्रक्रिया है। यही कारण है कि कविता 'एक्स्ट्रा पर्सनल' हो गई है और उसमे व्यक्ति के जीवन की समस्त जडता, अनास्था,

पराजय और मन सघर्ष के सत्य को पूरी बौद्धिकता के साथ वाणी दी गई है। छायावादियो की वैयक्तिकता जितनी रगीन, स्वप्निल और मनोहर भावुकता से रजित थी; वही प्रयोगवादियो की वैयक्तिकता एकदम शुष्क, पत्रझठलहीन और नगी है। उसमे भदेसपन है, शालीन रमणीयता नही।

7 प्रयोगवादी कविता मे दमित वासना का ही अधिक अभिव्यजन हुआ है। काम-सवेदनो को तीव्रता से व्यक्त करने वाली यह कविता यौन वर्जनाओ को मुक्तमना होकर ग्रहण करती है। अज्ञेय जैसे कवि का श्वास कामावेग से उत्तप्त रहा है और उनकी धमनियो मे लहू की धार उमडकर नारी को पुकारती दिखाई देती रही है तो भारती नारी के फीरोजी होठों, चम्पई वक्ष और शरीर की नरमाई की गरमाई पर ही अपनी जिन्दगी वार बैठे थे।

8 प्रयोगवादी कविता भावहीनता का शिकार होने के कारण गद्यात्मक तो हो ही गई है, वैचित्र्य प्रदर्शन की भी हिमायती हो गई है। इसी कारण उपमान गत नवीनता, छद, प्रतीक और भाषागत नवीनता भी चरम सीमा पर दिखाई देती है। कही 'कोकाकोला जैसा हुस्न है तो कही अन्तिम जलती तीली सी हँसी है और कही कैमरे के लैन्स सी बुझी हुई आँखो का वर्णन है जो उपमानगत विचित्रता का प्रगट करना है। नवीनता के नाम पर किये गये ऐसे सैकडो प्रयोग मिलते हैं जो अर्थगर्भित कम, व्यर्थ अधिक हैं। प्रयोगतिशयता के कारण ही चा की प्याली, चूडी का टुकडा, बाथ रूम, शोशिए और मूत्रसिचित मृत्तिका के वृत्त मे तीन टाँगो पर खडा नतग्रीव 'धैर्य-धन गदहा' भी कविता मे विषय बनकर बेखटके चला आया है। मुक्त छद का प्रयोग तो समझ मे आता है, किन्तु तुकाग्रह के कारण आये बेतुके प्रयोगो की क्या तुक है ? समझ मे नही आता।

9 शब्द गढने की प्रवृत्ति भी प्रयोगवादी कविता मे पर्याप्त रही है तथा भाषायी प्रयोगों मे आडी तिरछी लकीरो; भिमुजो, विरामचिन्हो और शब्दालोपी वाक्य-विन्यास (Ellip Tic Combination) आदि के कारण भाषा नितान्त वैयक्तिक व प्रभावहीन हो गई है। जो भाषा अत्यन्त एक सामाजिक क्रिया रही है और जिसका रूप स्वरूप सदैव सामाजिकता और सप्रेषणीयता से जुडा रहा है वही प्रयोगवादियो के हाथो अपनी गरिमा खो बैठी है। यह सब प्रयोगो को ही साध्य मानने के कारण हुआ है।

मूल्य विमर्श

उपरिसकेतित विशेषताओ के आलोक म प्रयोगवाद, वैचित्र्य-प्रदर्शन, बौद्धिकता स्वानुभूतियो की कच्ची चिट्ठी और शिल्पाग्रह की कविता प्रतीत होती है। उसमे न तो व्यापक जीवन के चित्र है, न विस्तृत फलक पर विडम्बनाओ व विसगतियो के जीवन सापेक्ष बिम्ब हैं। वह ता जरूरी-गैर-जरूरीचीजो का गोदाम भर प्रतीत होती है। ऐसी स्थिति म उपलब्धि के नाम पर तो हमे खाली हाथ लौटने को ही विवश होना पडेगा

किंतु उसकी कतिपय भगिमाम्रो से प्राप्त सत्योपलब्धियो से इन्कार नही किया जा सकता है। हमारी धारणा है। *कि प्रयोगवाद ने कविता को बँधी-बँधायी पद्धति के घेरे से* निकाला है, सीमित जीवनानुभूतियो के अभिव्यजन से काव्य के मूल्यावन की एक दिशा दी है और वृहत् मानव के स्थान पर आम आदमी (लघु मानव) की महत्ता प्रतिपादित की है। इतना ही नही प्रयोगवाद ने प्रमाणित किया है कि कविता का जीवन नियमबद्ध नही हो सकता है। वह कोई यान्त्रिक पद्धति या साधनो से निष्पन्न गढ़ी-गढाई चीज नही है। वह तो कवि मानस की स्पष्ट-अस्पष्ट जटिलताओ और जीवन की विविध उलझनो से निसृत बेतरतीब प्रवाह है। इस प्रवाह मे कभी तरल-मादक स्पर्श की शक्ति निहित रहती है तो कभी बहाव के बाद मिट्टी की चटखती दरारें दिखाई देती हैं कभी मन आर्द्र सवेदनाओ से भर उठता है और कभी रेतीले ढूहो मे भटक जाता है। यही कारण है कि प्रयोगवाद ने व्यक्ति के अन्त सघर्षो, क्षणानुभूतियो, छोटी से छोटी सवेदनाओ के 'फ्लैशेज' दिये हैं। ये 'फ्लैशेज' व्यापक भले न हो, किन्तु इनकी अभिव्यक्ति ईमानदार है, सच्ची है। आरोपण उसम नही है। फिर प्रयोगवाद प्रयोगो का प्रारभ था, चरम परिणति नही। अत जब ये प्रयोग सतुलित हुए और इनकी बाढ का पानी उतरा तो कविता मे संतुलन भी आया, परिष्कार भी आया और वह रागप्रेरित होकर जीवन के व्यापक फलक पर भी प्रस्तुत हुई। जब ऐसा हुआ तब उसे ही नयी कविता नाम दिया गया।

प्रयोगवाद और नयी कविता

आधुनिक कविता के इतिहास मे जो जो काव्य-धाराएँ समय की कोख से जन्मी हैं उनमें सबसे अधिक मान नयी कविता को मिला और उससे कुछ ही कम छायावाद को। छायावाद को कुछ कम इसलिए कि कल्पना के कान्तार मे अधिक समय तक नही भटका जा सकता है। हमे उससे निकलकर यथार्थ की ठोस धरती पर आना ही होता है। *नयी कविता हमे इसी जमीन पर ले आई है। फिर ठोस जमीन पर न तो* फिसलने का भय रहता है और न नीचे धँसने का। अत वहाँ अपेक्षाकृत अधिक देर तक खडा रहा जा सकता है। जहाँ हम सबसे कम ठहरे हैं, वह जमीन प्रगतिवाद और प्रयोगवाद की है या फिर छायावाद की ठीक पीठ पर उतरने वाली मस्ती की वह जमीन है जिसे कुछ समीक्षको ने 'हालावाद' का नाम भी दिया है। प्रगतिवाद की धरती जीवन के बीच की धरती होते हुए भी विज्ञापनी-वृत्ति और मार्क्सीय सिद्धातो से पटी पडी थी तो प्रयोगवाद की वैचित्र्यवाद की चौकानेवाली छवियो से। रही मस्ती, खुमार और नशे की उस धरती की बात जहाँ प्रणय का रग मस्ती के 'एलकोहल' से मिलकर नारी-शरीर के उत्तरी-दक्षिणी ध्रुवो को सौन्दर्य के शराबी पैमाने से नाप रहा था, उसके सम्बध मे इतना कहना काफी होगा कि मस्ती का नशा यथार्थ के तावडतोड झटको से पल मात्र मे ही उतर जाता है। निश्चय ही हमे ऐसी धरती चाहिए जिसका आकार विशाल हो; नीव मजबूत हो तथा जिस पर सौन्दर्य का काश्मीर भी चहकता हो और जीवन के कटु-तिक्त अनुभवो के अभ्रभेदी

शिलाखण्ड जीवन की कटुता, भयकरता, विडम्बना और विसगतियो का अहसास भी कराते हो। यही यथार्थ की जमीन है और इसी पर अधिक समय तक रुका जा सकता है। जाहिर है कि हम यही अधिक रुके है और आज जब तीन दशक हो गये हैं तब भी हम इसके आस पास ही चक्कर लगा रहे हैं—कभी कुछ दायें तो कभी कुछ बायें या कुछ आगे। यही नयी कविता की भूमि है जहाँ कुछेक साठोत्तर कवियो ने उत्खनन करके कतिपय नये मूल्य और प्राप्त कर लिये हैं। विश्वास किया जा सकता है कि आगे इस जमीन के गर्भ में छिपी शक्तियो और उनसे प्रेरित भावानुभूतियो का अधिकाधिक विस्तार किया जाता रहेगा।

आखिर यथार्थ की यह ठोस जमीन क्या अकस्मात् मिल गई या इसके कुछ टीले पहले भी कल्पना और सौन्दर्य की जलराशि मे ऊभ-जूभ कर रहे थे। उत्तर स्पष्ट है कि पहली बार इसके दो चार टीले प्रगतिवादियो को दीखे। ज्यादा भी दिखाई दे सकते थे, किन्तु उन कवियो ने जो चश्मा पहन रखा था उस पर मार्क्स, हीगेल और लेनिन के कारखाने मे ढले ग्लास लगे थे। जैसे ही वे उतरे तो प्रयोग के लिए नयी भूमि दिखाई दी और अब जहाँ-तहाँ दिखाई देने वाले टीले पूरे पर्वत का रूप लेकर आ खड़े हुए है। प्रयोगवादियो की कमजोरी यह रही कि वे इन्हे समतल करके जमीन का रूप न दे सके। यह काम नयी कविता के कवियो ने किया। अत नयी कविता का करीबी और गहरा रिश्ता प्रयोगवाद से है और कुछ दूर का रिश्ता प्रगतिवाद से भी है। और दूर की पीढियो से रिश्ते की बात करना अब ठीक नही है। हाँ, वहाँ से प्राप्त कतिपय सास्कारिक सम्बन्धों की बात अलग है।

मतलब साफ है कि नयी कविता का बीज प्रयोगवाद मे निहित है। अत सन् 1951 के बाद से नयी कविता का प्रारभ माना जा सकता है। यह वह वर्ष था जब कि नयी कविता का बीज अकुरित होकर लहलहाने लगा था। प्रयोगवादी कविता मे पनपने वाली प्रवृत्तियाँ खुले, व्यापक किन्तु स्वस्थ रूप मे 'दूसरे सप्तक' या उसकी समकालीन रचनाओ मे मिलती हैं। जिसे 'नयी कविता' की अभिधा प्राप्त है, उसकी पृष्ठभूमि मे भी प्रयोगशील प्रवृत्तियो का विशेष हाथ है और इस बिन्दु से हम नयी कविता को प्रयोगवाद का स्वस्थ और सतुलित विकास कह सकते है। गिरिजाकुमार माथुर और बालकृष्ण राव छायावाद के पश्चात् लिखी गई समस्त कविता को 'नयी कविता' के अन्तर्गत समझते हैं। डॉ० रामविलास शर्मा और नामवर सिंह इसे प्रयोगवाद का छद्म रूप मानते है तो नरेश मेहता और श्रीकान्त वर्मा इसे प्रयोगवाद व प्रगतिवाद मे सर्वथा भिन्न प्रयत्न मानते हैं।

वस्तुत सम्पूर्ण छायावादोत्तर काव्य को नयी कविता की अभिधा प्रदान करना फैलाव का परिचायक है जिसमे बिखराव की अधिक गु जाइश है। नयी कविता को प्रयोगवाद का छद्म् नाम बताने वाले भी उसी सत्य की ओर सकेत करते हैं जिसमे प्रयोगवाद और नयी कविता को एक समझा गया है। असलियत यह है कि ये दोनो पूरी तरह एक नही हैं। दोनो मे सूक्ष्म अन्तर है। प्रयोगवाद शिल्पगत प्रयोगो के रूप

जिसमे इन दोनो के स्वस्थ तत्वों का सन्तुलन और समन्वय हो। कविता मे वस्तु और शैली की हम कोई वर्णाश्रम-व्यवस्था मानने के पक्ष मे नही हैं।"[1]

6. "आजकल किसी भी सकलन को उलटने से दिख जायगा कि नयी कविता नये विषय पर लिखी जा रही है या पहले के विषयो को नये ढग से कहना चाहती है। वह लयात्मक अथवा मुक्त छन्द मे होती है। समाज और व्यक्ति की जटिल समस्याओ का अकन करती हुई 'प्रगतिशील' अथवा सिद्धान्त-प्रधान होती हुई भी अपने को भावात्मक दिखाना चाहती है। युक्ति सरीखी लगती है। कभी जटिल और कभी बिलकुल सरल हो जाती है। नगर की पृष्ठभूमि मे लिखी गई है, पर गँवई गाँव के शब्दो का उपयोग करती है। भग्नता अथवा विषाद व्यक्त करती है, पर आस्था और निष्ठा का सन्देश देती है।"[2]

उपर्युक्त कथनो की विवेचना से नयी कविता का अधिकाश रूप स्पष्ट होकर सामने आ जाता है। इन कथनो मे जहाँ एक ओर नयी कविता को परिभाषाबद्ध करने की प्रवृत्ति है वही दूसरी ओर उसकी प्रवृत्तियो की साकेतिक अभिव्यक्ति भी है। अत हम इनके आधार पर ये निष्कर्ष निकाल सकते हैं

1 नयी कविता यथार्थ की ओर उन्मुख होने के साथ-साथ मानव जीवन की विशिष्टताओ से सपृक्त है। मानव के समक्ष जो विषमता और तिक्तता है, उसी को नयी कविता रूपायित कर रही है।

2 जीवन का वैविध्यमय चित्र प्रस्तुत करने मे नयी कविता किसी भी सकोच को नही अपना रही है। यथार्थ के समस्त सौन्दय कुरूप, रगीन और विद्रूप, को वाणी दे रही है।

3 नवीन विषयो के समावेश के साथ-साथ वस्तु की नवीनता और कथन की नयी भगिमाओ को अपनाकर नवीन शिल्प को अपना रही है।

4 मुक्त छद के साँचे मे ढाल कर नवीन युग-पट को सामने ला रही है तथा नये बिम्बो और प्रतीको के प्रयोग से भाषा को जनभाषा के निकट रखते हुए भी एक नवीन अर्थवत्ता से मडित कर रही है।

जिन तथ्यो की ओर इन पक्तियो मे सकेत किया गया है, वे नयी कविता की विशेषताएँ हैं। इनके अतिरिक्त भी इस काव्यधारा की कुछ प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं। यथा क्षणवादी भावना, नवीन भाव-बोध-सवलित नया सौन्दर्य बोध अथवा यथार्थ की धरा पर प्रतिष्ठित आधुनिक भाव-बोध, मानवतावादी भावना तथा अनिरजित और आरोपित को त्यागने की प्रवृत्ति तथा अनास्था, निराशा और घुटन के वातावरण से निकल कर आस्था की भूमि मे उगी हुई रागात्मक दृष्टि और अस्तित्ववादी चिन्तन आदि। वस्तुत नयी कविता युगीन सदर्भो म आधुनिक भाव-बोध और सौन्दर्य बोध के

1. गिरिजाकुमार मायुर नयी कविता अक 1 पृ० 76
2. कीर्ति चौधरी . तीसरा सप्तक पृ० 75

स्तर पर खडे मानवीय परिवेश को पूर्ण वैविध्य के साथ नये शिल्प मे प्रस्तुत करने वाली काव्यधारा है। वह प्रत्येक क्षण लघु-मानव और समकालीन जीवन से प्रेरित अनुभूतियो को मुक्त छद की पीठ पर नयी' टैक्नीक' मे पाठको तक सम्प्रेषित कर आस्वाद्य बना रही है। उसने तुच्छ से तुच्छ, महान् से महान्, वाह्य और आन्तरिक, चेतन और अचेतन आदि सभी क्षेत्रो से प्रेरित अनुभूतियो को यथार्थ-वाहिनी भाषा और शैली के खोल मे लपेट कर अभिव्यक्ति के द्वार पर ला खडा किया है।

नयी कविता और परम्परा :

आज नयी कविता के मूल्याकन के सदर्भ मे यह आरोप बार-बार दुहराया जाता है कि वह परम्परा से विच्छिन्न होकर चल रही है। यह आरोप परम्परा का अर्थ रूढि मान लने से और भी अधिक जटिल हो गया है। परम्परा और रूढि मे अन्तर है—परपरा प्रगति को प्रोत्साहित करती है और रूढि स्थिरता को। जो परम्परा नये को उकसा नही सकती है वह कोई परम्परा नही है। अत नये प्रयोग परम्परा से ही विकास पाते हैं। परम्परा हमारा दायित्व है, प्रगति विकास की प्रवृत्ति है और प्रयोग भविष्य की दृष्टि, है, सभावनाओ तक पहुँचने का माध्यम है। इतिहास ने कोई स्थायी परम्परा नही दी है। उसने हमेशा नयी परम्पराओ को प्रेरित किया है। यही प्रयोग और परम्परा के सम्बन्ध की विशेषता है। आज का प्रयोग आने वाले युग की परम्परा निर्धारित करेगा—ऐसी परम्परा जिसमे ठहराव नही, गति होगी।[1] यदि परम्परा से रूढि वाला निर्जीव अ श निकाल दिया जाय तो कवि के लिए उसका बहुत महत्व है। अत साहित्य मे जीवित या सजीव परपरा का ही महत्व होता है क्योकि परपरा की रक्षा के साथ-साथ उसका विकास भी आवश्यक है। परपरा के महत्व पर श्री अज्ञेय ने 'दूसरे सप्तक' मे लिखा है कि जो लोग प्रयोग की निन्दा करने के लिए परम्परा की दुहाई देते हैं वे यह भूल जाते हैं कि परम्परा, कम से कम, कवि के लिए कोई ऐसी पोटली बाँध कर रखी हुई चीज नही है जिसे वह उठा कर सिर पर लाद ले और चल निकले। परम्परा का कवि के लिए कोई अर्थ नही है, जब तक वह उसे ठोक-बजाकर, तोड मरोडकर आत्मसात् नही कर लेता, जब तक वह इतना गहन सस्कार नही बन जाती कि उसका चेष्टा-पूर्वक ध्यान रख कर निर्वाह अनावश्यक हो जाय।[2] इलियट मे भी लोगो ने परम्परा के विरोध का अ श देखा था, लेकिन परम्परा की जितनी कडियाँ इलियट मे जुडी, उन्हे वे भूल गये।

परम्परा का यह अर्थ समझने के पश्चात् अब आसानी स नयी कविता मे परम्परा के महत्व को समझा जा सकता है। परम्परा के प्रति नये कवियो मे विद्रोह केवल 'निर्जीव' के प्रति है। नया कवि परम्परा का बोध रखता है और उसी बोध

1. नयी कविता के प्रतिमान . लक्ष्मीकांत वर्मा, पृ० 192
2. अज्ञेय : दूसरा सप्तक भूमिका, पृ० 67

जिसमे इन दोनो के स्वस्थ तत्वों का सन्तुलन और समन्वय हो। कविता मे वस्तु और शैली की हम कोई वर्णाश्रम-व्यवस्था मानने के पक्ष मे नही हैं।"[1]

6. "आजकल किसी भी सकलन को उलटने से दिख जायगा कि नयी कविता नये विषय पर लिखी जा रही है या पहले के विषयो को नये ढग से कहना चाहती है। वह लयात्मक अथवा मुक्त छन्द मे होती है। समाज और व्यक्ति की जटिल समस्याओ का अकन करती हुई 'प्रगतिशील' अथवा सिद्धान्त-प्रधान होती हुई भी अपने को भावात्मक दिखाना चाहती है। युक्ति-सरीखी लगती है। कभी जटिल और कभी बिलकुल सरल हो जाती है। नगर की पृष्ठभूमि म लिखी गई है, पर गँवई गाँव के शब्दो का उपयोग करती है। भग्नता अथवा विषाद व्यक्त करती है, पर आस्था और निष्ठा का सन्देश देती है।"[2]

उपर्युक्त कथनो की विवेचना से नयी कविता का अधिकाश रूप स्पष्ट होकर सामने आ जाता है। इन कथनो मे जहाँ एक ओर नयी कविता को परिभाषाबद्ध करने की प्रवृत्ति है वहीं दूसरी ओर उसकी प्रवृत्तियो की साकेतिक अभिव्यक्ति भी है। अत हम इनके आधार पर ये निष्कर्ष निकाल सकते हैं

1 नयी कविता यथार्थ की ओर उन्मुख होने के साथ-साथ मानव जीवन की विशिष्टताओ से सपृक्त है। मानव के समक्ष जो विषमता और तिक्तता है, उसी को नयी कविता रूपायित कर रही है।

2 जीवन का वैविध्यमय चित्र प्रस्तुत करन म नयी कविता किसी भी सकोच को नही अपना रही है। यथार्थ के समस्त सौन्दय कुरूप, रगीन और विद्रूप, को वाणी दे रही है।

3 नवीन विषयो के समावेश के साथ-साथ वस्तु की नवीनता और कथन की नयी भगिमाओ को अपनाकर नवीन शिल्प को अपना रही है।

4 मुक्त छद के साँचे मे ढाल कर नवीन युग-पट को सामने ला रही है तथा नये बिम्बो और प्रतीको के प्रयोग से भाषा को जनभाषा के निकट रखते हुए भी एक नवीन अर्थवत्ता से मडित कर रही है।

जिन तथ्यो की ओर इन पक्तियो मे सकेत किया गया है, वे नयी कविता की विशेषताएँ हैं। इनके अतिरिक्त भी इस काव्यधारा की कुछ प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं। यथा क्षणवादी भावना, नवीन भाव-बोध सवलित नया सौन्दर्य बोध अथवा यथार्थ की धरा पर प्रतिष्ठित आधुनिक भाव-बोध, मानवतावादी भावना तथा अनिरजित और आरोपित को त्यागने की प्रवृत्ति तथा अनास्था, निराशा और घुटन के वातावरण मे निकल कर आस्था की भूमि मे उगी हुई रागात्मक दृष्टि और अस्तित्ववादी चिन्तन आदि। वस्तुत नयी कविता युगीन सदर्भो मे आधुनिक भाव-बोध और सौन्दर्य बोध के

1. गिरिजाकुमार माथुर नयी कविता अक 1 पृ० 76
2 कीर्ति चौधरी : तीसरा सप्तक पृ० 75

स्तर पर खड़े मानवीय परिवेश को पूर्ण वैविध्य के साथ नये शिल्प मे प्रस्तुत करने वाली काव्यधारा है। वह प्रत्येक क्षण लघु-मानव और समकालीन जीवन से प्रेरित अनुभूतियों को मुक्त छंद की पीठ पर नयी' टेक्नीक' मे पाठको तक सम्प्रेषित कर आस्वाद्य बना रही है। उसने तुच्छ से तुच्छ, महान् से महान्, बाह्य और आन्तरिक, चेतन और अचेतन आदि सभी क्षेत्रों से प्रेरित अनुभूतियो को यथार्थ-वाहिनी भाषा और शैली के खोल मे लपेट कर अभिव्यक्ति के द्वार पर ला खड़ा किया है।

नयी कविता और परम्परा :

आज नयी कविता के मूल्याकन के संदर्भ म यह आरोप बार-बार दुहराया जाता है कि वह परम्परा से विच्छिन्न होकर चल रही है। यह आरोप परम्परा का अर्थ रूढ़ि मान लेने से और भी अधिक जटिल हो गया है। परम्परा और रूढ़ि मे अन्तर है—परपरा प्रगति को प्रोत्साहित करती है और रूढ़ि स्थिरता को। जो परम्परा नये को उकसा नही सकती है वह कोई परम्परा नही है। अत नये प्रयोग परम्परा से ही विकास पाते हैं। परम्परा हमारा दायित्व है, प्रगति विकास की प्रवृत्ति है और प्रयोग भविष्य की दृष्टि, है, सभावनाओं तक पहुँचने का माध्यम है। इतिहास ने कोई स्थायी परम्परा नही दी है। उसने हमेशा नयी परम्पराओ को प्रेरित किया है। यही प्रयोग और परम्परा के सम्बन्ध की विशेषता है। आज का प्रयोग आने वाले युग की परम्परा निर्धारित करेगा—ऐसी परम्परा जिसमे ठहराव नही, गति होगी।[1] यदि परम्परा से रूढ़ि वाला निर्जीव अंश निकाल दिया जाय तो कवि के लिए उसका बहुत महत्व है। अत साहित्य मे जीवित या सजीव परपरा का ही महत्व होता है क्योकि परपरा की रक्षा के साथ-साथ उसका विकास भी आवश्यक है। परपरा के महत्व पर श्री अज्ञेय ने 'दूसरे सप्तक' मे लिखा है कि जो लोग प्रयोग की निन्दा करने के लिए परम्परा की दुहाई देते हैं वे यह भूल जाते है कि परम्परा, कम से कम, कवि के लिए कोई ऐसी पोटली बांध कर रखी हुई चीज नहीं है जिसे वह उठा कर सिर पर लाद ले और चल निकले। परम्परा का कवि के लिए कोई अर्थ नही है, जब तक वह उसे ठोक-बजाकर, तोड़ मरोड़कर आत्मसात् नही कर लेता, जब तक वह इतना गहन सस्कार नहीं बन जाती कि उसका चेष्टा-पूर्वक ध्यान रख कर निर्वाह अनावश्यक हो जाय।[2] इलियट मे भी लोगों ने परम्परा के विरोध का अंश देखा था, लेकिन परम्परा की जितनी कड़ियाँ इलियट में जुड़ी, उन्हें वे भूल गये।

परम्परा का यह अर्थ समझने के पश्चात् अब आसानी से नयी कविता में परम्परा के महत्व को समझा जा सकता है। परम्परा के प्रति नये कवियों म विद्रोह केवल 'निर्जीव' के प्रति है। नया कवि परम्परा का बोध रखता है और उसी बोध

1. नयी कविता के प्रतिमान : लक्ष्मीकांत वर्मा, पृ० 192
2. अज्ञेय : दूसरा सप्तक भूमिका, पृ० 67

के साथ वह उसे विकसित करने के लिए प्रयोग के नये द्वार खोलता है। नयी कविता के विषय ग्राज भी अधिकांशत वे ही हैं जो छायावादी कविता म मिलत हैं। हाँ, उन पर सोचने समझने की दृष्टि मे जो परिवर्तन ग्राया है, वह युग-बोध के कारण है। छायावादी कविता का वैयक्तिक स्वर कुछ विकसित रूप म ही नयी कविता म मिलता है। वैयक्तिकता की ग्रनुभूति छायावादी कवियो को भी हुई थी ग्रौर बच्चन' के पास पहुँच कर वही परिवर्तित रगो मे दिखाई देती है। ग्रज्ञेय ग्रौर उनके समीपस्थ कवियो मे भी इस वैयक्तिकता को देखा जा सकता है। ग्रज्ञेय के 'हरी घास पर क्षण भरे' तथा बावरा ग्रहेरी' मे जो वैयक्तिकता है, वह ग्रात्यतिक है। यही ग्राग चलकर स्वस्थ ग्रौर मर्यादित हो जाती है। इस दृष्टि से छायावादी वैयक्तिकता ग्रपन म सीमित है जबकि नयी कविता मे व्यक्ति से समाज की ग्रोर जाने का प्रयास है। इसकी वैयक्तिकता विकास की सरणियो स होती हुई ग्राई है। ग्रत इस दृष्टि से नयी कविता छायावाद से ग्रागे हैं।

बच्चन ग्रादि कवियो की वैयक्तिकता म एकरसता है। वह ऐसी रेशमी डोर है जो कवियो को उलझा लेती है ग्रौर वे ग्रागे बढ ही नही पाते हैं। नया कवि वैयक्तिकता को सहज ग्रौर सरल ढग से वाणी देता हुग्रा ग्राग बढता जाता है। वैयक्तिकता की सकीण परिधि को लाँघ कर नये पथ कीग्रोर ग्रग्रसर होता हुग्रा कवि कहता है —

बाँहे थीं
लेकिन जब बाँहों मे बँधने को
कोई भी कभी
नहीं ग्राकुल व्याकुल हुग्रा
तो मैंने सोचा
ये बाँहे हैं
क्या यों ही
यों ही रह जायेंगी
बांध नहीं पाया मैं इनसे किसी को तो
ग्राग्रो ग्रब इनसे सभी को मैं बाँध लूँ
ग्राया नहीं कोई इनकी परिधि मे चलो
इनकी परिधि को थोडा ग्रौर विस्तार दूँ।[1]

कहना यही है कि छायावाद से चली ग्राने वाली वैयक्तिकता का नयी कविता मे एक दम लोप नही हुग्रा है, उसका विस्तार हो गया। जगदीश गुप्त ने वैयक्तिकता के विस्तार ग्रौर विकास को बडी ईमानदारी से ग्रभिव्यक्त किया है।[2] इसी प्रकार नयी कविता

1 ग्रजित कुमार कल्पना, जुलाई ग्रगस्त, 1968
2 जगदीश गुप्त—'नाव के पाँव', 'ये जिन्दगी के रास्ते' कविता।

मे प्रेम, सौन्दर्य व प्रकृति तथा नारी-विषयक दृष्टिकोण का विकास एक दिशा की ओर ही हुआ है ये विषय द्विवेदी युग मे यदि उपेक्षित रहे तो छायावाद मे उभर कर सामने आ गये। सच कहिये तो छायावादियो का रोमानी दृष्टिकोण द्विवेदी-युग के पवित्रतावाद के विकास की ही एक प्रतिक्रियात्मक कडी है। आगे चलकर प्रगतिवाद और प्रयोगवाद या उसकी स्वस्थ दिशा नयी कविता मे प्रेम और नारी-सौन्दर्य को यथार्थ के बटखरो से तौला गया है। आदर्श के स्थान पर यथार्थ की ओर यह झुकाव आधुनिकता के सदर्भ मे परम्परा का ही विकास माना जाना चाहिये।

नयी कविता में जो मानवतावादी दृष्टि है वह भी प्राचीन मानवतावादी दृष्टि से आगे की स्थिति है। छायावादी मानवता आदर्श प्रेरित है, जबकि नयी कविता की मानवतावादी दृष्टि यथार्थ-प्रेरित है। नयी कविता मे की गई नव मानव की कल्पना परम्परागत दृष्टि का युगीन सदर्भ मे विकास ही है। गिरिजाकुमार माथुर ने लिखा है कि द्विवेदी-युग मे महाकाव्यो के महापुरुष के रूप मे छायावादी युग मे अमूर्त व्यापक खड इकाई के रूप मे, प्रगतिवादी युग मे सामूहिक व्यक्ति के रूप मे और प्रयोगवादी काव्य मे असामाजिक अहवादी के रूप मे युगीन मानव को देखने-परखने और उसको परिभाषित करने का प्रयास हुआ है। नयी कविता का नव मानव स्वतन्त्रता का प्रेमी होने के साथ-साथ सामाजिक कर्त्तव्यो के प्रति जागरूक है क्योकि वह जानता है कि 'मेरा भाग्य उन सभी से जुडा हुआ है जो मेरे हैं।'[1] यह मानव भावुकता के स्थान पर बौद्धिकता और विश्वास की जगह पर तर्कणा का समर्थक है।

प्राचीन काव्य-प्रशस्तियो का जो सहज और स्वाभाविक उपयोग नयी कविता मे हुआ है, वह परम्परा को सकार कर चलने की प्रवृत्ति की ही सूचना है। इसके साथ ही ये कवि कही तो वैदिक वातावरण की ओर झुके हैं तो कही लोक साहित्य की ओर। अतियथार्थवादी प्रवृत्ति भी नयी कविता म नयी नही है। इसका स्वरूप निराला के काव्य म बहुत पहले ही मिल जाता है। उनकी 'नये पत्ते' और कुछ परवर्ती रचनाओ मे हम इस प्रवृत्ति की स्पष्ट रूप मे पाते हैं।[2] इसके साथ ही पौराणिक कथाओ पात्रो और घटनाओ के आधार पर लिखी गई अनेक कविताएँ परम्परा के प्रति इनकी जागरूकता की प्रमाण हैं। भारती का 'अन्धा युग, 'कनुप्रिया' नरेश की सशय की एक रात' और कुँवरनारायण की 'आत्मजयी' दुष्यत की एक कठ विषपायी 'विनय' की 'एक पुरुष और' नामक कृतियो मे परम्परागत कथा प्रसगो, घटनाओ तथा पात्रो को नया बोध प्रदान कर काव्य मे प्रतिष्ठित किया गया है। जनमानस म चिरकाल से सचित इन घटनाओ, प्रसगो और पात्रो के द्वारा युगीन वास्तविकता का चित्रण नयी कविता की महत्तम उपलब्धि है जो परम्परा के सहारे ही विकसित हुई है। अत यह कहना उचित ही है कि नये कवि परम्परा के भी बड़े वाहक हैं। शिल्प के क्षेत्र मे भाषा, छन्द, प्रतीक और उपमानो के सहारे उन्होने

1 नयी कविता ' अक 5–6
2 मलयज ' नयी कविता अक 4
3 नरेश मेहता 'उपस्' शीर्षक से लिखी गई चार कविताएँ

परम्परा के प्रति अपनी जागरूक भावना का ही परिचय दिया है। भाषा का परम्परागत रूप(तत्सम शब्दावली सयुक्त) भारती और नरेश आदि मे मिलता है तो इसका विकसित रूप गिरिजाकुमार माथुर मे और सर्वाधिक नवीन रूप या जनभाषा का प्रयोग जो आचलिक और लोक-भाषा के शब्दो मे युक्त , अज्ञेय, कुँवर नारायण, दुष्यन्त कुमार और सर्वेश्वर दयाल आदि मे पर्याप्त मात्रा मे मिलता है। छन्दो मे परम्परागत छन्दो का प्रयोग है तो दूसरे छोर पर नये छन्दो का जो मुक्त छन्द की श्रेणी मे आते है। इसी प्रकार प्रतीकों और उपमानो के क्षेत्र मे भी ये कवि परम्परा के प्रति निर्मम और निर्मोह नही हैं। पौराणिक पात्रो को प्रतीक और उपमान के रूप मे प्रस्तुत करके नरेश, भारती, कुँवरनारायण और भारतभूषण ने इसी प्रवृत्ति का परिचय दिया है।

नयी कविता ने एक ओर विषय और शैली के क्षेत्र मे परम्परा को विकसित किया तो दूसरे छोर पर स्मरणीय है कि नयी कविता परम्परा की बँधुआ भी नही है। उसमे स्वतन्त्र हो कर नये मार्ग पर चलने की भी अमोघ क्षमता है। उसके स्वातन्त्र्य की स्थिति वहाँ दिखाई देती है जहाँ युगीन परिस्थितियाँ नया अध्याय खोलती हैं या बाह्य प्रभाव कवि के चिन्तन को प्रभावित करते हैं। मैं यह नही कहता कि नयी कविता ने परम्पराओ को तोडा नही है, उसने परम्पराओ को तोडा भी और जोडा भी है। हम जब भी कोई नई बात कहना चाहते हैं तो पुराने मूल्यो की परीक्षा करनी ही पडती है और फिर नव चिन्तन के सदर्भ से बहुत से तत्व टूटते-फूटते भी हैं। नये कवियो ने नये बोध को प्रस्थापित करते समय दो काम किये हैं-एक तो परम्पराओ को तोडकर नया दिया है, दूसरे परम्परा के सिरहाने चुपके से नया तत्व रखकर अलग हो गये हैं। पहली प्रक्रिया स्पष्ट है। दूसरी मे कवियो ने अपनी ओर से विरोध नही किया है, किन्तु विरोध करने की प्रतीक अपनी चिन्तना को पुरानी के साथ रख दिया है और ऐसे रख दिया है कि पुराना नये के सामने स्वत ही लाछित होकर अलग हट गया है। वास्तव मे परम्पराओ को तोडना नये कवि का धर्म नही था, वह तो उसकी विवशता थी—मात्र परिस्थतियो की माँग थी जिसे पूरा करने के लिए उसे झुकना पडा। ठीक वैसे ही जैसे आज के व्यस्त जीवन मे यात्रा करनाधर्म नही, विवशता है—अनुपेक्षणीय अनिवार्यता है। कई बार विवश होकर भी हमे कई काम करने पड जाते है। परम्पराओ का नवीनीकरण एक ऐसी ही विवशता थी। सच पूछिये तो यह विवशता प्रत्येक पीढी के नवोदित कवियो को झेलनी पडती है।

आश्चर्य की बात यह है कि परम्पराएँ टूटती है, बनती हैं, फिर टूटती हैं, किन्तु क्या इस बनने टूटने और फिर बनने मे कही कोई ऐसी चीज है जो सदैव बनी रहती है ? हाँ है और वह है 'दृष्टि', बाध या अनुभूति और यही पारिस्थितिक बाध को नये-पुराने झरोखो से किरण के रूप मे फैला देती है। नया कवि परपरा को बाध के रूप मे ही स्वीकार करता है, उसकी जानकारी रखता है, तभी तो वह नयी बात कह सकता है; किन्तु कई बार परम्परा को बिल्कुल छोड देना या नवीनीकृत

कर देना भी समव नही होता है। यही एक द्वन्द्व की स्थिति है जो जगदीश गुप्त की निम्नाकित पक्तियो मे बडी सहज अभिव्यक्ति पा सकी है—

ढोउँगा कहाँ तक
परपरा व्यर्थ का बोझ है
दे दूँ इसे
किसी योग्य याचक को,
ऐसा सोच
ऊपर को उठ आया
दाँया हाथ
पर ज्यों ही देने को हुआ दान
सहसा सूझ
याचक पहचाना लगा
रोशनी मे देखा
अरे! वह तो—
मेरा ही—बायाँ हाथ था।

[धर्मयुग, 27 मार्च, 1966

कहने की आवश्यकता नही कि नयी कविता म एक ओर तो परपरा को नया द्वार दिखलाया गया है तो दूसरी ओर नितान्त नय दृष्टिकोण प्रतिफलित हुए हैं। जहाँ नये कवि परपरा को नया द्वार दिखलाते हैं वहाँ ये पौराणिक और सास्कृतिक सदर्भों को नयी अभिव्यक्ति देते हैं। 'अधा युग', 'कनुप्रिया' आत्मजयी 'सशय की एक रात' आदि के सदर्भ आधुनिक बोध के ही परिणाम है। इनम कथा पुरानी, प्रसग अतीत का है किन्तु सवेदना नयी है—अज वही है, लक्षण वही है किन्तु उसकी दवा बदल दी गयी है, चौखटा वही है किन्तु पैमाना बदल गया है। कई बार ऐसा भी हुआ है कि जहाँ पुरानी बात को व्यग्य का माध्यम बनाया गया है वहीं पर परपरा के प्रति विद्रोह पनपता दिखाई देता है किन्तु यह विद्रोह इसलिए नहीं कि सभी कुछ नष्ट हो जाय वरन इसलिए है कि नया सृजन करने के लिए पृष्ठभूमि तैयार हो सके

उस पुष्प से, गध से बचो
जो अपने पराग में तक्षक लिए फिरता है

.. ..

ओ परम्परा की निर्जीव सत्ता पर जीने वालो
तक्षक भागवत के पृष्ठों के ससग में भी
परीक्षित की मृत्यु लिए फिरता है

—लक्ष्मीकांत वर्मा

परम्परा के प्रति अपनी जागरूक भावना का ही परिचय दिया है। भाषा का परम्परागत रूप(तत्सम शब्दावली सयुक्त) भारती और नरेश आदि मे मिलता है तो इसका विकसित रूप गिरिजाकुमार माथुर मे और सर्वाधिक नवीन रूप या जनभाषा का प्रयोग जो आंचलिक और लोक-भाषा के शब्दो से युक्त , अज्ञेय, कुँवर नारायण, दुष्यन्त कुमार और सर्वेश्वर दयाल आदि मे पर्याप्त मात्रा मे मिलता है। छन्दो मे परम्परागत छन्दो का प्रयोग है तो दूसरे छोर पर नये छन्दो का जो मुक्त छन्द की श्रेणी मे आते है। इसी प्रकार प्रतीको और उपमानो के क्षेत्र मे भी ये कवि परम्परा के प्रति निर्मम और निर्मोह नही हैं। पौराणिक पात्रो को प्रतीक और उपमान के रूप म प्रस्तुत करके नरेश, भारती, कुँवरनारायण और भारतभूषण ने इसी प्रवृत्ति का परिचय दिया है।

नयी कविता न एक ओर विषय और शैली के क्षेत्र मे परम्परा को विकसित किया तो दूसरे छोर पर स्मरणीय है कि नयी कविता परम्परा की बँधुआ भी नही है। उसमे स्वतन्त्र हो कर नये मार्ग पर चलने की भी अमोघ क्षमता है। उसके स्वातन्त्र्य की स्थिति वहाँ दिखाई देती है जहाँ युगीन परिस्थितियाँ नया अध्याय खोलती हैं या बाह्य प्रभाव कवि के चिन्तन को प्रभावित करते हैं। मैं यह नही कहता कि नयी कविता ने परम्पराओ को तोडा नही है, उसने परम्पराओ को तोडा भी और जोडा भी है। हम जब भी कोई नई बात कहना चाहते है तो पुराने मूल्यो की परीक्षा करनी हो पडती है और फिर नव चिन्तन के सदर्भ से बहुत से तत्व टूटते-फूटते भी हैं। नये कवियो ने नये बोध को प्रस्थापित करते समय दो काम किये हैं एक तो परम्पराओ को तोडकर नया दिया है, दूसरे परम्परा के सिरहाने चुपके से नया तत्व रखकर अलग हो गये हैं। पहली प्रक्रिया स्पष्ट है। दूसरी मे कवियो ने अपनी ओर से विरोध नही किया है, किन्तु विरोध करने की प्रतीक अपनी चिन्तना को पुरानी के साथ रख दिया है और ऐसे रख दिया है कि पुराना नये के सामने स्वत ही लाछित होकर अलग हट गया है। वास्तव मे परम्पराओ को तोडना नये कवि का धर्म नही था, वह तो उसकी विवशता थी—मात्र परिस्थतियो की माँग थी जिसे पूरा करने के लिए उसे झुकना पडा। ठीक वैसे ही जैसे आज के व्यस्त जीवन मे यात्रा करनाधर्म नही, विवशता है—अनुपेक्षणीय अनिवार्यता है। कई बार विवश होकर भी हमे कई काम करने पड जाते हैं। परम्पराओ का नवीनीकरण एक ऐसी ही विवशता थी। सच पूछिये तो यह विवशता प्रत्यक पीढी के नवोदित कवियो को झेलनी पडती है।

आश्चर्य की बात यह है कि परम्पराएँ टूटती है, बनती हैं, फिर टूटती हैं, किन्तु क्या इस बनने-टूटने और फिर बनने मे कहीं काई ऐसी चीज है जो सदैव बनी रहती है ? हाँ है और वह है 'दृष्टि', बोध या अनुभूति और यही पारिस्थितिक बोध को नये-पुराने झरोखो से किरण के रूप मे फैला देती है। नया कवि परपरा को ोध के रूप म ही स्वीकार करता है, उसकी जानकारी रखता है, तभी तो वह नयी ात कह सकता है; किन्तु कई बार परम्परा को बिल्कुल छोड देना या नवीनीकृत

कर देना भी सभव नही होता है। यही एक द्वन्द्व की स्थिति है जो जगदीश गुप्त की निम्नांकित पक्तियो मे बडी सहज अभिव्यक्ति पा सकी है—

ढोउँगा कहाँ तक
परपरा व्यर्थ का बोझ है,
दे दूँ इसे
किसी योग्य याचक को,
ऐसा सोच
ऊपर को उठ आया
दांया हाथ
पर ज्यों ही देने को हुआ था
सहसा मुझे
याचक पहचाना लगा
रोशनी मे देखा
अरे! वह तो—
मेरा ही—बायाँ हाथ था।

[धर्मयुग, 27 मार्च, 1966

कहने की आवश्यकता नही कि नयी कविता म एक ओर तो परपरा को नया द्वार दिखलाया गया है तो दूसरी ओर नितान्त नये दृष्टिकोण प्रतिफलित हुए हैं। जहाँ नये कवि परपरा को नया द्वार दिखलाते हैं वहाँ ये पौराणिक और सास्कृतिक सदर्भों को नयी अभिव्यक्ति देते है। 'अन्धा युग', 'कनुप्रिया', 'आत्मजयी' 'मशय की एक रात' आदि के सदर्भ आधुनिक बोध के ही परिणाम है। इनमे कथा पुरानी, प्रसग अतीत का है, किन्तु सवेदना नयी है—मर्ज वही है, लक्षण वही है, किन्तु उसकी दवा बदल दी गयी है, चौखटा वही है, किन्तु पैमाना बदल गया है। कई बार ऐसा भी हुआ है कि जहाँ पुरानी बात को व्यग्य का माध्यम बनाया गया है वहीं पर परपरा के प्रति विद्रोह पनपता दिखाई देता है, किन्तु यह विद्रोह इसलिए नही कि सभी कुछ नष्ट हो जाय, वरन् इसलिए है कि नया सृजन करने के लिए पृष्ठभूमि तैयार हो सके

उस पुष्प से, गध से बचो
जो अपने पराग में तक्षक लिए फिरता है
. . . .
ओ परम्परा की निर्जीव सत्ता पर जीने वालो
तक्षक भागवत के पृष्ठों के ससर्ग में भी
परीक्षित की मृत्यु लिए फिरता है

—लक्ष्मीकांत वर्मा

इसी प्रकार भारतभूषण की एक कविता मे तमाम दिन आफिस मे काम करने से शरीर थक्कर चूर हो जाने, अग अग अग क शिथिल हो जाने की स्थिति का वर्णन एक तरह से परपरा के लिए चुनौती बन गया है। व्यक्ति का सिर आफिस मे हाथ बस म आँखें फाइलो म मुँह टेलीफोन पर और पैर क्यू मे खड रह गये हैं और इस प्रकार वह विदेह ही घर लौटा है—

> देह-हीन जीवन की कल्पना तो
> भारतीय सस्कृति का सार है
> किन्तु क्या इसमे वह थकान भी शामिल है
> जो मुझ अगहीन को दबोचे ही जाती है।

परपरा से प्रयोग और प्रगति की भूमिका पर उतरते समय नया कवि अनेक प्रभावो को समटता हुआ कुछ ऐसी प्रवृत्तियों को भी उकसाता गया है जो परपरा की रखैल नही हैं। उनम स्वतन्त्र खड रहन की शक्ति है। क्षणबोध अस्तित्व बोध मूल्यो के विघटन की पुकार तथा शैली और शिल्प म किये गये अनेक नय प्रयोग परम्परा से अलग ही अपना माग बना रहे हैं। यह नवीन प्रयोगात्मक प्रगति व्यर्थ नही है, बल्कि एक ऐसी प्रगति है जो नयी परम्परायें कायम करेगी। छद और प्रतीको क क्षेत्र म भी जहाँ कही परम्पराए हम टूटती दिखाई दती हैं वहाँ यह कहना भूल होगी कि नयी कविता परम्परा से बिछुड रही है बल्कि यह कहना ठीक होगा कि वह शास्त्रीय जकड स मुक्ति पाने का सहज और स्वाभाविक प्रयास कर रही है।

नयी कविता म छद के क्षेत्र म भी क्रातिकारी परिवतन दिखाई पड रहा है वह मुक्ति की कामना के लिए किया गया प्रयत्न मात्र है। उसे परम्परा के प्रति विद्रोह और अनास्था की अभिधा नही दी जा सकती है। मुक्त छन्दमयी प्रत्येक कविता म भावानुकूल शब्दो की सयोजना कवि के अभिव्यक्ति सयम का ही परिचय देती है जो परम्परा से विमुक्त होकर भी सयुक्त है। वह नया है और मौलिक है, क्योकि वह वतमान के एक क्षण की अनुभूति की अभिव्यक्ति है और कोई भी क्षण समय की अनवरत धारा स विच्छिन्न नही विभिन्न भले ही हो।[1] इस दृष्टि से भी नयी कविता परम्परा से विलग नही कही जा सकती है। निष्कष यह है कि परम्परा रूढ़ि नही एक विकसनशील प्रवृत्ति है। स्थापित परपरा का जितना महत्त्व है उतना ही नवीनता की प्रस्थापना का। इस दृष्टिकोण स नयी कविता म एक ओर परम्परा के तत्व हैं तो दूसरी ओर कुछ विकसित मौलिक तत्त्व हैं। परम्परा क तत्व नयी कविता क विकास के भी तत्त्व हैं किन्तु प्रयोग वैलक्षण्य स।

प्रवृत्ति निरूपण

नयी कविता का पाट बहुत विस्तृत है। उसक भीतर-मानव जीवन का पूणता के साथ ग्रहण किया गया है। जीवन की विविध प्रवृत्तियो परिस्थितियो प्रश्नो उपप्रश्नो सकल्पो विकल्पो और त्रासद स्थितियो और विसगतियो के प्रामाणिक शब्द

1 तीसरा सप्तक प्रयोग नारायण त्रिपाठी पृ० 31

चित्र उसकी परिधि मे आकर सिमट गये हैं। असल मे नयी कविता ने यथार्थ की भूमिका पर जिस बौद्धिक और वैज्ञानिक चेतना के सहारे मानव जीवनगत विचारणा और स्थिति-परिस्थिति को अभिव्यक्त किया है, उसमे वह पूर्ण ईमानदार प्रतीत होती है। आज का मानव जिस सकट को जी रहा है, उमे कवियो ने भी सहा और भोगा है। भोगने की इस प्रक्रिया म उसका मानस कितने सदर्भों मे टूटता बिखरता रहा है, घुटता और दरकता रहा है, यह इस कविता के सहयात्री बनने से जाना जा सकता है। हाँ, इस टूटन-घुटन मे भी वह निरन्तर उससे उबरने के लिए प्रयत्नरत रहा है, इसम सन्देह नही है। यही कारण है कि नयी कविता म व्यक्ति और समाज का एकीकरण है, आशा निराशा निश्चय अनिश्चय की झाँकियाँ हैं। इतना ही क्यो उसमे मनुष्य मनुष्य के बीच और देश दश के बीच जा दूरी है, उसे भरने और बीच म आई बाधक दीवारो को गिराकर मुक्त परिवेश की ओर बढने की कामना भी उपलब्ध है। सचाई और ईमानदारी, यथार्थ के प्रति निष्पक्ष दृष्टि, चेतन अचेतन के भावो के प्रति स्वीकारोक्ति, जीवनव्यापी रिक्तता, विसगति और दमघोटू स्थितियो व हाड हाड को चटखा देने वाले दर्द की सशक्त अभिव्यक्ति के साथ भी जिजीविषा और लोक-सपृक्ति का भाव नयी कविता मे सहजता के साथ अभिव्यक्त हुआ है। नयी कविता के कवियो ने प्रत्येक क्षण को पकडा है और अपनी नितान्त वैयक्तिकता में भी वे अस्तित्व के प्रति सतर्क व आस्थावान दिखाई देते हैं। जहाँ तक इस काव्य धारा की प्रमुख प्रवृत्तियो का प्रश्न है उन्हे क्रमश इन शीर्षकों में रखकर समझा-समझाया जा सकता है भाव क्षेत्रीय और शैल्पिक। भाव, विचार और शिल्प तीना प्रकार की विशेषताएँ इन दो शीर्षको म आगे विश्लेपित है

भावक्षेत्रीय प्रवृत्तियाँ

नयी कविता की भाव क्षेत्रीय विशेषताओ म मध्यवर्गीय समाज के अन्तर्गत साँस लेने वाले मनुष्य की भावानुभूतियो, सौन्दर्य चेतना, प्रणयानुभूति, समस्याकुलता और इनसे ही निष्पन्न प्रवृत्तियो को लिया जा सकता है। इस प्रकार नयी कविता की विशेषताएँ प्रमुखत इन बिन्दुओ के सहारे समझी जा सकती है

1 नयी कविता की प्रमुख प्रवृत्ति मध्यवर्गीय मनुष्य की भावानुभूतियो से जुडी हुई है। बदलती दुनियाँ मे मनुष्य कितना सकटग्रस्त, पीडित और विवश है, इसकी खुली व्यजना नयी कविता में उपलब्ध होती है। जीवन में सर्वत्र असतोष अनिश्चय और दुविधा व्याप्त है। घर से लेकर बाहर समाज तक जहाँ भी यह मध्यवर्गीय मनुष्य है वही वह रुग्ण और असहाय है। वह अपनी ही आवाजो के घेरे म घिर गया है। फलत उसे उसकी ही आवाज हर प्रकार से अनजानी लगती है। चाहे दुष्यत कुमार हो, चाहे अज्ञेय, चाहे मुक्तिबोध हो, चाहे गिरिजाकुमार माथुर या सर्वेश्वर सभी की कविताएँ इस घेरे मे कैद विवश व चिन्ताविजडित मनुष्य की स्थिति को व्यक्त करती हैं। फलत कवि यह कहकर रह जाता है कि "यो बीत गया सब हम मरे नहीं, पर हाय! कदाचित जीवित

भी हम रह न सके" [अज्ञेय] भारती इसी अनिश्चय; द्विविधा और संकट-क्षण को झेलते हुए 'पराजय का गीत' गाते हैं तो दुष्यत 'आवाजो के घेरे' लिखते हैं। ऐसा नही है कि इस स्थिति मे कवि थकित और क्लान्त नही है। वह है क्योंकि वह जानता है कि जीवन मे इस बोध को जगाने वाले प्रश्नो के उत्तर अमिट हैं। वह अनिश्चय से हैरान भी है और उसका मन प्रश्निल भी है। हाँ अपनी इस अवश स्थिति का स्वीकार भी उसमे है तभी जगदीश गुप्त ने लिखा है : "मुझे अब कुछ नहीं कहना, कहूँ भी क्या कि जब मजबूरियो के बीच ही रहना।" तात्पर्य यह है कि नयी कविता जिस मध्यवर्गीय चेतना को वाणी दे रही है, उसमे पहला स्वर निराशा, पराजय, विवशता और असमर्थता का है।

2 मध्यवर्गीय मनुष्य की यह पहली चिन्ता रही है कि वह इन बदलती स्थितियों मे कहाँ रहे? किसका सम्बल ग्रहण करे? जीने की चाह अमिट है। अत. आसद पीडा सहकर भी मात्र-निराशा या पराजय उसे स्वीकार नहीं है। वह आस्था का आलोक जगाना चाहता है ताकि उसके प्रकाश मे वह धुँधलाये पथ को भी पा सके। इसी कारण नयी कविता मे दूसरी प्रमुख प्रवृत्ति जीवन के प्रति आस्था से जुडी है। उसकी दृष्टि दर्शना मे जीवन के प्रति प्रतिषेध का भाव नही है, सकार का है। अत नये कवि की दृष्टि स्वीकारात्मक है और इसके पीछे निश्चय ही उसकी जिजीविषा है। यही कारण है कि नया कवि जीवन को उसके असली किन्तु पूर्ण रूप में जीने का अभिलाषी है। इसी अभिलाषा मे वह बावजूद अनेक बिडम्बनाओ के आस्थामयी वाणी म कहता है "रात, पर मैं जी रहा हूँ निडर, जैसे कमल, जैसे पथ, जैसे सूर्य, क्योकि कल भी हम खिलेंगे, हम उगेंगे और वे सब साथ होगे, आज जिनको रात ने भटका दिया है।" जीवन के प्रति विश्वास का यह स्वर न केवल भारती मे है, अपितु प्राय सभी शीर्षस्थ कवियो मे है। जीवन के प्रति आस्था लेकर चलने वाले अज्ञेय, नरेश मेहता, गिरिजाकुमार और भारती व विजय देवनारायण साही आदि सभी व्यक्तित्व के प्रति भी आस्थावान हैं। अज्ञेय तो मूलत आस्थावादी ही है "हम मे तो आस्था है कृतज्ञ होते / हमें डर नही लगता कि उखड नजावें कही " / प्रयाग-नारायण त्रिपाठी मानसिक उद्वेलन' मे भी व्यक्तित्व के लिए अटूट आस्था लिये जी रहे हैं। आस्था का यह भाव लघुत्व मे भी थका नही है। 'भारती' 'टूटा पहिया' लेकर भी लघुत्व के प्रति आस्थावान हैं तो सर्वेश्वर ने इसी आस्था को 'थरमस' कविता में यो वाणी दी है

"तो यह नगण्य अस्तित्व तक
किसी के कधे पर भार नहीं होगा
थरमस से हम सब
हर भावी यात्रा के
प्यासे क्षणों का

अभिलाष भाल चूमेंगे ।।"

नयी कविता निराशा, पराजय और विवश स्थितियों से ऊपर उठकर यदि आस्था के साये मे जा मिलती है तो आस्था ने उसे कर्मठता का मत्र भी दिया है । इतने पर भी यदि कोई कहे कि नयी कविता कुठा, पराजय और निराशा के कारण मरणधर्मी हो गई है तो उसे जीवन सत्य की बोधक इन पक्तियो को पढना चाहिये । ध्यान रहे ये पक्तियाँ हर कवि का प्रतिनिधित्व करती हैं । अत कर्मठता का यह सदेश मात्र सदेश या प्रचार-स्वर नही है । यह तो जीवन की काली हदों को चीरकर सूर्यवत् उदित हुआ है :

"कर्म रत हो, स्वप्न मत देखो,
कहीं उन्माद रह जाये न भौंरों का
निरर्थक गीत उद्दीपन
इस गली के छोर पर बुनियाद डालो
कोठरी मे दीप की लौ
सेंकती ठडा अँधेरा
इन्हीं पर्तों मे कहीं सोया हुआ है
रूप का गोरा सवेरा" ।

[नयी कविता अंक 3 पृष्ठ 37]

3 आस्था का दीप लेकर भावी मानवता के चितेरे नये कवि भविष्योन्मुखी चेतना के कवि हैं; किन्तु यह चेतना मात्र कल्पना बनकर नहीं आई है । इसके पीछे ठोस यथार्थ की शक्ति है जो इन कवियों को वर्तमान से असतुष्ट और भावी के प्रति सक्रिय बनाये हुए है । इस प्रकार नयी कविता की तीसरी प्रवृत्ति वर्तमान से असतोष की भावना को व्यक्त करती है । यह असतोष कही तो वैयक्तिक है और कही आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक कारणो से उद्भूत है । वैयक्तिक असतोष वहाँ अभिव्यक्त हुआ है जहाँ कविताएँ अहवादी प्रवृत्तियो और ऐषणाओं के रूप म व्यक्त हुई हैं, किन्तु नये कवि का वैयक्तिक असतोष उदार मानवतावादी भूमि पर खडा होने से सामूहिक भी हो गया है । जो वैयक्तिक कारण वर्तमान परिवेश मे उसे क्षुब्ध और असतुष्ट बनाये हुए हैं वे ही जब जन-समाज के असतोष का कारण भी हो तो कवि का उक्त वैयक्तिक असतोष समष्टि का असतोष बन जाता है । 'दुष्यत' की 'एक विचार' कविता की शुरुआत वैयक्तिक असतोष से हुई है, किन्तुपरिणति मे कवि लिख गया है 'फिर लगा सोचने-अगर महल धरती के ऊपर खडे न हो, चाँदनी सबके घर आयेगी रोजाना ।" यही वैयक्तिक असतोष जब राष्ट्रीय से अन्तर्राष्ट्रीय फलक का स्पर्श करता है तो निश्चय ही सामूहिक बन जाता है ।

4 प्रश्न यह है कि आस्था, पराजय, असतोष की भावानुभूतियों का इतना सफल प्र बन और वह भी ईमानदारी के साथ कैसे हो सका? स्पष्ट है कि नयी कविता

का कवि परिवेश के प्रति जागरूक है। उसकी जागरूकता उसे ईमानदार भी बनाये रख सकी है और समूचे आस-पड़ोस, देश-समाज और जीवन के प्रति सतर्क भी। अत: परिवेश के प्रति जागरूकता नयी कविता की विशेषताओं में चौथे स्थान की अधिकारिणी है। आज परिवेश जिस तेजी से बदल रहा है और उस बदलाव को नये संवेदनशील कवि जिस आग्रह के साथ अपना रहे हैं उससे तो लगता है कि नयी कविता जीवन के परिपार्श्व में बैठकर लिखी गई काव्य-धारा है। इसमें परिवेश को पूरी ईमानदारी से प्रस्तुत किया गया है। नया कवि न तो विगत के गीत गाकर मन को भुलावे में रखना चाहता है और न भविष्य की कल्पना में निमग्न रहना चाहता है। वह तो समसामयिक जीवन के परिप्रेक्ष्य से वर्तमान के प्रत्येक जीवन्त क्षण को अपने में पूर लेना चाहता है। एक शब्द में उसकी अनबुझी प्यास वर्तमान की जाह्नवी से ही बुझ सकती है। ऐसी स्थिति में यह भी कहा जा सकता है कि नयी कविता व्योम-कुंजों से उतर कर धरती की ऊबड़-खाबड़, कोमल और पथरीली मिट्टी में सौन्दर्य के उन कणों की तलाश कर रही है जो चमकीले तो हैं, किन्तु यथार्थ से सपृक्त जीवन के गेसुओं में टँके हैं। यह तथ्य निर्विवाद है कि नयी कविता का स्वर अपने परिवेश की जीवनानुभूति से फूटा है। हाँ, प्रत्येक कवि का जीवनानुभव अलग-अलग हो सकता है क्योंकि प्रत्येक का परिवेश अलग हो सकता है। नयी कविता में नगरीय व ग्रामीण दोनों परिवेश एक दूसरे से कभी मिलकर, कभी अलग रहकर चित्रित हुए हैं। अज्ञेय मुक्तिबोध और गिरिजाकुमार का परिवेश बहुत व्यापक है। हाँ, कुछ कवि जैसे कुँवरनारायण, धर्मवीर भारती श्रीकान्त वर्मा और रघुवीर सहाय आदि नगरीय परिवेश के कवि हैं तो भवानीप्रसाद मिश्र, सर्वेश्वर, केदारनाथ सिंह और शम्भुनाथसिंह आदि ग्रामीण परिवेश के जीवन्त चित्रकार हैं। मदनवात्स्यायन ने यान्त्रिक परिवेश तथा जगदीश गुप्त ने प्राकृतिक परिवेश के बिम्ब भी बड़ी सहजता से उतारे हैं। स्पष्ट ही नयी कविता अपने परिवेश के प्रति पर्याप्त जागरूक है और उसी का चित्रण करती है। इस तरह परिवेश और उसके अन्तर्गत साँस लेने वाले व्यक्ति का सही और यथार्थ अंकन नयी कविता में हुआ है।

नयी कविता की पाँचवीं प्रवृत्ति क्षण के सत्य को पकड़ने की है। क्षणबोध नयी कविता की प्रमुख प्रवृत्ति है। यह बोध शाश्वत-बोध का विरोधी अर्थ नहीं देता है, अपितु शाश्वत को पकड़ने की यथार्थ प्रक्रिया है। क्षणों में विभक्त जीवन, उसकी व्यथा; उसका उल्लास, क्षणों में लक्षित मनस्थिति और क्षणों में स्फूर्जित कोई भी सत्य छोटा नहीं है। अनुभूतिविरहित, पीडाहीन इतिहास असत्य है, अमहत्वपूर्ण है। अत: नयी कविता अनुभूति प्रेरित गहरे क्षणों, प्रसंगों और स्थितियों को उसकी समग्र आन्तरिकता के साथ पकड़ती है। यही कारण है कि जीवन के छोटे से छोटे, सामान्य से सामान्य और विशिष्ट से विशिष्ट प्रसंग-

क्षण नयी कविता मे नया अर्थ पा रहे हैं। वस्तुत नयी कविताए कुछ क्षणों, प्रसगों और लघु दृश्योको आकार प्रदान करती हुई कतिपय सगत, असगत बिम्बों के माध्यम से क्षणो की परिधि मे जीवन के समूचे उफान को बांधने का सफल प्रयास करती हैं। ये क्षण और प्रसग आयातित नहीं हैं; जैसी कि कुछ समीक्षको की मान्यता है, अपितु समसामयिक परिवेश की उपज हैं। नयी कविता मे क्षणबोध का विकास अस्तित्ववादी दर्शन की भूमिका पर हुआ है। इस दर्शन के आधार पर प्रत्येक क्षण की स्वतंत्र सत्ता है। इस कारण प्रत्येक क्षण का महत्व है। *मनुष्य क्षणो की पृथकता मे से उन सभी को अपनाता है जो ग्राह्य भी है और* अग्राह्य भी है। कारण; उसकी मान्यता है कि जो क्षण जिस रूप मे सामने है, दुबारा उसी रूप मे सामने नही आ सकता है। इस आधार पर अतीत, वर्तमान और भविष्य तीनो का सगम क्षण बोध के बिन्दु पर हो जाता है। इस दृष्टि से प्रत्येक क्षण अपने मे सम्पूर्ण है और यथार्थ की गतिशीलता मे अभिन्न है। अज्ञेय की पंक्तियाँ हैं—

एक क्षण : क्षण मे प्रवहमान
व्याप्त सम्पूर्णता
इससे कदापि बड़ा नहीं था महाम्बुधि जो
पिया था अगस्त्य ने
....
आज के इस विविक्त अद्वितीय क्षण को
पूरा हम जी लें, पी लें आत्मसात् करलें —
उसकी विविक्त अद्वितीयता में
शाश्वत हमारे लिये यही है
अजिर है अमर है

काल अनत और असीम है और ससार क्षणभंगुर है। अतः क्षणभगुर ससार के प्राणी का क्षणभोगी हो जाना स्वाभाविक है। मुक्तिबोध की कविता मे भी यही भाव व्यंजित है। कीर्ति चौधरी की कविताओ मे भी 'कई दिनो' के चिन्तन और सघर्ष के पश्चात् मिले क्षण मे डूब जाने की भावना प्रबल है। रवीन्द्र भ्रमर की 'क्षण दर्शन' कविता मे भी *यही भाव व्यंजित हुआ है। डॉ० धर्मवीर भारती ने घनीभूत क्षण का अचानक उद्गम* नही माना है। उनकी दृष्टि मे "कितने ही क्षण है कितनी ही स्थितियाँ हैं जो प्रत्यक्षत. असम्बद्ध लगती हैं, पर कुल मिलाकर हमारे चेतन, अर्ध-चेतन मन मे लहर पर लहर इस एक बिन्दु को उभारती रहती हैं और सपूर्ण जीवन प्रक्रिया एक क्षण से सम्बद्ध हो जाती है।"[1] भारतभूषण अग्रवाल ने क्षण की महत्ता प्रतिपादित करते

1. भारती : सात गीत वर्ष की भूमिका पृष्ठ 13

हुए लिखा है :

"क्रौंच तो अभिव्यक्ति है
मात्र अभिव्यक्ति
क्षण ही उसका स्वभाव है।"

6 नयी कविता मे व्यक्त क्षण बोध का दुहरा परिणाम सामने आया है—एक तो भोगवादी प्रवृत्तियो के अनुरूप और दूसरे वर्तमान के प्रति असन्ताप युक्त ममत्व प्रदर्शन मे । अतः भोगवाद भी नयी कविता की एक प्रवृत्ति के रूप मे व्यक्त हुआ है । अतृप्तियाँ सतुष्टि पाकर सुखवाद बन गई हैं और सुखवाद मे मासल, शारीरिक और ऐन्द्रिय सुख को प्राप्त किया जा सकता है —

"फैल रही है परिधि स्तनों की
हसरतें अभी जवान हैं ।
आओ दोस्तो और साथियो
आओ मेरे झण्डे के नीचे
उत्सव करें,
नाचें, गाएँ, रक्त की लय पर"

यह भोगवादी वृत्ति कवि को सुख प्रदान करती है । अतः वह अतृप्त वासनाओ को व्यक्त करके ही सुख पाता है । भारती ने लिखा है

"जिस दिन ये तुमने फूल बिखेरे माथे पर
अपने तुलसीदल जैसे पावन होठो से,
मैं सहज तुम्हारे गर्म वक्ष मे शीश छुपा
चिड़ियों के सहमे बच्चे सा
हो गया मूक ।"

नयी कविता की भोगवादी प्रवृत्ति की सहोदरा के रूप मे भदेस चित्रण की प्रवृत्ति को भी अपनाया गया है । अज्ञेय का मूत्रसिंचित् मृत्तिका के वृत्त में तीन टाँगो पर खडा नतग्रीव 'धैर्य धनगदहा' जैसी पक्तियो मे इसी प्रवृत्ति को अ कित किया गया है । जो वृत्तियाँ अश्लील असामाजिक और अस्वस्थ मानकर अब तक साहित्य-क्षेत्र से बहिष्कृत थी; वे भी नये कवियो की लेखनी से उभर कर आई हैं । परिणामस्वरूप नयी कविता मे अतृप्ति, कुण्ठा और दमित वासनाओ का प्रकाशन भी बेखटके हुआ है और कवि अनतकुमार 'पाषाण' यह स्वीकार भी करते हैं कि "मेरे मन की अँधियारी कोठरी मे अतृप्त आकाक्षाओ की वेश्या बुरी तरह खाँस रही है ।" 'शकुन्त माथुर' की 'सुहाग वेला' कविता भी इसी श्रेणी मे आती है । कहने का तात्पर्य यह है कि नयी कविता में भदेस चित्रण; अतृप्ति-स्वीकार और नग्न वृत्तियो को भी निस्सकोच भाव से बेपर्द शैली मे प्रस्तुत किया गया है । कुछ समीक्षको की धारणा है कि नयी कविता मे अतिरिक्त अनास्था और कुण्ठा का चित्रण हुआ है और ये विशेषताएँ पश्चिम का

अन्धानुकरण मात्र हैं। यह तो ठीक है कि नयी कविता में निराशा, कुंठा और मरणधर्मिता भी हैं, किन्तु ध्यान से देखें तो इनको विकसित करने वाले कारण भी हमारे समाज में हैं। आज जो समाज का विषम परिवेश है, जीवन को कँपा देने वाली स्थितियाँ हैं, वे सबकी सब ऐसी हैं जो मनुष्य को निराशा के नैराश्यकार और कुंठाओं के जंगल में भटकाने के लिये काफी हैं। फिर यदि नया कवि इनका सहज स्वीकार करके अभिव्यक्ति के द्वार पर ले आया है तो उसे अस्वाभाविक और बेमानी नहीं माना जा सकता है।

7. मानव को महत्व देने की शुरूआत बहुत पहले ही हो गई थी, किन्तु, आधुनिक युग में प्रगतिवादियों ने उसे विशेष महत्व नहीं दिया बावजूद इसके कि वहाँ मानव को सामाजिक परिप्रेक्ष्य में देखा गया है। नयी कविता में पहली बार मनुष्य को उसके व्यक्तित्व के साथ प्रस्तुत किया गया है। यह नयी कविता की उल्लेखनीय प्रवृत्ति है। यहाँ पर व्यक्ति समर्पित न होकर अपनी स्थिति के प्रति सतर्क है। मनुष्य का अस्तित्व रक्षण, स्वाभिमान और नये मानदण्डों की प्रस्थापना आदि कुछ ऐसे मूल्य हैं जिनसे उसे अहवादी की अभिधा प्राप्त हो जाती है। इसमें कोई संदेह नहीं कि अपने अस्तित्व का उद्घोषक नया मानव अह को स्वीकारता है, किन्तु यह भी अविस्मरणीय है कि यह अह अभिमान और उच्छृंखलता का पर्याय नहीं है। यह तो निश्चय ही यथार्थ बोध का प्रतिपादक है। जब यही अहम् संशोधित होकर सामने आता है तो व्यक्तित्व के विकास में सहायक होता है। इसी आधार पर यह प्रतिपादित हो जाता है कि अहम् कोई ऐसी वृत्ति नहीं जो समाज विरोधी हो। नव मानव में व्याप्त अह का समाज या सामाजिक उन्नति से कोई विरोध नहीं है। यही कारण है कि नयी कविता में जिस अह को स्वीकृति प्राप्त है, वह समाज के प्रति विसर्जित हो जाता है। इस कविता में अह भावना का प्रकाशन कई स्तरों पर हुआ है। कहीं व्यक्ति सत्ता के कारण तो कहीं मानव मर्यादा की रक्षा, स्वतन्त्रता के कारण और कहीं आत्म विश्लेषण के कारण अह को स्वीकृति मिली है। व्यक्ति सत्ता को प्रतिष्ठित करने का प्रयास वैयक्तिक और सामाजिक दोनों स्तरों पर हुआ है। 'अज्ञेय' और भारतभूषण अग्रवाल की कविताएँ 'नदी के द्वीप' और 'हम नहीं हैं द्वीप' इस संदर्भ में पढ़ी जा सकती हैं। अज्ञेय की 'नदी के द्वीप' कविता समाज के समानान्तर चलती हुई व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा करती है तो भारतभूषण नदी के द्वीप वाले व्यक्ति का विरोध करते हुए जीवन से भरे निर्मल सरोवर का पक्ष ग्रहण करते हैं। नदी के द्वीप की अपेक्षा सरोवर की उपयोगिता स्पष्ट है। वह प्यास के उपचार, वनस्पति के संवेदन भरे मित्र नगर की जिन्दगी के मधु और भोली ग्रामीणा के कलश के वरदान हैं।

नयी कविता में मानव मर्यादा की रक्षा और स्वतन्त्रता के निमित्त जो अह की भावना दिखाई देती है, वह भारती, अज्ञेय, शमशेर और दुष्यंत कुमार में भी मिलती है। भारती की 'कविता की मौत' में यही अह प्रतिष्ठित है। अह की यह

आवाज "क्या हुआ दुनियाँ अगर मरघट बनी, अभी मेरी आखिरी आवाज बाकी है" पंक्तियों में सुनी जा सकती है। पिछले दिनों में हुए मानव व्यक्तित्व के विघटन के कारण ही शमशेर ने अह को स्वीकार करते हुए लिखा है "चित्रकारी के रंगो मे बन स्वय फैल फैल मैं गया हूँ, कहाँ-कहाँ"। नये कवि का अह एक स्तर पर जाकर समाजोन्मुख भी हो गया है, वह समाज के समक्ष विर्सजिन भी हो गया है। निश्चय ही यह विसर्जन कवि व्यक्तित्व के अस्तित्व की पराजय को चित्रित नही करता है। अज्ञेय की 'यह दीप अकेला नामक कविता इसका अच्छा प्रमाण प्रस्तुत करती है। कवि ने 'स्नेहभरे अकेले दीप को गर्व-भरा मदमाता और सच्चे मोती लाने वाला पनडुब्बा' धरा को फोडकर रवि की ओर दृष्टि रखने वाला, प्रकृत और स्वयभू आदि कहकर भी पवित्र, भक्ति और शक्ति के प्रति समर्पित होता चित्रित किया है। 'भारतभूषण' धर्मवीर भारती और रघुवीर सहाय की कविताओ मे भी मानव अह की परिधि से निकलकर समाज की भीड मे मिल गया है। 'हरी घास पर क्षण भर' का कवि तो इसमे अटूट आस्था रखता है कि 'अपने से बाहर आये बिना गति नही है।"

8 नयी कविता की एक प्रवृत्ति सामाजिकता और यथार्थ के ग्रहण से भी सम्बधित है। सामाजिकता का यह स्वरूप वही से और उसी विन्दु से शुरू हुआ है जहाँ अह का समाज और सामाजिकता में विलयन हो गया है। भारतभूषण की कविता मे सामाजिक आग्रह के समक्ष अह विर्सजित हो गया है। 'रघुवीर सहाय' ने अह की परिसमाप्ति के लिए विद्रोहात्मक स्वर न अपना कर केवल व्यक्ति की सीमाओ के टूटने की प्रतीक्षा करती मन स्थिति का चित्रण किया है। यह एक स्वस्थ पक्ष है जिसमे व्यक्ति अपनी व्यक्तिमत्ता को सुरक्षित रखकर भी सामाजिकता से जुडा हुआ है। अज्ञेय की 'मैं वहाँ हूँ' "सागर और गिरगिट" 'हवाएँ चैत की' 'वर्ग भावना सटीक' और 'शोषक भैया' कविताओ मे सामाजिक जीवन की तसवीर है। ध्यान से देखें तो सामाजिकता का यह सदर्भ नयी कविता मे तीन रूपो मे उद्घाटित हुआ है 1 समाज की खोखली स्थिति के चित्रण मे 2 सामाजिक दायित्व के रूप मे 3 समाज कल्याण के प्रेरक तत्वो के रूप मे। भारतीय समाज वाहर स स्वस्थ प्रतीत होता हुआ भी भीतर से रुग्ण होता जा रहा है। सामाजिक व आर्थिक सम्बध और नैतिक मूल्यो के विघटन से समाज मे रिक्तता आ गई है। नयी कविता मे छोटे बडे सभी के जीवन का कच्चा चिट्ठा मौजूद है। सभ्यता और सस्कृति का बिखराव रिक्तता की सूची मे एक पहलू और जोड रहा है। यथार्थ का पक्षधर नया कवि इन सभी स आँखें नही चुराता है, अपितु इनकी व्यजना से काव्य को सप्राण बना रहा है। सामाजिक विद्रूपता की यह तस्वीर कही व्यग्यात्मक, कही वैचारिक और कही भावात्मक 'पोज' में सामने आई है। यह अज्ञेय और सर्वेश्वर मे व्यग्य, भारती और गिरिजाकुमार मे भावना और मुक्तिबोध मे वैचारिक रग लिये हुए है।

'सर्वेश्वर' की पोस्टर और आदमी', 'एक प्यासी आत्मा का गीत', 'बीसवी सदी के कवि' और 'सौन्दर्य बोध' आदि कविताओ मे सामाजिक जीवन के खोखलेपन को देखा जा सकता है। भारती की 'कविता की मौत', कीर्ति चौधरी की 'वक्त' और मुक्तिबोध की 'अँधेरे मे' व मुझे याद आते हैं आदि मे जीवन की खोखली स्थितियो के चित्र हैं जो यथार्थ के रग से और भी चमक गये हैं। सचाई यह है कि आज हम सभी आधे रास्तो की जिन्दगी जी रहे है। परिणामत: जीवन मे घृणा, प्यार, क्रोध और क्षमा कुछ भी सपूर्णता से भोग नही पाते हैं। मानव जीवन और समाज मे व्याप्त इन विविध यथार्थ रूपो का चित्र नयी कविता के सामाजिक पक्ष को ही पुष्ट करता है सामाजिक जीवन की विकृतियो, मजबूरियो और असमर्थताओ के स्पष्ट और खुले चित्र नये कवि ने उतारे है। मध्यवर्ग आज सर्वाधिक त्रस्त और सतप्त है। अत उसी की जिन्दगी का इतिहास और भूगोल नयी कविता मे पढा, देखा और समझा जा सकता है। सुबह से शाम तक कारखानो, आफिसो, स्कूलो और दुकानो आदि मे काम करने वाला व्यक्ति जब शाम को घर लौटता है तो थक कर चूर हो जाता है। भारतभूषण की 'विदेह', अनतकुमार पाषाण की 'बम्बई का क्लर्क,' देवराज की 'क्लर्क' जगदीशगुप्त की पहेली', लक्ष्मीकात वर्मा की 'मृतात्मा की वसीयत' और अज्ञेय की 'महानगर रात' आदि कविताओ मे इसी जिन्दगी के चित्र हैं। ये चित्र जीवन और समाज की खोखली स्थिति को व्यक्त करते हैं। स्पष्टीकरण के लिए लक्ष्मीकात वर्मा की ये पक्तियाँ लीजिये,

भर दो, इस त्वचा की मृतात्मा की, सूखी ठाठर मे
यह घास-पात कूड़ा-कबाड़ सब कुछ भर दो
लगादो नकली कौड़ियों की आँखें
कानो मे सीपियाँ
पैरों मे खपचियाँ
मेरी इस हृदयहीन धमनीहीन काया में
सभी कुछ भर दो
ताकि मैं स्निग्ध पयमती माता के निकट
अपनी चेतनाहीन पूँछ को एक स्थिति मे उठा
उसके वात्सल्य को, हृदय को, आकर्षण को, चेतना को
सबको उभार दूँ
और तुम इस मुर्दे के उपजाये स्नेह को निचोड़कर
जीवित रहो,
जिन्दा रहो।

दूध देने वाले पशु के बच्चे की मौत पर दूध के ग्राहक उसकी खाल मे भूसा भरकर अपना काम चलाते हैं। आज की सभ्यता मे यही स्वार्थ निहित है। व्यग्य शैली मे लिखी गई उपर्युक्त पक्तियाँ सभ्य किन्तु स्वार्थी समाज का 'एक्सरे' प्रस्तुत करती

हैं। प्राय. सभी नये कवियो ने सामाजिक दायित्व की बात कही है। दायित्व बोध के दौरान उन्होंने जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथ्य प्रकाशित किया है, वह समसामयिक जीवन मे पुराने मूल्य ग्रौर रूढ मर्यादाग्रो के परित्याग से सम्बधित है। ग्रज्ञेय भारती, सर्वेश्वर ग्रौर गिरिजाकुमार की ग्रनेक कविताएँ सामाजिक दायित्व के प्रति सतर्क होते हुए भी यथार्थ की ग्रोर भुकती जान पडती हैं। कुछ कविताएँ ऐसी भी लिखी गई हैं जो समाज-कल्याण के प्रेरक भावो से युक्त हैं। भवानीप्रसाद मिश्र ग्रौर गिरिजाकुमार माथुर इस सदर्भ मे उल्लेखनीय कवि हैं। माथुर की निम्नाकित पक्तियाँ देखिये जिनमे नये मान-मूल्यो के सहारे बाह्य विकृतियो के विनाश ग्रौर जन-जीवन के मगल भविष्य की कामना है

दीप जले द्वार-द्वार
ग्रन्न धन मिले ग्रपार
सदियों का रोग शोक
चले ज्यों पतिंग भार
पहिने सुहाग वसन
मानवता नागरी

स्पष्ट ही नयी कविता का सामाजिक पक्ष बड़ा प्रबल है। उसमें जीवन का यथार्थ भी प्रतिबिम्बित है ग्रौर सामाजिक निर्माण का भाव भी। उसमे घर, परिवार, शहर, नगर, गलियाँ, चौराहे, रेस्तराँ, विश्रामालय, फुटपाथ, प्लेटफार्म ग्रौर क्लब ग्रादि की सच्ची ग्रौर व्यावहारिक तसवीर मिलती है जिसमे यथार्थ का रग गहरा है। इस यथार्थ को चित्रित करने का खतरा सवेदनशील कवि ही उठा सकता है। 'सर्वेश्वर' जब लिखते हैं कि "मेले मे दुकान की/ माचिस बीडी पान की/ कुछ तो खा गये हाकिम हुक्का/ कुछ खा गये सिपाही/ बाकी बचा टैक्स भर पाई/ ऐसी हुई तबाही" तो मामूली बातों के सहारे वर्तमान समाज-व्यापी विडम्बनाग्रो ग्रौर त्रासदियो को सहज ही रेखाकित कर देते हैं। वस्तुत नयी कविता समाज के उस पहलू की कविता है जो यथार्थ है ग्रौर जिसका मानव ग्रपने ग्रस्तित्व-रक्षण के निमित्त जागरूक है। इसी जागरूकता के लिए वह ग्रह के गलियारो से गुजरता हुग्रा सामाजिकता के स्वरो मे बोलता है। जो कवि "भावनाएँ तभी फलती-फूलती हैं जबकि उनसे लोक के कल्याण का ग्र कुर कही फूटे" कहे उसे ग्रौर उसकी कविता को सामाजिक चेतना-विरहित ग्रौर क्षयोन्मुखी कैसे कहा जा सकता है ?

9 सामाजिक चेतना ग्रौर यथार्थवादी दृष्टि के सस्पर्श से नयी कविता मे व्यग्य का ग्रच्छा विकास हुग्रा है। व्यग्य की यह प्रवृत्ति भी नयी कविता की विशिष्टताग्रो मे से एक है। व्यग्य बोध वहाँ है जहाँ कवि सामाजिक स्तर पर ग्रसतोष से भर उठा है या उसने ग्रनुभव किया है कि जीवन मे शक्ति ग्रौर सत्ता का दुरुपयोग करते हुए कितने ही लोग जीवन की जाह्नवी को गँदला कर रहे हैं। इस व्यग्य के प्रमुख ग्राधार ये हैं : देश की वर्तमान गतिविधि, वर्तमान वैज्ञानिक

सम्यता, युद्ध और शांति तथा युगीन विषमताओं से युक्त प्रवृत्तियाँ। ध्यान देने की बात यह है कि इस व्यंग्य में विनोद कम अमर्ष अधिक है, प्रफुल्लता नहीं वेदना अधिक है और सतहीपन नहीं गहराई अधिक है। ऐसा इसलिए कि नया कवि प्रश्नाहत है, पारिस्थितिक विषमताओं से संतप्त है और वर्तमान संकट को गहराई से अनुभव करता है। यही वजह है कि नये कवियों का व्यंग्य हमें कभी विषाद में डुबा जाता है और कभी वैचारिक सीमाओं पर छोड़ जाता है। स्थिति के अनुभवन और अभिव्यंजन में कवि की खिन्नता व्यंग्यमयी होकर "विधाता! और विधाना से विधायक बड़ा है" जैसी पंक्तियों में स्पष्ट हुई है तो भवानीप्रसाद मिश्र ने आधुनिक सम्यता पर व्यंग्य करते हुए "मैं असभ्य हूँ क्योंकि खुले-नंगे पाँवों चलता हूँ; धूल की गोदी में पलता हूँ" और "आप सभ्य हैं क्योंकि हवा में उड़ जाते हैं ऊपर, आप सभ्य हैं क्योंकि आग बरसा देते हैं भू पर" जैसी पंक्तियाँ लिखी है। व्यंग्य यहाँ गहरा है। कवि का मूड परि-*स्थिति की विवशता की स्वीकृति और उसके न्याय्यीकरण* का है। अज्ञेय ने भी आधुनिक सम्यता पर व्यंग्य किया है। उनकी मान्यता है कि वर्तमान सम्यता ने सुख-विलास तथा आमोद-प्रमोद के साधनों को तो इकट्ठा कर लिया है, किन्तु मानव उपेक्षित हो गया है। इसी सत्य की विवृति इन पंक्तियों में हुई है :

> "असंदिग्ध ये सभी सभ्यता के लक्षण हैं
> और सभ्यता
> बहुत बड़ी सुविधा है
> सभ्य तुम्हारे लिये!
> किन्तु क्या जाने
> ठोकर खाकर कहीं रुके वह
> आँख उठाकर ताके
> और अचानक तुमको ले पहचान
> अचानक पूछे
> धीरे-धीरे धीरे :
> हाँ; पर मानव
> तुम हो किसके लिए?"

[अज्ञेय]

नयी कविता में युद्ध और शांति से सम्बन्धित स्थितियों पर भी सर्वेश्वर ने व्यंग्य किया है, किन्तु उनका उससे भी गहरा व्यंग्य वहाँ है *जहाँ युगीन प्रवृत्तियों* और समसामयिक किन्तु कृत्रिम स्थितियों का अंकन हुआ है। उदाहरणार्थ ये पंक्तियाँ

देखिये

> "लेकिन मैं देखता हूँ कि
> आज के जमाने मे
> आदमी से ज्यादा लोग
> पोस्टरों को पहचानते हैं"

सर्वेश्वर की ही सौन्दय बोध कविता मे उस समसामयिक प्रवृत्ति पर भी व्यग्य किया गया है जिसमे विवशता, भूख और मृत्यु के यथार्थ को भी दुनियाँ तभी पहचानती है जब वह सजा दिया जाता है। "आज की दुनिया मे, विवशता, भूख, मृत्यु सब सजाने के बाद ही पहचानी जा सकती हैं। बिना आकर्षण के दुकानें टूट जाती हैं। शायद कल उनकी समाधियाँ नही बनेंगी जो मरने के पूर्व कफन और फूलो का प्रबन्ध नही कर लेगे।" इसी स्थिति मे सर्वेश्वर का कवि व्यग्यमयी मुद्रा मे कही भीतर गहरा दर्द अनुभव करते हुए यह भी कह गया है

> "ओछी नहीं है दुनियाँ
> मैं फिर कहता हूँ—
> महज उसका
> सौन्दर्य-बोध बढ़ गया है।"

10 नयी कविता मे राष्ट्रीयता से अन्तर्राष्ट्रीयता के क्षितिजो का विस्तार हुआ है। उसमे जो व्यापक प्रवृत्तियाँ उभरी है वे समूचे विश्व को एक आँगन मानने की प्रेरणा प्रदान करती हैं। समाज और राष्ट्र से ऊपर उठता हुआ नया कवि अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति को व्यक्त कर रहा है। यही कारण है कि एक राष्ट्र का सकट, सघर्ष और सुख विश्व का सकट और सुख बनता जा रहा है। नयी कविता मे राष्ट्रीय भावनाओ का वाहक मानव स्वतन्त्रता, राष्ट्र गौरव और राष्ट्रोन्नति की बात करता हुआ विश्व भूमिका पर आकर खडा हो गया है। 'नरेश-मेहता' की 'समय देवता,' कविता इसका ज्वलत प्रमाण है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर खडा नया कवि देश की पचवर्षीय योजनाओ के साथ वियतनाम, चीन, अमेरिका और सोवियत सघ की नीति मे भी रुचि रखता है। गिरिजाकुमार की 'पूरब की किरन' और सर्वेश्वर की काफी हाउस मे मेलोड्रामा व 'पीस पेगोडा' आदि कविताओ मे अन्तर्राष्ट्रीय स्वरो की अनुगूँज है। वस्तुत नये कवि का दृष्टिकोण सीमाओ को पार करके विश्व शाति की कामना कर रहा है। कुछेक कविताएँ ऐसी भी हैं जो देश के लिए त्याग करने वाले वीरो की प्रशस्ति के रूप मे लिखी गई है। इनम 'सुभाष की मृत्यु पर' (धर्मवीर भारती) 'दो अक्टूबर' 'चरित्र की केसर' (गिरिजाकुमार), नेहरु जी के प्रति (हरिनारायण व्यास) और 'यह जवाहर दीप' (डॉ० देवराज) व सर्वेश्वर द्वारा लिखित लोहिया सम्बधी कविताएँ विशेपोल्लेख्य हैं। इस दौर की कविताओ मे कुछ ऐसी भी है जिनमे सघर्पमयी परिस्थितियो मे भी देश की स्वाधीनता को अक्षुण्ण रखने

की बात कही गई है। भारती जब लिखते है कि "कह दो उनसे, जो खरीदने आये हैं तुम्हें, हर भूखा आदमी बिकाऊ नही होता" तब वे देश के गौरव और स्वाभिमान के सशक्त पहलू की ओर ही संकेत करते हैं। प्रान्तीयता के भावो के पोषकों पर नया कवि व्यंग्य करता है क्योंकि यह संकीर्ण राष्ट्रीयता देश के लिए घातक है। मदन वात्स्यायन ने लिखा है

"ओ मेरे अफसर / मैंने क्या बिगाड़ा था,
क्या यह इतना बड़ा अपराध है कि मैं भारतीय तो हूँ
पर तुम्हारे प्रान्त का नहीं हूँ।।"

नेहरू के बाद देश मे मोहभंग की स्थिति उत्पन्न हुई और धीरे-धीरे वह गहरी होती चली गई। परिणामत. नयी कविता मे चित्रित राष्ट्रीयता की प्रवृत्ति मे भी किंचित् परिवर्तन हुआ और मूल्यों के प्रति संशय और युयुत्सा की प्रवृत्ति पनपी जो समसामयिक कविता की प्रमुख प्रवृत्तियों में से एक है।

11. युग कोई भी हो उसका सर्जक अपने परिवेश को नहीं भुला सकता है—उस माहौल को नजरन्दाज नही कर सकता है जो उसके आस-पास बिखरा है। नयी कविता भी इसका अपवाद नही है। उसमे आजादी के बाद के भारत का सशक्त बिम्ब है। अनेक कवियो ने स्वातन्त्र्योत्तर भारत की राजनैतिक, सामाजिक, और आर्थिक उपलब्धियो को अपनी कविता का विषय बनाया है। नये कवि की संवेदना के वृत्त मे सभी कुछ आ गया है। लक्ष्मीकांत वर्मा, सर्वेश्वर, मुक्तिबोध अज्ञेय और श्रीकांत वर्मा सभी ने अपने-अपने कोण से परिवेश को आकार दिया है। कही इसके लिए व्यंग्य का सहारा लिया गया है, कही सपाटबयानी का और कहीं अभिव्यक्ति के नये आयामो का। अज्ञेय तो केवल यह सवाल उठाकर रह गये हैं कि "आजादी से तुम को क्या मिला ?/ उन्नीस नगे शब्द / अठारह लचर आन्दोलन / सत्रह फटीचर कवि / सोलह लुंजी—हाँ कहलो कलाएँ / ...." पर देवेन्द्र गुप्त की कविता 'मंजिल', लक्ष्मीकांत वर्मा की 'एक एकसट्रा कुछ घोषणाएँ और स्थितियाँ', रघुवीर सहाय की 'आत्महत्या के विरुद्ध' और मुक्तिबोध की पूरी पुस्तक 'चाँद का मुँह टेढ़ा है समसामयिक परिवेश के सघन किन्तु भयावह और यथार्थ बिम्ब देती हैं। 'रघुवीर सहाय' परिवेश के अंकन मे काफी सफल रहे हैं। उनकी अधिकांश कविताएँ समाज, व्यक्ति और राजनीति का पूरा जुगराफिया देती हैं। 'सर्वेश्वर' की 'कुआनो नदी' और 'जंगल का दर्द' की कविताओं में परिवेश का अंकन बड़ी सूक्ष्मता से किया गया है। 'गरीबी हटाओ' कविता मे तो परिवेश इतनी तेजी से सामने आता है कि पाठक चकित रह जाता है। परिवेश व्यापी अकर्मण्यता, चापलूसी, टालमटोल मनोवृत्ति, योजनावादी सिद्धांत और प्रशासनिक अव्यवस्था के बिम्ब एक साथ पाठकीय संवेदना को दबोच लेते हैं। स्पष्टीकरण के लिए कैलाश वाजपेयी की केवल ये पंक्तियाँ काफी हैं "कोई चुनाव जीत लेने के चक्कर मे / कस्बे को जोड रहा

है हवाई भड्डे से / कोई आदर्श ही आदर्श भूक रहा है / पड़ा-पड़ा परपरा के गड्ढे से / कोई विदूपकता लिए अभिनदित है / कोई सिर्फ इसलिए महान है/ कि नि दित है/ स्टट फिल्म की तरह कोई प्रकाशक से / स्वर्णजयती मनवा रहा है/ कोई सिर्फ बच्चे बढा रहा है / जहाँ सब तरफ इतनी बकवास हो / वहाँ कविता ही वहाँ का सरग-वास है" /

12 नयी कविता राजनीति से जुडकर भी सामने आई है। यो यह आज भी विवाद का विषय है कि कविता मे राजनीति किस सीमा तक आ सकती है या नही आ सकती है ? मैं सोचता हूँ कि यदि राजनीति का अर्थ मात्र किसी पार्टी से जुडा है तो वह कविता के काम की चीज नही हो सकती है क्योकि ऐसी स्थिति मे गडबड की सभावना अधिक है। इसके विपरीत यदि राजनीति से तात्पर्य यह लिया जाय कि सर्जक तो सामाजिक जीवन का चितेरा होता है तो राजनीतिक सदर्भों का किसी कविता मे आ जाना बुरा नही है। कवि 'काशस आर्टिस्ट' होता है। अत वह अपने परिवेश के प्रति भी 'काशस' रहता है। इस 'काशसनैस' मे यदि उसकी निगाह राजनीति के घिनौनेपन और दुरगे रूप की ओर जाती है तो इसे कवि की ईमानदारी ही कहना चाहिए। नयी कविता मे राजनीति की स्थिति ऐसी ही है। वह किसी विशेष पार्टी के प्रति प्रतिबद्धता मात्र नही है। ठीक भी है जिस दिन लेखक पार्टी का सदस्य बन जाता है, उसी दिन उसका लेखक मर जाता है। वर्तमान राजनीति ने देश को कहाँ ला पटका है ? यह सर्वेश्वर की इन पक्तियो से ज्ञात हो सकता है "सुनो ढोल की लय / धीमी होती जा रही है / धीरे धीरे एक क्राति-यात्रा / शव-यात्रा मे बदल रही है / सडाँध फैली रही है नक्शे पर देश के / और आँखो मे प्यार के सीमात धुँधले पडते जा रहे हैं / और हम चूहो से देख रहे हैं" / आज राजनीति मानव समाज को फुटबाल बनाकर जो खेल-खेल रही है उससे मानवता के आगे दर्जनो प्रश्न चिन्ह लग गये है। इसका तीखा शब्दाकन श्रीकात वर्मा की इन पक्तियो मे देखा जा सकता है -'यूरोप / बड-बडा रहा है बुखार मे / अमरीका पूरी तरह भटक चुका है अधकार मे / एशिया पर बोझ है / गोरे इन्सान का / सभव नही है/ कविता मे वह सब कह पाना/ जो घटा है/ बीसवी शताब्दी के मनुष्य के साथ/ कांपत है हाथ" / इस तरह के चित्र नयी कविता म और भी मिलते हैं। ऐसा नही है कि नया कवि चीन पाकिस्तान, बगला देश, वियतनाम, अमरीका, रूस भारत और ईरान के सम्बन्धो, राजनैतिक चालो को समझता नही है। वह सब कुछ जानता है, परन्तु फिर भी वह उतना ही ग्रहण करता है जिसस कविता का स्वास्थ्य विकृत न हो। असल मे नयी कविता राजनीति के पार्टी वाले रूप से अलग है। यही वजह है कि उस पर इस सदर्भ से कोई आरोप नही लगाया गया है।

13 परिवर्तन किसी का भी सगा नही होता है। वह किसी भी स्थिति को यथावत् नही रहने देता है। यही कारण है कि स्वातन्त्र्योत्तर वर्षो मे काफी कुछ बदला

है। मानव-मूल्यों का नये सदर्भों मे विकास हुआ है। जीने का अटूट मोह, प्राचीन मर्यादाओ के ध्वस पर नयी प्रस्थापनाएँ, मुक्ति के लिए छटपटाहट भरा आग्रह, मानव-स्वाभिमान, स्वातत्र्य बोध, प्रत्येक प्रस्थापित सत्य को बुद्धि द्वारा परीक्षित और पुनर्परीक्षित करने की भावना एव अस्तित्व के प्रति सचेतन दृष्टि आदि ऐसे ही मानव मूल्य हैं जो आजादी के बाद के भारत मे विकसित हुए हैं। स्त्री पुरुष के सम्बन्धो मे भी पर्याप्त अन्तर आया है। इस अन्तर को डॉ०जगदीश गुप्त के काव्य-सग्रह 'युग्म' मे देखा जा सकता। स्त्री-पुरुष का पूर्ण साहचर्य 'युग्मता' के रूप मे ही होता है। आज के युग की यही माँग है। किरण जैन की ये पक्तियाँ गौर तलब हैं 'सभोग के बाद / विस्तर से उतर कर/मैं केवल एक सज्ञा हूँ / जिसमे दो चार विशेषण जुडे हैं / कुछ क्रियाएँ लगी हैं / मैं अनेक बच्चो मे एक दो की माँ हूँ / सब औरतो जैसी एक औरत हूँ / एक जीवित कु ठा हूँ /" कहने का तात्पर्य यही है कि नारी और पुरुष के सम्बधो से जुडे मूल्यो मे काफी परिवर्तन आया है, आ रहा है और इस सबको नयी कविता मे वाणी दी गई है। वस्तुत नयी कविता का कवि नारी को दोस्ती के स्तर पर देखता है, उससे पुरुष के जो रिश्ते सभव हैं वे तो बाद की चीजें हैं। नयी कविता मे जो जीवन-मूल्य विकसित हुए हैं उनमें जिजीविषा—जीने की उदग्र कामना का स्थान पहले है। नयी कविता मे इन्हे भली भाँति देखा जा सकता है। 'कुँवरनारायण' की 'कुछ नही वाली पहेली' मे जीवन को मुक्त भाव से जीने और जिजीविषा को ही मूल्य मानने का भाव दिखाई देता है। वे कहते हैं—

"अभी तो जूझ लेने का प्रलोभन
शून्य से भी जूझ लेने का नियोजन
फिर कभी क्या मिल सकेगा जिन्दगी मे
जिन्दगी से भी बडा कुछ"।

नियति और 'सुपर मैन' के इच्छा इ गितों पर चलने वाला मानव आज सभी बधनों को तोडकर मुक्ति का आग्रही हो उठा है। अज्ञेय की 'पश्चिम के जन-समूह' और केदारनाथ सिंह की 'माटी को हक दो, कविताओ मे यही मुक्ति-कामना प्रतिबिम्बित हुई है . "एक गति जो विवश चलती है, इसलिए कुछ करने नही देती, स्वतत्रता के नाम पर मारते हैं मरते' (अज्ञेय) मे मुक्ति की ओर ही सकेत है। केदारनाथ सिंह ने तो 'मुक्ति' को ही मानव का प्राथमिक और सर्वोपरि हक माना है। नयी कविता मानव-स्वाभिमान की रक्षा करते हुए मानव अनुभूतियो को उनके परिवेश मे चित्रित करती है। 'आत्मजयी' का 'नचिकेता' इसका उदाहरण है जो जीवन का विरोध नही करता है, अपितु उस विचारणा का विरोधी है जो जीवन को सकीर्ण परिधि मे बाँध देती है। इसी क्रम मे 'सशय की एक रात' के 'राम' भी स्वाभिमान की रक्षा और सामूहिकता के लिये युद्ध की स्वीकृति देते हैं

"अनत सूर्यों की एक सभावना की तरह

है हवाई अड्डे से / कोई आदर्श ही आदर्श थूक रहा है / पडा-पडा परंपरा के गड्ढे से / कोई विदूषकता लिए अभिनंदित है / कोई सिर्फ इसलिए महान है/ कि निंदित है/ स्टट फिल्म की तरह कोई प्रकाशक से / स्वर्णजयती मनवा रहा है/ कोई सिर्फ बच्चे बढा रहा है / जहाँ सब तरफ इतनी बकवास हो / वहाँ कविता ही कहाँ का सरग-बास है" /

12 नयी कविता राजनीति से जुडकर भी सामने आई है। यो यह आज भी विवाद का विषय है कि कविता मे राजनीति किस सीमा तक आ सकती है या नही आ सकती है ? मैं सोचता हूँ कि यदि राजनीति का अर्थ मात्र किसी पार्टी से जुडा है तो वह कविता के काम की चीज नही हो सकती है क्योकि ऐसी स्थिति मे गडबड की सभावना अधिक है। इसके विपरीत यदि राजनीति से तात्पर्य यह लिया जाय कि सर्जक तो सामाजिक जीवन का चितेरा होता है तो राजनीतिक सदर्भो का किसी कविता मे आ जाना बुरा नही है। कवि 'काशस आर्टिस्ट' होता है। अत वह अपने परिवेश के प्रति भी 'काशस' रहता है। इस 'काशसनैस' मे यदि उसकी निगाह राजनीति के घिनौनेपन और दुरगे रूप की ओर जाती है तो इसे *कवि की ईमानदारी* ही *कहना चाहिए। नयी कविता मे राजनीति की* स्थिति ऐसी ही है। वह किसी विशेष पार्टी के प्रति प्रतिबद्धता मात्र नही है। ठीक भी है जिस दिन लेखक पार्टी का सदस्य बन जाता है, उसी दिन उसका लेखक मर जाता है। वर्तमान राजनीति ने देश को कहाँ ला पटका है ? यह सर्वेश्वर की इन पक्तियो से ज्ञात हो सकता है "सुनो ढोल की लय / धीमी होती जा रही है / धीरे-धीरे एक क्राति-यात्रा / शव-यात्रा मे बदल रही है / सडाँध फैली रही है नक्शे पर देश के / और आँखो मे प्यार के सीमात धुँधले पडते जा रहे हैं / और हम चूहो से देख रहे हैं" / आज राजनीति मानव समाज को फुटबाल बनाकर जो खेल खेल रही है उससे मानवता के आगे दर्जनो प्रश्न चिन्ह लग गये है। इसका तीखा शब्दाकन श्रीकात वर्मा की इन पक्तियो मे देखा जा सकता है : "यूरोप / बड-बडा रहा है बुखार मे / अमरीका पूरी तरह भटक चुका है अधकार मे / एशिया पर बोझ है / गोरे इन्सान का / सभव नही है/ कविता मे वह सब कह पाना/ जो घटा है/ बीसवी शताब्दी के मनुष्य के साथ/ काँपते है हाथ" / इस तरह के चित्र नयी कविता मे और भी मिलते हैं। ऐसा नही है कि नया कवि चीन, पाकिस्तान, बगला देश, *वियतनाम*, अमरीका, रूस, भारत और ईरान के सम्बन्धो, राजनैतिक चालो को समझता नही है। वह सब कुछ जानता है, परन्तु फिर भी वह उतना ही ग्रहण करता है जिससे कविता का स्वास्थ्य विकृत न हो। असल मे *नयी कविता राजनीति के पार्टी वाले रूप* से अलग है। यही वजह है कि उस पर इस सदर्भ से कोई आरोप नही लगाया गया है।

13 परिवर्तन किसी का भी सगा नही होता है। वह किसी भी स्थिति को यथावत् नही रहने देता है। यही कारण है कि स्वातत्र्योत्तर वर्षो मे काफी कुछ बदला

है। मानव मूल्यो का नये सदर्भो मे विकास हुआ है। जीने का अटूट मोह, प्राचीन मर्यादाओ के ध्वस पर नयी प्रस्थापनाएँ, मुक्ति के लिए छटपटाहट भरा आग्रह, मानव -स्वाभिमान, स्वातत्र्य बोध, प्रत्येक प्रस्थापित सत्य को बुद्धि द्वारा परीक्षित और पुनर्परीक्षित करने की भावना एव अस्तित्व के प्रति सचेतन दृष्टि आदि ऐसे ही मानव मूल्य हैं जो आजादी के बाद के भारत मे विकसित हुए है। स्त्री पुरुष के सम्बन्धो मे भी पर्याप्त अन्तर आया है। इस अन्तर को डा०जगदीश गुप्त के काव्य -सग्रह 'युग्म' मे देखा जा सकता। स्त्री-पुरुष का पूर्ण साहचर्य 'युग्मता' के रूप मे ही होता है। आज के युग की यही माँग है। किरण जैन की ये पक्तियाँ गौर तलब हैं 'सभोग के बाद / विस्तर से उतर कर/मैं केवल एक सज्ञा हूँ / जिसमे दो चार विशेषण जुडे हैं / कुछ क्रियाएँ लगी हैं / मैं अनेक बच्चो मे एक दो की माँ हूँ / सब औरतो जैसी एक औरत हूँ / एक जीवित कुठा हूँ /' कहने का तात्पर्य यही है कि नारी और पुरुष के सम्बधो से जुडे मूल्यो म काफी परिवर्तन आया है, आ रहा है और इस सबको नयी कविता मे वाणी दी गई है। वस्तुत नयी कविता का कवि नारी को दोस्ती के स्तर पर देखता है, उससे पुरुष के जो रिश्ते सभव हैं वे तो बाद की चीजें हैं। नयी कविता म जो जीवन मूल्य विकसित हुए हैं उनमे जिजीविषा—जीने की उदग्र कामना का स्थान पहले है। नयी कविता मे इन्हे भली भाँति देखा जा सकता है। 'कुँवरनारायण' की 'कुछ नही वाली पहेली' म जीवन को मुक्त भाव से जीने और जिजीविषा को हो मूल्य मानने का भाव दिखाई देता है। वे कहते हैं—

"अभी तो जूझ लेने का प्रलोभन
शून्य से भी जूझ लेने का नियोजन
फिर कभी क्या मिल सकेगा जिन्दगी मे
जिन्दगी से भी बडा कुछ"।

नियति और 'सुपर मैन' के इच्छा इगितो पर चलने वाला मानव आज सभी बधनों को ताडकर मुक्ति का आग्रही हो उठा है। अज्ञेय की पश्चिम के जन-समूह' और केदारनाथ सिंह की 'माटी को हक दो, कविताओ मे यही मुक्ति-कामना प्रतिबिम्बित हुई है 'एक गति जो विवश चलती है, इसलिए कुछ करन नही देती, स्वतत्रता के नाम पर मारते हैं मरते" (अज्ञेय) मे मुक्ति की ओर ही सकेत है। केदारनाथ सिंह न तो 'मुक्ति को ही मानव का प्राथमिक और सर्वोपरि हक माना है। नयी कविता मानव-स्वाभिमान की रक्षा करते हुए मानव अनुभूतियो को उनके परिवेश मे चित्रित करती है। 'आत्मजयी' का 'नचिकेता' इसका उदाहरण है जो जीवन का विरोध नही करता है, अपितु उस विचारणा का विरोधी है जो जीवन का सकीर्ण परिधि मे बाँध देती है। इसी क्रम मे 'सशय की एक रात' के 'राम' भी स्वाभिमान की रक्षा और सामूहिकता के लिए युद्ध की स्वीकृति देत हैं

"अनत सूर्यो को एक सभावना की तरह

घटित हो जाने दो
अपने पाथरत्व मे
सभव है ! ओ शिला !!
यह घटना हो सूर्यत्व दे जाय"।

इसी प्रसग मे यह भी उल्लेखनीय है कि नयी कविता ने मानव-विशिष्टता को एक महत्वपूर्ण मूल्य स्वीकार किया है। नये कवियो की दृष्टि मे प्रत्येक व्यक्ति विशिष्ट है, वह भीड मात्र नही है। भीड म रहकर भी वह अपनी पहचान लिये हुए है। 'सशय की एक रात' के राम सृष्टि के विनाश को बचाने के साथ-साथ मानव के भीतरी विशिष्ट सत्य को भी बचाने की बात कहते हैं। मानव-विशिष्टता के पक्षधर राम का यह कथन देखिये

"मैं सत्य चाहता हूँ
युद्ध से नही, खड्ग से भी नहीं
मानव का मानव से सत्य चाहता हूँ।
मैं युद्ध को बचाना चाहता रहा हूँ बधु !
मानव मे श्रेष्ठ जो विराजा है
उसको ही
हाँ उसको ही जगाना चाहता रहा हूँ।

'आत्मजयी' का नचिकेता भी मानव विशिष्टता को जीवन की अनिवार्यता मानता है, तभी तो वह यह कह पाया है

"केवल भौतिक शर्तों पर ही
जीवन कोई सान्त्वना नही।
वह जीना मरने से बदतर
जिसमे कोई वैशिष्ट्य नहीं-कल्पना नहीं।"

इस प्रकार स्पष्ट है कि नयी कविता मे नय मानव-मूल्यो का विकास हुआ है और प्राय प्रत्येक प्रमुख कवि ने इस ओर अपना ध्यान केन्द्रित किया है। इसी से नवमूल्य प्रस्थापन नयी कविता की एक विशिष्ट प्रवृत्ति के रूप मे उभरा है।

14 नये मूल्यो की स्थापना मे वैज्ञानिक चेतना का बहुत बडा हाथ है। अत वैज्ञानिक चेतना अर्थात् बौद्धिकता के वरण के कारण नयी कविता मे कतिपय अन्य प्रवृत्तियों का विकास भी हुआ है। इन्ही प्रवृत्तियो और वैज्ञानिक चेतना के कारण नयी कविता म बार-बार वैषम्य, विरोध, विवशता और अनिश्चितता का चित्रण हुआ है। यहाँ धार्मिकता और नैतिकता के प्रति भी प्रश्निल और शकित दृष्टि मिलती है। ईश्वर और धर्म के प्रति विकसित दृष्टि के पीछे भी वैज्ञानिक चेतना का ही हाथ है। यो अस्तित्ववादी दर्शन भी इसमे आकर मिल गया है। फलत मनुष्य आज पूर्वाग्रहो से मुक्त हो रहा है और विवेक के सहारे नये निर्णयो के दौर से गुजर रहा है। विज्ञान ने मानव-दृष्टि को विवेक; असंतृप्ति, विलक्षणता और 'एक्यूरेसी'

स जोड दिया है। विवेक और तत्प्रेरित परीक्षण सिद्ध तथ्यो की स्वीकृति से सांस्कृतिक चिन्तना बदली है तथा अन्ध आस्था, परपरा और लीक पीटने की प्रवृत्ति का ह्रास हुआ है। आज परीक्षण के बिना ईश्वर कहाँ ? मृत्यु कहाँ और धर्म क्यो ? जैसे प्रश्न उठ खडे हुए हैं। ईश्वर विषयक मान्यताओ म परिवर्तन हुआ है। वह विस्मरण बनकर रह गया है। इसी आधार पर धर्म के आगे भी अनेक प्रश्नचिन्ह हैं। नयी कविता के कवियो की दृष्टि मे पूजा पराजय का विनत स्वीकार है। अत वे मनुष्य के पुजारी हैं, उसकी लघुता के प्रति भी आस्थावान हैं। पूजन से मन का भ्रम बढता है। मूर्ति को सर्वशक्तिमान मान लने पर व्यक्ति की आस्था, शक्ति और प्रभुता प्रभु का समर्पित हो जाती है। परिणामत मनुष्य व्यक्तित्वहीनता का अनुभव करने लगता है। भारतभूषण की ये पक्तियाँ देखिये

> "पत्थर न घटता है न बढ़ता है रचमात्र
> मूर्ति बडी होती जा रही थी
> क्योंकि वे स्वय छोटे होते जाते थे
> भूलकर एक बडा सत्य यह"

परिवर्तित परिस्थितियो मे वैज्ञानिक चेतना के फलस्वरूप धर्म, ईश्वर सस्कृति और दर्शन म कितना फेर बदल हुआ है, इसे आज के कवि के प्रश्नाकुल मानस मे उठने वाला यह द्वन्द्व स्पष्ट कर सकता है

> जीवन क्या है ?
> मृत्यु क्यों ?
> मुक्ति कैसे ?
> ईश्वर कहाँ ?

यह वैज्ञानिक चेतना का ही परिणाम है कि मानव अस्तित्व की प्रस्थापना और महत्ता का अज्ञेय जैसे कवि ने भी यह कहकर स्वीकार किया है 'केवल बना रहे विस्तार–हमारा बाध/मुक्ति का–सीमाहीन खुलेपन का"/प्रस्थापित धारणाओ, मर्यादाओ और विश्वासो के प्रति नयी कविता में असतृप्ति का जो बाध उभरा है, वह कथ्य और शिल्प दोनो मे है। शिल्प के धरातल पर आई नियतभाषिता और मितभाषिता भी वैज्ञानिक चेतना का ही परिणाम है।

15 नयी कविता की विस्तृति परिधि मे जहाँ बौद्धिकता और यथार्थ-वृत्ति के कारण जीवन को उसकी समग्रता मे देखा गया है वही उसम भावुकता भी कम नही है। भावुकता छायावाद की देन है जरूर, किन्तु नयी कविता ने उसम कतिपय नये सूत्र भी जोडे हैं। फलत सौन्दर्य, प्रेम और नारी के प्रति भी नया दृष्टिकोण विकसित हुआ है। इसे नयी कविता के सौन्दर्य बोध में देखा जा सकता है। यहाँ पर प्रेम काम से युक्त है। हाँ कही-कही प्रेम का उदात्तरूप भी मिलता है, किन्तु उस उदात्तता तक पहुँचने के लिए 'तन के रिश्ते' को झुठलाया नहीं गया है। भारती की कविताएं

इसकी गवाही दे सकती हैं। इस धारा के कवियों की मान्यता है कि नर-नारी के बीच जो आकर्षण का तार है वह शरीर के सुन्दर तन्तुओं से जुड़ा हुआ है। वास्तव में नयी कविता उस सौन्दर्य की पक्षपातिनी है जो शरीर को तुष्टि भी देता है और मन को सतोष भी। 'कनुप्रिया' की ये पक्तियाँ देखिये

"मैंने तुम्हें कसकर जकड लिया है
और जकडती जा रही हूँ
और निकट और निकट
और तुम्हारे कधों पर बाँहों पर होठों पर
नागवधू की शुभ्रदन्त पक्तियों के नीले-नीले चिह्न उभर आये हैं।"

असल बात यह है कि नया कवि रूपासक्ति को पाप नही मानता है। कुँवरनारायण की यह पक्ति कि "रूप-सागर कब किसी की चाह से मैले हुए हैं" इसी तथ्य को प्रमाणित करती है। कतिपय ऐसी कविताएँ भी लिखी गई हैं जिनमे प्रेम का और रूप का उदात्तीकृत सदर्भ भी मिलता है। तन का रिश्ता जब मन का रिश्ता बन जाता है तब प्रणयानुभूति मे विवेक और तज्जनित परिष्कार भी आ मिलता है। परिणाम स्वरूप पीडा परिशोधित हो जाती है और वासना के शिखर एक शुभ्र पावनता स भर उठते है। यही नयी कविता की सौन्दर्य चेतना का नया धरातल है जहाँ आकर अज्ञेय यह लिखते हैं

"देह वल्ली
रूप को
एकबार बेझिझक देखलो
पिंजरा है पर मन इसी मे से उपजा है
जिसकी उद्योत शक्ति आत्मा है।।"

वस्तुत प्रणय के क्षेत्र मे नयी कविता सौन्दर्य व प्रेम के यथार्थ पक्ष को ही उद्घाटित करती है। इसमे न तो अनावश्यक रूप से प्रणय को इतना दिव्य बनाया गया है कि वह अविश्वसनीय हो जाये और न इतना गर्हित और वासनाकुल कि प्रेम अव्यावहारिक हो उठे। एक सहज प्रक्रिया मे बँधा प्रेम तन से मन तक और मन से तन तक यात्रित होता दिखाई देता है। इस यात्रा मे सौन्दर्य, आकर्षण, आसक्ति और अनासक्ति के सभी कगारो को स्पर्श करता दिखाया गया है। अज्ञेय सर्वेश्वर, गिरिजाकुमार की कविताएँ इसी भूमिका पर लिखी गई है। 'तन के रिश्ते' के कायल भारती ने भी विवेक और सहज मानवीय भावो की भूमिका पर आकर यह लिखा है कि गाढी तन्मयता के क्षणो मे भी मन म कई प्रश्न चिन्ह उभर आते है। वे कहते हैं

"चुम्बन आलिंगन का जादू
मन को जैसे ऊपर ही ऊपर से छूकर रह जाता है
अ दर जहरीले अजगर जैसे प्रश्नचिह्न

एक-एक पसली को जकड़-जकड लेते हैं
फिर भी वे काबू तन
इन पिघले फूलों की रसवन्ती आग बिना
चैन नहीं पाता है।"

16 नयी कविता मे जो सौन्दर्य चेतना विकसित हुई है उसमें प्रकृति और नारी ने भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। नयी कविता में चित्रित प्रकृति की अनेक विशेषताएँ हैं। कुछ तो ऐसी हैं जो समकालीन परिवेश की जटिलता के कारण मानव मन को विमुग्ध और विमोहित कम करती है, सोचने-विचारने को प्रेरित अधिक करती हैं। इसके विपरीत कुछ विशेषताएँ ऐसी हैं जिनमें प्रकृति की विविध छवियों का रूपांकन अधिक किया गया है। 'हिमविद्ध' नयी कविता का प्रकृति काव्य है। जगदीशजी के पास भावुक की कल्पना और चित्रकार का शिल्प है और इन दोनों के योग से बने बिम्ब न केवल उल्लेख्य हैं अपितु रेखांकित करने योग्य हैं। 'हिमविद्ध' की कविताओं में हिमानी प्रकृति की आँखों देखी टटकी छवियों की अनुभूतिपरक प्रतीतियों के शब्द बिम्ब हैं। ये बिम्ब प्रकृति की अनाघ्रात छवियों, अस्पृत पावनता और अचुम्बित सौन्दर्य-संवेदना को उजागर करते हुए कवि के सांस्कृतिक बोध को भी अभिव्यक्त करते हैं। कवि जब कहता है कि "दूध के अधउगे दाँत-सी/ कोर हिमशृंग की/ फूटी फिर/ उस सलेटी बादल की ओट से/' 'जाने कब बादल की सीप ने/ नभ के उस अँधियारे कोने तक/ मोती सी चाँदनी उलीच दी/' शिखरों पर टिके/ स्याह बादल की परछाई/ आँखों मे काजल सा पार गई" तो उसकी प्रकृति-संवेदना के बिम्ब पाठकीय संवेदना में उतर जाते हैं। जगदीश गुप्त की प्रकृति न केवल क्रियाशील है, अपितु कवि-मानस मे जन्मे भावों की धारिका भी है-संवाहिक भी है। 'प्रकृति रमणीक है' कविता मे प्रकृति के तीन रूप तो साफ हैं ही और भी अनेक रूप संकेतित लगते हैं। प्रकृति को 'दूध भरी वत्सलता से भीगी आंचल पसारती माता, स्निग्ध-रश्मि राखी के बंधन से बाँधती निर्मल सहोदरा व बाँहों की वल्लरि से तन तक को रोम-रोम कसती प्रणयिनी कहकर अंत मे उसे शांत देव-प्रतिमा कहा गया है। ध्यान रहे कि नयी कविता की प्रकृति-परक छवियों में नगरीय, ग्रामीण और आंचलिक सभी तरह का परिवेश प्रस्तुत किया गया है। लोक-संपृक्ति के कारण नयी कविता का प्रकृतिपक्ष अधिक प्रभावी और आकर्षक है। प्रकृति की विविध छवियों के अंकन मे जगदीश गुप्त, शमशेर, अज्ञेय, नरेश की कविताओं का *विशेष महत्व* है। उदाहरणार्थ :

1 'प्रात नभ था बहुत नीला शंख जैसे
भोर का नभ
राख से लीपा हुआ चौका
अभी गीला पड़ा है ।।"

[शमशेर]

इसकी गवाही दे सकती हैं। इस धारा के कवियों की मान्यता है कि नर-नारी के बीच जो आकर्षण का तार है वह शरीर के सुन्दर तन्तुओं से जुड़ा हुआ है। वास्तव में नयी कविता उस सौन्दर्य की पक्षपातिनी है जो शरीर को तुष्टि भी देता है और मन को संतोष भी। 'कनुप्रिया' की ये पंक्तियाँ देखिये .

"मैंने तुम्हें कसकर जकड़ लिया है
और जकड़ती जा रही हूँ
और निकट और निकट
और तुम्हारे कंधों पर बाँहों पर होठों पर
नागवधू की शुभ्रदन्त पंक्तियों के नीले-नीले चिह्न उभर आये हैं।"

असल बात यह है कि नया कवि रूपासक्ति को पाप नहीं मानता है। कुँवरनारायण की यह पंक्ति कि "रूप-सागर कब किसी की चाह में मैले हुए हैं" इसी तथ्य को प्रमाणित करती है। कतिपय ऐसी कविताएँ भी लिखी गई हैं जिनमें प्रेम का और रूप का उदात्तीकृत सदर्भ भी मिलता है। तन का रिश्ता जब मन का रिश्ता बन जाता है तब प्रणयानुभूति में विवेक और तज्जनित परिष्कार भी आ मिलता है। परिणाम स्वरूप पीड़ा परिशोधित हो जाती है और वासना के शिखर एक शुभ्र पावनता से भर उठते हैं। यही नयी कविता की सौन्दर्य चेतना का नया धरातल है जहाँ आकर अज्ञेय यह लिखते हैं

"देह वल्ली
रूप को
एकबार बेझिझक देखलो
पिंजरा है पर मन इसी में से उपजा है
जिसकी उद्दीप्त शक्ति आत्मा है।।"

वस्तुतः प्रणय के क्षेत्र में नयी कविता सौन्दर्य व प्रेम के यथार्थ पक्ष को ही उद्घाटित करती है। इसमें न तो अनावश्यक रूप से प्रणय को इतना दिव्य बनाया गया है कि वह अविश्वसनीय हो जाये और न इतना गर्हित और वासनाकुल कि प्रेम अव्यावहारिक हो उठे। एक सहज प्रक्रिया में बँधा प्रेम तन से मन तक और मन से तन तक यात्रित होता दिखाई देता है। इस यात्रा में सौन्दर्य, आकर्षण आसक्ति और अनासक्ति के सभी कगारों को स्पर्श करता दिखाया गया है। अज्ञेय सर्वेश्वर, गिरिजाकुमार की कविताएँ इसी भूमिका पर लिखी गई हैं। 'तन के रिश्ते' के कायल भारती ने भी विवेक और सहज मानवीय भावों की भूमिका पर आकर यह लिखा है कि गाढ़ी तन्मयता के क्षणों में भी मन में कई प्रश्न चिन्ह उभर आते हैं। वे कहते हैं .

"चुम्बन आलिंगन का जादू
मन को जैसे ऊपर ही ऊपर से छूकर रह जाता है
अन्दर जहरीले अजगर जैसे प्रश्नचिह्न

एक-एक पसली को जकड़-जकड़ लेते हैं
फिर भी वे काबू तन
इन पिघले फूलों की रसवन्ती आग बिना
चैन नहीं पाता है ।"

16 नयी कविता मे जो सौन्दर्य चेतना विकसित हुई है उसमे प्रकृति और नारी ने भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। नयी कविता म चित्रित प्रकृति की अनेक विशेषताएं हैं। कुछ तो ऐसी हैं जो समकालीन परिवेश की जटिलता के कारण मानव मन को विमुग्ध और विमोहित कम करती है, सोचने-विचारने को प्रेरित अधिक करती हैं। इसके विपरीत कुछ विशेषताएं ऐसी हैं जिनमे प्रकृति की विविध छवियो का रूपाकन अधिक किया गया है। 'हिमविद्ध' नयी कविता का प्रकृति काव्य है। जगदीशजी के पास भावुक की कल्पना और चित्रकार का शिल्प है और इन दोनो के योग से बने बिम्ब न केवल उल्लेख्य हैं अपितु रेखांकित करने योग्य हैं। 'हिमविद्ध' की कविताओं मे हिमानी प्रकृति की आंखो देखी टटकी छवियो की अनुभूतिपरक प्रतीतियो के शब्द बिम्ब है। ये बिम्ब प्रकृति की अनाघ्रात छवियो, मंत्र-पूत पावनता और अचुम्बित सौन्दर्य-सवेदना को उजागर करते हुए कवि के सास्कृतिक बोध को भी अभिव्यक्त करते हैं। कवि जब कहता है कि "दूध के अधउगे दाँत-सी/ कोर हिमशृ ग की/ फूटी फिर/ उस सलेटी बादल की ओट से/""जाने कब बादल की सीप ने/ नभ के उस अंधियारे कोने तक/ मोती सी चाँदनी उलीच दी/' शिखरो पर टिके/ स्याह बादल की परछाईं/ आंखो मे काजल सा पार गई" तो उसकी प्रकृति-सवेदना के बिम्ब पाठकीय सवेदना मे उतर जाते हैं। जगदीश गुप्त की प्रकृति न केवल त्रियाशील है, अपितु कवि-मानस मे जन्मे भावो की धारिका भी है—सवाहिक भी है। 'प्रकृति रमणीक है' कविता मे प्रकृति के तीन रूप तो साफ हैं ही और भी अनेक रूप सकेतित लगते हैं। प्रकृति को 'दूध भरी वत्सलता से भीगी आचल पसारती माता; स्निग्ध-रश्मि राखी के बधन से बाँधती निर्मल सहेदरा व बाँहों की वल्लरि से तन तरु को रोम-रोम कसती प्रणयिनी कहकर अ त मे उसे शात देव-प्रतिमा कहा गया है। ध्यान रहे कि नयी कविता की प्रकृति-परक छवियों में नगरीय, ग्रामीण और आचलिक सभी तरह का परिवेश प्रस्तुत किया गया है। लोक-सपृक्ति के कारण नयी कविता का प्रकृतिपक्ष अधिक प्रभावी और आकर्षक है। प्रकृति की विविध छवियों के अ कन मे जगदीश गुप्त, शमशेर, अज्ञेय, नरेश की कविताओं का विशेष महत्व है। उदाहरणार्थ :

1 "प्रात नभ था बहुत नीला शंख जैसे
भोर का नभ
राख से लीपा हुआ चौका
अभी गीला पड़ा है ।।"

[शमशेर]

2 "बादलों की झील के ऊपर
खिला शिखरों का कमल-वन
भोर ने भर मूठ कुकुम-किरन-केसर
इस तरह फेंकी—
वनों के गहन पुरइन पात सारे रंग उठे।"

[जगदीश गुप्त]

प्रकृति-वर्णन गत नवीनता वहाँ देखी जा सकती है जहाँ कवि शहर की भीड़-भाड़ से निकलकर बाहर आ मुक्ति की साँस लेता है और कवि व्यापक प्रकृति के अभाव मे लॉन या आँगन मे लगी फूल-पत्तियो, गमलो के गुलाब या दो चार गज जमीन के टुकडे मे बिखरी प्राकृतिक सुषमा के खण्ड चित्र प्रस्तुत करता है। शमशेर और नरेश इस क्षेत्र म अग्रणी हैं। इतने पर भी यह सच है कि नयी कविता की प्रकृति आकृष्ट कम और सोचने को अधिक बाध्य करती है। युग की यथार्थता का जादू चढते ही प्रकृति की सारी रूमानियत हवा हो गई है। भारती का कवि यदि अनुभव करता है कि "साँ होते ही हसो सी दोपहर अपने पख फैलाकर नीले कोहरे का झीलो म उड जायगी फिर तिल तिलकर पकने के अनिश्चित और चारा भी क्या है" तो अज्ञेय का कवि यह लिखता है

"पार्श्वगिरि का नम्र चीड़ों में
डगर चढती उमगों सी
बिछी पैरो मे नदी ज्यों दर्द की रेखा
विहग-शिशु मौन नीड़ों मे
मैंने आँख भर देखा।"

'बावरा अहेरी' की कविताओ मे भी प्रकृति के साथ युग व्यापी विषम स्थितियो के प्रति व्यग्य दिखाई देता है। चैत की बहकी हवाओ के चित्रण मे कवि हवाओ की मस्ती और खेतो की फसल का बिम्ब देकर महाजन के ऊपर व्यग्य करता है।

नयी कविता के प्रकृति परक दृष्टिकोण मे एक नवीनता आचलिकता को लेकर है। आचलिक प्रकृति को व्यक्त करने वाली कविताओ में स्वप्निल वातावरण की गहराई प्रभावित करती है। केदारनाथसिंह के लोक गीतो की धुन पर सजी कविताओ की प्रकृति मे "टहनी के टेसू पतरा गये, पखडी को पात नये आ गय", 'धान उगेंगे, प्रान उगेंगे', 'रात पिया पिछवारे पहरू ठनका किया" आदि का समावेश बडी मधुर-व्यजना के साथ हुआ है। भवानी मिश्र की "पीके फूटे आज प्यार के पानी बरसा री', केदार अग्रवाल की 'धीरे उठाओ मेरी पालकी', भारती की घाट के रास्ते', 'बोवाई के गीत, और सर्वेश्वर की 'सावन के गीत, 'बनजारे का गीत' और "आँधी पानी आया' आदि कविताओ मे प्रकृति की यही विशेषता मिलती है। नयी कविता के लोक-जीवन सपृक्त प्रकृति चित्रो मे शब्द, लय और दृश्यो की तो रक्षा की

ही गई है, लोक जीवन भी अपने असली रंग-रोगन के साथ आ गया है

> "नीम की निबौली पक्की, सावन की ऋतु आई रे
> सर सर सर-सर बहत बयरिया
> उडि-उडि जात चुनरिया रे
> खन-खन खन-खन चुरियाँ बोलें
> रिमझिम-रिमझिम पानी रे ।।" [सर्वेश्वर]

17 नयी कविता मे जो नारी चित्रित हुई है वह मध्यवर्गीय नारी है । यो कतिपय आदर्श हिन्दू नारियो के चित्र भी देखने को मिलते है, किन्तु सर्वत्र नारी का बौद्धिक, स्वतत्र और जागरूक व्यक्तित्व ही विश्लेपित हुआ है । अत नयी कविता मे चित्रित नारी भावना के आधार पर यही प्रवृत्ति उभर कर सामने आती है कि विवेकशीलता, जागृति समानाधिकार भावना और पुरुष के प्रति किये गय समर्पण के बावजूद उसमे तन मन की तुष्टि की प्रवृत्ति हैं । अपने आधुनिक रूप म नारी समर्पित भी है, लुटती भी है, किन्तु पुरुष को लूट लेना भी चाहती हैं । जहाँ कही आदर्श नारी है वहाँ भी वह अपने प्रति सजग हैं । उसकी यह जागरूकता और विवेक वृत्ति उसके स्वभाव और आचरण दोनो से प्रमाणित होती हैं । उसम गहरी जिजीविषा है । वह प्रेम रस पीने-पिलाने को भी आतुर रहती हैं तो फरेब खाने और खिलाने को भी । यही कारण है कि वह यह कहती है .

> ' रोज-रोज के प्रशासकीय पचडो को बरत देना
> क्या जिन्दगी की बरबादी नहीं है ।" [डॉ० देवराज]

इतना ही नहीं जो नारी सर्वेश्वर के यहाँ 'सुहागिन का गीत' गाती हैं; धर्मवीर भारती के यहाँ जो 'पूजा सा सरल निष्काम' रूप और भाव लिये हुए हैं वही जीवन की यथार्थता के प्रवाह मे पड कर जीवन की सहज स्थितियो को सकारती दिखाई देती है .

> ' आज हम दोनों को जाने की जल्दी है
> तुम्हारा बच्चा भूखा होगा
> और मेरी सिगरेटें खतम हो चुकी हैं ।"

कहने का तात्पर्य यह है कि नयी कविता मे नारी तन मन और बुद्धि की त्रिवेणी मे स्नान करती हुई आनद, भोग, विवेक और यथार्थ की ठोस जमीन पर खडी है । वह मुख्यत भोग्या है, मोहिनी है, आदर्श से परे यथार्थ की प्रतिकृति है ।

शैल्पिक प्रवृत्तियाँ

नयी कविता जहाँ एक और कथ्य और विषयो की विविधता व ताजगी लेकर आई है, वही उसमे तदनुकूल शिल्प भी विकसित हुआ है । भाषा, अप्रस्तुत, प्रतीक, बिम्ब और छद आदि सभी क्षेत्रों मे नयी कविता की शैल्पिक प्रवृत्तियो को देखा जा सकता है । ये प्रवृत्तियाँ उसके अभिव्यजना शिल्प की विशेष उपलब्धियाँ भी हैं और कमियाँ भी हैं । कमियाँ इसलिए कि कतिपय प्रयोग मन को बाँधते कम भटकाते अधिक हैं ।

भाषा

1 *नयी कविता की शैलिक प्रवृत्तियों में पहला स्थान भाषा का है।* नयी कविता की भाषा के सम्बन्ध से कहा जा सकता है कि भाषा में प्रयुक्त शब्द जन-जीवन के निकट हैं, किन्तु कई बार वे जटिल अनुभूतियों के हाथों में पड़कर अपना रूप बदल लेते हैं। कवि उन्हें जानबूझकर नहीं मोड़ता है। नयी कविता में पिष्टपेषित शब्दों का यथासंभव बहिष्कार किया गया है। कारण; इन कवियों की धारणा ही यह है कि जो शब्द बूढ़ा हो गया है, जिसकी उम्र या आगव चुक गया है, उसे नये अर्थ से भरकर या उसका नया संस्कार करके प्रयोग में लेना चाहिए। इसी से नये कवि ने साधारण शब्दों में अधिक गहरा और व्यापक अर्थ भरा है। इसके साथ ही अभिव्यक्ति को सक्षम और प्रभावी बनाने के लिए नयी कविता में उपेक्षित शब्दों को भी आदर प्राप्त हुआ है। किसी भी भाषा का चालू शब्द नये कवि की रुचि का समर्थक बन गया है। इस दृष्टि से नयी कविता का शब्द विधान बड़ा डेमोक्रेटिक है। उसमें आई *विभिन्न भाषाओं और बोलियों की शब्दावली में विज्ञान, दर्शन, मनोविज्ञान, गली,* गाँव, कूचे, शहर, फैक्ट्रियाँ और अस्पताली जिन्दगी के शब्द भी स्वत ही आते गये हैं। अंग्रेजी, उर्दू, फारसी, संस्कृत के शब्दों के साथ-साथ कितने ही ग्रामीण शब्द भी अपनी पूरी रंगत के साथ इस कविता में आ गये हैं। शब्द निर्माण की प्रवृत्ति भी नयी कविता की भाषा की अपनी विशेषता है।

2. सामान्यत नयी कविता की भाषा में सरलीकरण की प्रवृत्ति मिलती है क्योंकि नये कवियों का आग्रह इस बात पर रहा है कि शब्द जीवन से लिये जाने चाहिए। सरलीकरण की प्रवृत्ति के कारण नयी कविता में अनेक संस्कृत के शब्दों को सरलीकृत कर लिया गया है। समाश्रित का समासित, प्रतिच्छाया का प्रतिछाया, स्वर्णपर्वी का सोनपर्वी और स्वर्णधूपी का सोनधूपी आदि ऐसे ही सरलीकृत प्रयोग हैं। यों तो इस प्रवृत्ति को सर्वत्र देखा जा सकता है किन्तु अज्ञेय का 'अरी ओ करुणा प्रभामय' और नरेश का 'बोलने दो चीड़' को संग्रहों में तथा मुक्तिबोध की अधिकांश कविताओं में सरलीकरण की प्रवृत्ति अधिक मिलती है। इसके अतिरिक्त निर्मित शब्दों, परिवर्तित शब्दों और मुहावरों के प्रयोग में भी सरलीकरण की प्रवृत्ति मिलती है। वस्तुत नयी कविता जीवन की कविता है। अत उसमें दैनिक जीवन की शब्दावली को काव्य भाषा के स्तर पर लाना और उसे सरल व सहज बनाना स्वाभाविक ही है।

3 बोलचाल की भाषा के पक्षपाती नये कवियों ने यहाँ तक कह डाला है कि 'जिस तरह हम बोलते हैं, उस तरह तू लिख और उसके बाद भी हमसे बड़ा तू दिख।'' वास्तविकता यही है कि काव्य भाषा को जन-भाषा बनकर आना चाहिए। उसमें सामाजिक बनने का गुण होना चाहिए। भाषा यदि समाज से अलग अस्तित्व रखती है तो वह बेमानी और व्यर्थ है। आज का नया कवि भाषा के इसी बोलचाल वाले रूप को अपनाकर चल रहा है। बोलचाल और सरलता लाने की दृष्टि से तद्भव और दैनिक व्यवहार के शब्दों को विशेष स्थान दिया गया है। भाषा की यह

व्यावहारिकता इन पंक्तियों मे देखी जा सकती है :

1 "दो पखुरियाँ
भरी लाल गुलाब की तकती पियासी
पिया से ऊपर भुके उस फूल को।" —अज्ञेय

2 "रिसिती सी यादो का पिरा पिरा उठना" —भारती

3 "लुगडा छापेदार लाल हँसली की चमक बीजुरी
लहँगा स्याह कमर मे पहने स्याम बरन की गूजरी ।।"
गिरिजाकुमार

4 बोलचाल के जिन शब्दो ने भाषा को व्यावहारिक भूमिका पर ला खडा किया है उनमे से कुछ ये हैं तलैया, लहलही, मुरमुरी, मासूम, फनगिती, थोथे, पानीदार, दूब, कलौंस, गेसू, मसूर, सल्मा, मोम, लहक, भौंप, चराना, लीपना, टीसना, भगडैल, ऊँघते, मस्से, थिगलियाँ, सँभवायी, हुमच, लोहू लुहान, कलगी, बाजरे, सौत, मेह, धाम, चकला, पिछलग्गू, ताकना, भींचना, बतियाना और दुबकना आदि। सबसे बडी बात यह है कि ये शब्द बोलचाल के होकर भी असाधारण अर्थ की व्यजना करते चलते हैं। कहीं-कहीं तो इन शब्दो के प्रयोग से कविता मे प्राण आगये हैं। इनमे से अधिकाश शब्द ऐसे हैं जिनमे जीवन का पूरा उल्लास सिमट गया है। ये शब्द अर्थ बोध मे भी बाधक नही बन पाये हैं क्योकि चिरकाल से मानव की चेतना मे थोडे बहुत परिवर्तित रूप मे इनका अस्तित्व सदैव रहा है।

5 नयी कविता की भाषा मे पर्याप्त प्रवाहशीलता है। कवियो ने शब्दो की सादगी से भावो की गुरुता को रूपायित किया है तभी तो पक्तियाँ भाव के साथ-साथ प्रवाह मे बहती चलती हैं जगदीश गुप्त, मुक्तिबोध, अज्ञेय, सर्वेश्वर, भारती भवानीप्रसाद मिश्र और गिरिजाकुमार की काव्य-भाषा मे प्रवाहशीलता का यह गुण सर्वत्र विद्यमान है। सतुलित और सरल शब्दावली के कारण आई प्रवाहशीलता को निम्नाकित पक्तियो मे देखा जा सकता है :

"बह गया वह नीर,
जिसको पर्दो से तुमने छुआ था
कौन जाने
धूप उस दिन की कहाँ है,
जो तुम्हारे कुंतलों मे
गरम फूलो
धुली-धोली लग रही है।"

और भी अनेक उदाहरण हैं जो भाषा की प्रवाहशीलता को स्पष्ट करते हैं। भारती के सात गीत वर्ष; जगदीश गुप्त के हिमविद्ध और मुक्तिबोध की 'अँधेरे मे' कविता मे भी भाषा का यह प्रवाही गुण अनेक गतिशील बिम्बो की सृष्टि मे सहायक हुआ है।

6 नयी कविता की भाषा म प्रेषणीयता का गुण भी गहराई में मिलता है। उसमें प्रयुक्त शब्द-विधान कवि मन की अनुभूतियों को सबिम्ब पाठक तक उसी रूप म मे पहुँचा देता है जिस तरह 'टेलीफोन' का 'रिसीवर' और 'ट्रान्समीटर। गिरिजाकुमार माथुर की वे पंक्तियाँ लीजिए जिनम 'भकाभक', 'पिरालो ताग' और 'बोलते हैं काग' जैसे शब्दो का प्रयोग करके प्रेषणीयता की पूरी-पूरी रक्षा की गई है। छायावादियों ने जहाँ चाँदनी की शुभ्र आभा के लिए कल्पनाओं के अम्बार लगाए वहाँ ये सीधी स्पष्ट और सहज सप्रेषणीय पंक्तियाँ पाठकीय सवेदना का हिस्सा बन जाती हैं

"यह भकाभक रात
चाँदनी उजली कि सुई मे पिरोलो ताग"।

अनुभूतियो की ताजगी और अभिव्यक्ति के बाँकपन के कारण भी प्रेषणीयता आई है। सहजता नयी कविता की भाषा का मुख्य धर्म प्रतीत होता है। इस सदभ म जगदीश गुप्त की 'घाटी' का यह दृश्य देखिये जो अपनी जडता में भी चेतनता के लिए खुली चुनौती है

"सरिता जल मे पैर डालकर
आँखे मूँदे शीश झुकाये
सोच रही है कब से बादल ओढ़े घाटी
कितने तीखे अनुतापों के आघातों को सहते-सहते
जाने कैसे असह दर्द के बाद बन गयी होगी पाथर
इस रसमय धरती की माटी।"

7 भावोपमता और विषयानुवर्तिता भी नयी कविता की भाषा का अनिवार्य गुण है। नये कवियों न पुराने शब्दो का पिष्टपेषण मात्र नही किया है। उन्हें वर्ण्य विषय के वजन से तौलकर और अर्थ के पत्थर पर तराश कर प्रस्तुत किया है "दूध के अधउगे दाँत सी कोर हिमशृ ग की फूटी सिलहटी बादल की ओट से" जैसी विषयानुवर्ती पंक्तियो की नयी कविता म काई कमी नही है।

8 नयी कविता की भाषा मे बिम्बोद्भावन की भी अद्भुत क्षमता है। अधिकाश स्थलो पर तो शब्द ही पूरी तसवीर प्रस्तुत कर गये हैं। दृश्य-सवेदनो से लेकर स्पर्श, घ्राण, नाद, वर्ण और आस्वाद्य सम्वेदना के बिम्बा म भाषा की बिम्बोद्भाविका शक्ति को देखा जा सकता है। भारती की ये पंक्तियाँ देखिये

'बुझी हुई राख, टूटे हुए गीत, डूबे हुए चाँद
रीते हुए पात्र, बीते हुए क्षण सा
मेरा यह जिस्म"

इसी प्रकार बिम्बोद्भाविका भाषा का यह रूप भी देखिये'

"सो रहा है झौंप अँधियाला
नदी की जाँघ पर"

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि नयी कविता की भाषा जन-भाषा है। उसमे किसी भी भाषा और क्षेत्र के शब्द के प्रवेश की मनाही नही है। शब्द-शिल्पन तथा नया और व्यापक अर्थ भरने के प्रयास मे नयी कविता की भाषा मे जहाँ अनेक गुण विकसित हुए है वही उसमे पर्याप्त 'मैनरिज्म' भी आ गया है। यह अच्छी स्थिति नही है, साथ ही अतिरिक्त गद्यात्मकता, अस्पष्टता और प्रतीकात्मकता के कारण भी कही कही भाषा अर्थच्युत होकर निष्प्राण हो गई है। यत्र-तत्र यथार्थ के ताप म तपने और पिघलने से व्याकरण के किनारे भी टूट गये हैं, किन्तु नये कवि की भाषा का रथ काव्य शास्त्र के आदेश पर न रुक कर नैसर्गिक प्रवाह म बढ़ा चला जा रहा है।

अप्रस्तुत विधान :

प्रस्तुत को प्रकाशित करने के लिए नियोजित शब्द-विधान अप्रस्तुत या उपमान कहलाता है। काव्य म उपमान का वैशिष्ट्य सर्वविदित है। किसी भी कवि की सफलता इस बात मे निहित रहती है कि उसने वर्ण्य वस्तु या भाव के लिए कैसी अप्रस्तुत योजना प्रस्तुत की है। उपमान काव्य सौन्दर्य को प्रभावोत्पादक तो बनात ही हैं, कभी-कभी उसे मूर्तता भी प्रदान करते हैं। सच बात तो यह है कि उपमानो की शक्ति काव्य को सहृदयों के अन्तस म बहुत गहरा उतार देती है। उपमानो के अनेक स्रोत हैं और नये कवि अपने कथ्य की सप्रेषणा के लिए सभी सभव स्रोतों से उपमानो का चयन करते दिखाई देते हैं। ठीक भी है नये कवि परपरा के पुजारी नही है, वे ता प्रगति के पथिक है। यो वे परपरा का अनादर न करके यथावसर उसका समादृत करते भी दीख पडते हैं। उन्होंने निर्जीव और बहुप्रयुक्त होने से खोटे सिद्ध हुए उपमाना को त्याग दिया है। साथ ही समय की धुन्ध से दबे और नीरस से लगने वाले कुछ उपमान अनायास ही छूट भी गये हैं।

नयी कविता मे पूर्ववर्ती काव्य म प्रयुक्त उपमानो से पर्याप्त विस्तृति मिलती है। इस काव्यधारा ने स्वच्छद गति से चलकर सभी विषय क्षेत्रो की परिक्रमा की है। इसी कारण इस कविता मे प्रकृति, पुराण, इतिहास, विज्ञान, धर्म राजनीति, मनोविज्ञान, सगीतकला; चित्रकला और दैनिक जीवन के सभी पक्षो से उपमानो का चयन किया गया है। इतना ही क्यो नयी कविता मे मूर्त, अमूर्त दोनो ही प्रकार के उपमानो का भी खुलकर प्रयोग हुआ है। अधिकाश स्थलो पर मूर्तिकरण, मानवीकरण और रूपको के बड़े सफल प्रयोग हुए हैं। कुँवरनारायण (चक्रव्यूह) नरेश मेहता (मेरा समर्पित एकान्त व बोलन दो चीड को, अज्ञेय (बावरा अहेरी, क्योंकि मैं उसे जानता हूँ) जगदीश गुप्त (हिमविद्ध) सर्वेश्वर (काठ की घटियाँ बाँस का पुल, कुआने नदी) गिरिजाकुमार (धूप के धान, शिलापख चमकीले, जो बँध नही सका) और मुक्तिबोध की (चाँद का मुँह टेढा है) कृतियो मे उपमानगत नवीनता के साथ-साथ रूपक व मानवीकरण के सफल प्रयोग देखे जा सकते हैं। उपमानो के चयन मे इन कवियो ने मौलिकता और विश्लेषणात्मक क्षमता का परिचय

देकर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि जीवन का कोई भी पक्ष कवि की कल्पना शक्ति को उर्वरता प्रदान कर सकता है। वस्तुत. जीवन के विविध पक्षों से किया गया सृजन-चयन व्यापक प्रतिभा का परिचायक है। इस वैविध्यपूर्ण दृष्टि से उपमानों में नवीनता, सघता और प्रभविष्णुता का समावेश स्वत ही हो गया है। कतिपय उदाहरणों से ही यह तथ्य स्पष्ट हो सकता है.

1. "आयु भावना की मत्स्यगंधा सी जवान रहे"। [गिरिजाकुमार माथुर]
2 "उदयाचल से किरन-धेनुएँ, हाँक ला रहा वह प्रभात का ग्वाला"। [नरेश मेहता]
3 "उड़ता रहे चिड़ियों सरीखा यह तुम्हारा धवल आँचल" [नरेश मेहता]
4 "स्मृति-शेफाली के फूल झरे" [अज्ञेय]
5. "अमराई मे पीली पूनम दमयंती सी काँप रही है।" [नरेश मेहता]
6 "द्रौपदी सी चीखती हैं नारियाँ निर्वस्त्र" [हरिनारायण व्यास]
7. "यह सरल निष्काम पूजा-सा तुम्हारा रूप" [धर्मवीर भारती]
8. "अर्चना की धूप सी तुम गोद मे लहरा गई" [भारती]
9. "तुम थर्मामीटर के पारे सी, चुपचाप
जिसमें भावनाएँ चढ़ती-उतरती हैं"। [सर्वेश्वर दयाल]
10 "वत्सल छाती सी पहाड़ियाँ, दूध पिलाने आतुरा,
बच्चे सा सूरज सो जाता लेकर मुँहमें आँचरा" [गिरिजा कुमार]
11 "आह सी धूल उड़ रही है
चाह सा काफिला खड़ा है कहीं
और सामान सारा बेतरतीब
दर्द-सा बिन बँधा पड़ा है कहीं" [दुष्यंत कुमार]
12. "मेरा दिल ढिबरी सा टिमटिमा रहा है"। [मुक्तिबोध]

प्रतीक विधान

प्रतीक किसी अदृश्य या अप्रस्तुत के निमित्त प्रस्तुत किये गये प्रत्यक्ष या दृश्य संकेत हैं। काव्य मे प्रतीक प्रयोग से भाषा मे एक नई अर्थवत्ता तथा नवीन शक्ति आ जाती है। आधुनिक कविता की छायावादी और प्रगतिवादी काव्य धाराओं मे प्रतीकों का प्रयोग भिन्नता लिये हुए है। छायावाद ने यदि प्रतीकों को अमूर्त रखा तो प्रगतिवाद ने उन्हें मूर्त रूप दिया। इस प्रकार कविता कल्पना और सौन्दर्य से यथार्थ की ओर बढ़ी है। नयी कविता ने प्रतीकों को अपने पूर्ववर्ती काव्य की सीमाओं से और आगे बढ़ाया है। प्रतीकों के वैविध्यपूर्ण प्रयोग करके अनुभूति को व्यवस्थित और सही व्यंजना देने का

काम नयी कविता द्वारा सम्पन्न हुआ। नयी कविता मे प्रतीक प्रयोग की प्रवृत्ति तथा कथित फ्रेंच प्रतीकवाद से भिन्न है। उसमे यथार्थ की अभिव्यक्ति स्वप्निल नही है और न नये कवि अभिव्यक्ति मे फ्रेंच प्रतीकवादियो की सी अस्पष्टता और रहस्यमयता ही ला रहे हैं। नयी कविता जन मानस के अनेक अछूते पर्तो को खोलकर रख रही है। वह मनोविज्ञान और विज्ञान का सहारा लेकर वस्तु और भाव का उसके सही रंग-रूप म पाठको के समक्ष प्रस्तुत कर रही है। अतः इसके प्रतीक विधान मे वैविध्य और व्यापकता है। पौराणिक और धार्मिक प्रतीकों का प्रचुर, किन्तु सटीक प्रयोग करके नयी कविता यदि परपराप्रियता दिखा रही है तो नये सदर्भों मे प्रतीकार्थ प्रस्तुत करके प्रगति के द्वार भी खोल रही हैं। इतना ही क्यों यौन प्रतीक तथा दैनिक जीवन से गृहीत प्रतीको को अपनाकर नयी कविता अपनी मौलिकता और सद्यता भी कायम किये हुए है। अनेक प्राकृतिक प्रतीको को नव्यार्थ देकर और नये सदर्भो म प्रयोग करके नये कवियो ने अपनी विशिष्टता को सकेतित किया है। इस प्रकार सांस्कृतिक' प्राकृतिक, वैज्ञानिक मनोवैज्ञानिक और रोजमर्रा की जिन्दगी के व्यापक धरातल से लिये गये प्रतीक नयी कविता की उपलब्धियो के इतिहास म अनेक नई कडियाँ जोडते प्रतीत होते हैं।

सास्कृतिक प्रतीक वे हैं जो धर्म, इतिहास, पुराण और साहित्य से सम्बधित हैं। नयी कविता म आये अधिकाश सास्कृतिक प्रतीक 'रामायण' और 'महाभारत' के कथा प्रसगो और पात्रो के आधार पर नियोजित किये गये हैं। चक्रव्यूह, द्रौपदी, चीर-हरण आदि के प्रसग तो प्रतीक रूप में आये ही हैं, अर्जुन, सुभद्रा, सजय, विदुर, कृष्ण, कुन्ती अभिमन्यु, गाधारी भी प्रतीक रूप मे आये हैं जो मन की विविध भावनाओ व स्थितियो के वाहक भी बने हैं और कतिपय विशिष्ट प्रवृत्तियो के सकेतक भी। इसी प्रकार वाणभट्ट, हर्ष, विद्यापति, प्रोमिथियस, सिसिफस और रोमियो आदि भी प्रतीक के दायरे मे आकर समसामयिक अर्थ के वाहक बन गये हैं। 'रथ का पहिया' और अभिमन्यु के प्रतीको के सहारे क्रमश साधनहीन लघु मानव और संघर्परत शोषित मर्दित व्यक्तित्व का प्रतीकार्थ दिया गया है "मैं रथ का टूटा पहिया हूँ/लेकिन मुझे फेंको मत / क्या जाने कब / इस दुरूह चक्रव्यूह मे / अक्षौहिणी सेनाओ को चुनौती देता हुआ / कोई दुस्साहसी अभिमन्यु आकर घिर जाय" / दुष्यत मे भी इस तरह के प्रतीको की बहुतायत है तो लक्ष्मीकात वर्मा भी इस दिशा मे पर्याप्त सक्रिय रहे हैं। धृतराष्ट्र को अविवेकी, अभिमन्यु को भावी पीढी, बनावटी पट्टियो को कुठा और भ्रम व युधिष्ठिर को समय के प्रवाह से कटे निरर्थक व्यक्ति के प्रतीक रूप मे प्रस्तुत किया गया है। रामकथा का 'शभु धनुष' गिरिजाकुमार के यहाँ रूढियों का प्रतीक बनकर आया है। प्राकृतिक प्रतीको मे कुछ तो परपरागत अर्थ के ही वाहक हैं किन्तु अधिकाश नव्यार्थ के भी बोधक है। 'मछली' सत्यानुभूति का; सूर्य प्यार का, सागर चेतना का, कमल आत्मनिष्ठता का, द्वीप व्यक्तिवादी मानव का, चाँदनी सुख-समृद्धि का और 'काई' व्यापकता की प्रतीक बनकर आई है। साँप, बिच्छू कोयल

प्रभावी और नवीन है। उसकी उपलब्धियाँ अमित हैं। उसमे आये छद उर्दू, अंग्रेजी और लोकगीतो से भी प्रभावित हैं। निश्चय ही नयी कविता अपनी शक्ति के बल पर अपने आपको प्रतिष्ठित कर रही है। उसमे सगीत के घुटीलेपन की अपेक्षा काव्य का गाम्भीर्य और प्रौढ़त्व अधिक है। सच तो यह है कि कविता मे विचार पक्ष ज्यो-ज्यो गहरा उतरता गया है त्यो-त्यो तुक, ताल और लय के बधन ढीले पडते गये हैं। इतना होने पर भी नयी कविता मे परपरा का अ श अभी मौजूद है, किन्तु यह वह अ श है जो जीवित कहा जा सकता है।

प्रबंधात्मकता

नयी कविता की एक बडी उपलब्धि के रूप मे प्रबधन को लिया जा सकता है। नये कवियो ने जो प्रबध कृतियाँ प्रस्तुत की हैं वे पारपरिक अर्थ मे प्रबध नही हैं। उनका ढाँचा नाटक और काव्य के सम्मिलित शिल्प से तैयार किया गया है। अत. नयी कविता के प्रबधकाव्यो को नाट्यात्मक शैली के प्रबध या ऐसे प्रबध कहा जा सकता है जो शैली मे नाटकीयता और प्रबधत्व के मेल से अभिनव रूप लेकर आये है। इस प्रकार के सर्जको मे धर्मवीर भारती (अ धायुग और कनुप्रिया) नरेश मेहता (सशय की एक रात, महाप्रस्थान, प्रवाद पर्व और शबरी) कुँवरनारायण (आत्मजयी) दुष्यतकुमार (एक कठ विषपायी) और विनय (एक पुरुष और) के नाम प्रमुख हैं। इन कवियो ने किसी न किसी पौराणिक सदर्भ को लेकर समसामयिक जीवन के कतिपय प्रश्नो को उठाया है। ये वे काव्य हैं जिनमे मूल्यान्वेषण है और है प्राचीन मिथको की समकालिक व्याख्या-विवेचना। कुछ लम्बी कविताएँ भी ऐसी हैं जो *प्रबध का सा आभास देती हैं। ऐसी कविताओ मे अज्ञेय की असाध्य* वीणा, मुक्तिबोध की 'अँधेरे मे', विजयदेवनारायण साही की अलविदा सर्वेश्वर की 'कुआनो नदी, धूमिल की पटकथा, मोचीराम, लीलाधर जगूडी की 'नाटक जारी है', इस व्यवस्था मे और बलदेव खटिक, नरेश मेहता की समय देवता, राजकमल चौधरी की 'मुक्ति प्रसग', रघुवीर सहाय की 'आत्महत्या के विरुद्ध, सौमित्र मोहन की 'लुकमान अली', रामदरश मिश्र की 'फिर वही लोग , रमेश गौड की 'एक मामूली आदमी का बयान' और बलदेव वशी की उपनगर म वापिसी' विशेषोल्लेख्य हैं। नाट्यात्मक प्रबधो का सृजन जहाँ नयी कविता की मूल्यान्वेषी प्रवृत्ति को उजागर करता है, वही इतनी बडी सख्या मे लम्बी कविताओ का सृजन नये कवियो की उस चेतना को रेखाकित करता है जिसके सहारे कवि समकालीन सकट बोध और उससे जुडे अनक प्रश्नो-उपप्रश्नो को उठाते हुए परिवेश के प्रति अपनी साझेदारी प्रकट करते हैं और हरेक बिन्दु पर अपनी उपस्थिति बतलाते हैं। नाट्यात्मक प्रबध सृजन म नरेश का योगदान सर्वाधिक है। प्राय इन सभी प्रबधो मे विद्रोह के आयाम अभिव्यक्त हुए है तथा मिथकीय परिकल्पनाओ के सहारे युगबोध या कहे कि आधुनिक बोध को प्रस्तुत किया गया है।

समाकलन :

नयी कविता की पृष्ठभूमि मे प्रेरणा बनकर आने वाली साहित्यिक, सामाजिक धार्मिक और राजनैतिक परिस्थितियो का विशेष हाथ है । इस कविता को पश्चिमी साहित्य और सस्कृति से भी अप्रभावित नही कहा जा सकता है, किन्तु इसे पश्चिम का अनुकरण भर भी नहीं कहा जा सकता है। स्पष्ट ही इसके मूल मे काम करने वाली परिस्थितियाँ भारतीय है । हाँ, पश्चिमी साहित्य के बिम्बवाद, प्रतीकवाद, अतियथार्थवाद और अस्तित्ववाद आदि ने इसे विकसित होने मे सहयोग अवश्य दिया है । अत केवल सहयोग के आधार पर ही हम इसे ऐसा पौधा नही कह सकते हैं जो पश्चिम से लाकर भारत मे लगाया गया है । इसकी जडो मे भारत का पानी है; यहाँ की मिटटी है । समय समय पर इसे पाश्चात्य साहित्य और सिद्धातो का प्रकाश और एक मात्रा मे खाद अवश्य मिला है, पर कवि को यदि कही से प्रकाश मिलता है तो वह एक सदर्भ भर होता है । वस्तुत नयी कविता का पारपरिक परिपार्श्व है, सास्कृतिक परिप्रेक्ष्य है । हाँ, परपरा के प्रति यदि कही विरोध है तो वह परपरा के निर्जीव अ श के प्रति है । यो नयी कविता परपरा की बँधुआ भी नही है क्योकि उसकी दृष्टि वर्तमान से जुडी है । यदि वह इधर-उधर देखती भी है तो उसकी नजर पीछे की ओर कम और आगे की ओर अधिक है । वस्तुत नयी कविता का कथ्य आज के जीवन का कथ्य है और इसी कारण उसका शिल्प भी हमारे जीवन मे आस पास बिखरे उपकरणो से तैयार किया गया है ।

नयी कविता ने भाषा के क्षेत्र मे जन-साधारण के शब्दो से बनी भाषा को ही इस्तेमाल किया है । इस दृष्टि से नये कवि जनभाषा के सफल प्रयोक्ता कहे जा सकते हैं । इतना ही नही नयी कविता मे अकृत्रिम सौन्दर्य और तत्सम्बन्धित अभिव्यजना कौशल का पूरा वैभव सुरक्षित है । शब्द-निर्माण और अर्थ भरने की प्रक्रिया मे जहाँ-तहाँ व्याकरण की सीमाएँ अगर टूट भी गयी हैं तो यह अस्वाभाविक नही हैं । जब कुछ बनता है तो कुछ टूटता फूटता भी है । फिर नयी कविता की भाषा की टूट-फूट जो कही-कहीं दिखाई देती है, ऐसी नही जो प्रेषणीयता मे बाधक बनकर आई हो । जो लोग नयी कविता की भाषा को वैयक्तिक भाषा कहते हैं, वे यह क्यो भूल जाते हैं कि कोई भी भाषा वैयक्तिक नही होती है । भाषा तो हर स्थिति म सामाजिक वस्तु है । भाषा के अतिरिक्त नये कवियो ने जिन उपमानो और प्रतीको को अपनाया है वे भी नयी कविता की उपलब्धि बने हुए हैं । नये कवियो ने एक ओर तो पुराने उपमानो को खरीद कर आकर्षक बनाया है और दूसरी ओर सास्कृतिक, वैज्ञानिक और दैनिक जीवन के उपकरणो को उपमानत्व प्रदान किया है । निस्सन्देह यदि कुछ वैचित्र्यप्रिय प्रयोगो को छोड दें तो नयी कविता के अधिकाश उपमान धर्म सादृश्य, गुण सादृश्य और रूपसादृश्य की कसौटी पर कचन मे खरे उतरते हैं । प्रतीको का एक परम्परागत परिपार्श्व है तो प्रगतिपरक और प्रयोगमूलक परिप्रेक्ष्य भी है । नयी कविता मे अनेक प्रतीक पुराने हैं तो अनेक ऐसे भी हैं जो नवीनीकृत होकर आए

हैं । नयी कविता मे प्रकृति के अतिरिक्त पुराण, संस्कृति और धर्म की विविध भूमियो से भी प्रतीको का चयन किया गया है। यह पक्ष अभिनन्दनीय है। काम प्रतीको के ग्रहण और प्रयोग के लिए नया कवि फ्रायड जैसे मनोविश्लेषको का ऋणी है। फ्रेंच प्रतीकवाद और फ्रायड आदि मनोविश्लेषण शास्त्रियो का प्रभाव नये कवि पर है अवश्य, किन्तु यह समझना भूल होगी कि वह इनका अनुकरण कर रहा है।

शिल्प के क्षेत्र मे नये कवि का सर्वाधिक ध्यान बिम्ब-निर्माण की ओर लगा रहा है। बिम्ब विधान के क्षेत्र मे नयी कविता अपनी पूर्ववर्ती कविता से अधिक गौरव की अधिकारिणी है। इसमे कोई सन्देह नही है कि नये कवि को बिम्ब-निर्माण के लिए विज्ञान, टैक्नोलॉजी, मानवीय और मानवेतर सभी क्षेत्रो ने मुक्त हृदय से उपहार दिए हैं। नये कवि ने इस उपहार को ग्रहण कर, प्रतिभा मे सँवार कर पाठक तक सही ढग से सम्प्रेषित किया है। प्रगतिवादियो के बिम्ब जहाँ 'पेंटिंग' मात्र हैं, वहाँ नयी कविता के बिम्ब यथार्थ होने के साथ-साथ हृदयस्पर्शी भी बन गए हैं। जहाँ तक छन्द योजना का प्रश्न है, नये कवियो ने परम्परागत और नवीन दोनो ही प्रकार के छन्दो का प्रयोग किया है, हाँ; मुक्त छन्द को नयी कविता ने अपेक्षाकृत अधिक आत्मीयता प्रदान की है। जो भी हो इतना निश्चित है कि नयी कविता मुक्त छन्द मे लिखी जाने पर भी छन्दहीनता का पर्याय नही है। उसका अपना नियम है और अपना ढग है। वस्तुत नयी कविता जीवन की कविता है। उसके अ दरूनी पक्ष की अभिव्यजना है। वैविध्यमय जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति जिस ढग से नयी कविता मे हुई है, वैसी अन्यत्र दुर्लभ है। नया कवि वर्तमान के सकट बोध को सही वाणी दे रहा है। अत मनुष्य जिस सकट और उससे उत्पन्न मन स्थिति मे जीता है, उसकी प्रामाणिक और विश्वसनीय अभिव्यक्ति नयी कविता की महत्तम उपलब्धि है। इसे ही आनुभूतिक ईमानदारी और अभिव्यक्ति की प्रसन्नता कहा जा सकता है। जिन उपेक्षित, अर्धस्वीकृत और जटिल सदर्भों को नयी कविता ने अपने वृत्त मे लिया है वे आज के जीवन का एक बडा हिस्सा हैं। यही वजह है कि नयी कविता के दर्पण मे जीवन के विविध सदर्भों की छवियाँ प्रतिबिम्बित हैं। इनके रग कहीं हरे, कही नीले और लाल हैं तो अधिकाश स्याह हैं।

□

- ☐ अकविता आरोपित स्थितियो का घिनौना शब्दजाल
- ☐ सहज कविता : नयी कविता की पुनर्प्रस्तुति
- ☐ गुट निरपेक्ष और सही समझ के समकालीन कवि

साठोत्तर वर्षों मे कविता तूफानी दौर से गुजरी है। पिछले दो दशकों में प्रतिदिन बढ़ती कवियों की भीड़ कविता की असलियत को भुलाकर नामों का उत्सव मनाती रही है और उत्सव मे चमक-दमक अधिक होती है; असलियत कम। इन नामों को लेकर बराबर यह सोच रहा है कि नामों के शोर मे कविता की फजीहत हुई है। कविता की जीवतता इस बात पर निर्भर करती है कि वह कितना डुबाती है और कितना आस-पास का दर्शन कराती है। जब तक वह अपने परिवेश से खाद-पानी लेकर डुबाती रहती है, तभी तक वह कविता है। जैसे ही वह ऐसा करना बद कर देती है वैसे ही उसे अपने लिए नये नये नामों की जरूरत पड़ने लगती। फिर भी कितने ही ऐसे कवि हैं जो गुटों के सीखचों मे कैद होकर रक्तवापहीन कविताए नहीं लिखते। ऐसे कवियों का अपना ढग है। उसमे बनावट कम है, बुनावट अधिक है। अत जो सही साठोत्तर या समकालीन कविता है, उसमें कल्पित और अद्वितीय की तलाश नहीं की गई है; वरन् जो सामने हो रहा है, उसे रचनात्मक स्तर पर खुलासा करके दिखलाया गया है। इस कविता के साथ साथ चलते हुए हम वर्तमान को देख-सकते हैं और पा सकते है उस परिदृश्य को जिसमे जीते-मरते, लड़ते-झगड़ते, बौखलाते-बिसूरते, तड़पते कसकते और हर ठोकर पर एक जोड़ी दर्द को गांठ बांधते, किन्तु फिर भी जीते आदमी की 'एक्सरे प्लेट्स' हैं।

8 नामों का अंतहीन शोर और गुटों में कैद कविता

नामों का अंतहीन शोर

इन्सानी जिन्दगी का हर पहलू, हर कार्य और हरेक संदर्भ सुविधा की मांग करता है। सुविधा के मामले में कवि की स्थिति कुछ भिन्न होती है, किन्तु यह भिन्नता तभी तक रहती है जब तक कि कवि आलोचनाकर्म से, सफाई देने वाले फार्मूलों से और आत्मरक्षण के उपायों से दूर रहता है। संवेदनशील कवि बौद्धिक दाय लेकर आम आदमी पर निगाहें जमाता हुआ आलोचना की जमीन पर उतरता है तो उसे संतुलित और व्यावहारिक बने रहने की जरूरत महसूस होती है। यह जरूरत ही उसे सुविधा की ओर ले जाती है—उस सुविधा की ओर जिसमें परिस्थिति से जूझने के बाद का तोष है, सुख है और औचित्य भी है। सुख ऐसा जो जूझने के बाद मिलता है और औचित्य वह जो परिस्थितियों के संदर्भ में देखा जा सकता है। यही वह स्थिति है जहाँ पहुँच कर कवि अपनी सफाई देता है और अपनी अलग पहचान के लिए कोई सुविधा ढूँढता है, कोई ऐसा 'लेबिल' तलाशता है जिससे वह छिप जाये, पर 'लेबिल' चमकता रहे और उसके कवि-कर्म को (यदि वह सचमुच है तो) विज्ञापित करता रहे। मेरी धारणा है कि ऐसे कवि जो अपने आपको विज्ञापित करने के लिए किसी न किसी 'लेबिल' का सहारा लेते हैं या किसी गुट म शरीक होकर सृजनरत रहते हैं वे न तो कवि हैं और न उनका लिखा कविता है।

यह सब इसलिए लिख रहा हूँ कि साठोत्तर वर्षों में कविता तूफानी दौर से गुजरी है और इस आन्दोलनात्मक तूफानी प्रवाह में कितने बह गये; कितने ही ढह गये और बहाव के पानी के उतर जाने के बाद सूखे रेत से बचे कितनों का नामलेवा ही कोई नहीं रहा। पिछले दो दशकों में कुकुरमुत्ते की तरह बढ़ती कवियों की भीड़ कविता की असलियत को भुलाकर नामों का उत्सव मनाती रही है और उत्सव में चमक दमक अधिक होती है, प्रदर्शन और शोर-गुल अधिक होता है, असलियत कम। अधिकांश साठोत्तर कवियों ने शोर अधिक किया है, कविता को आन्दोलनों से जोड़कर नाम अधिक उछाले हैं, कविताएँ कम लिखी हैं। हरेक आन्दोलनकर्ता ने अपने अपने नाम को जिस तरह बखाना है, उससे यही लगता रहा है कि ये सभी नाम कविता को मारकर सामने आये हैं। मैं यह नहीं कहता कि साठोत्तर वर्षों में जो कविता लिखी गई है, वह सभी घास-फूस है, पर इतना कहे बिना नहीं रह सकता कि सनातन सूर्योदयी कविता, अभिनव कविता, बीट कविता, युयुत्सावादी कविता;

साठोत्तर वर्षों मे कविता तूफानी दौर से गुजरी है। पिछले दो दशकों में प्रतिदिन बढ़ती कवियों की भीड कविता की असलियत को भुलाकर नामों का उत्सव मनाती रही है और उत्सव मे चमक-दमक अधिक होती है; असलियत कम। इन नामों को लेकर बराबर यह सोच रहा है कि नामों के शोर में कविता की फजीहत हुई है। कविता की जीवतता इस बात पर निर्भर करती है कि वह कितना डुबाती है और कितना आस-पास का दर्शन कराती है। जब तक वह अपने परिवेश से खाद-पानी लेकर डुबाती रहती है, तभी तक वह कविता है। जैसे ही वह ऐसा करना बंद कर देती है वैसे ही उसे अपने लिए नये नये नामों की जरूरत पड़ने लगती। फिर भी कितने ही ऐसे कवि हैं जो गुटों के सींखचों मे कैद होकर रक्तचापहीन कविताएं नहीं लिखते। ऐसे कवियों का अपना ढग है। उसमें बनावट कम है; बुनावट अधिक है। अत जो सही साठोत्तर या समकालीन कविता है; उसमे कल्पित और अद्वितीय की तलाश नहीं की गई है; वरन् जो सामने हो रहा है, उसे रचनात्मक स्तर पर खुलासा करके दिखलाया गया है। इस कविता के साथ साथ चलते हुए हम वर्तमान को देख-सकते हैं और पा सकते है उस परिदृश्य को जिसमे जीते-मरते, लड़ते-झगड़ते, खौखलाते-बिसूरते, तड़पते कसकते और हर ठोकर पर एक जोड़ी दर्द को गाँठ बाँधते, किन्तु फिर भी जीते आदमी की 'एक्सरे प्लेट्स' हैं।

8 नामों का अंतहीन शोर और गुटों में कैद कविता

नामों का अंतहीन शोर

इन्सानी जिन्दगी का हर पहलू, हर कार्य और हरेक संदर्भ सुविधा की माँग करता है। सुविधा के मामले में कवि की स्थिति कुछ भिन्न होती है, किन्तु यह भिन्नता तभी तक रहती है जब तक कि कवि आलोचनाकर्म से, सफाई देने वाले फार्मूलों से और आत्मरक्षण के उपायों से दूर रहता है। संवेदनशील कवि बौद्धिक दाय लेकर आम आदमी पर निगाह जमाता हुआ आलोचना की जमीन पर उतरता है तो उसे संतुलित और व्यावहारिक बने रहने की जरूरत महसूस होती है। यह जरूरत ही उसे सुविधा की ओर ले जाती है—उस सुविधा की ओर जिसमें परिस्थिति से जूझने के बाद का तोष है, सुख है और औचित्य भी है। सुख ऐसा जो जूझने के बाद मिलता है और औचित्य वह जो परिस्थितियों के संदर्भ में देखा जा सकता है। यही वह स्थिति है जहाँ पहुँच कर कवि अपनी सफाई देता है और अपनी अलग पहचान के लिए कोई सुविधा ढूँढता है, कोई ऐसा 'लेबिल' तलाशता है जिससे वह छिप जाये, पर 'लेबिल' चमकता रहे और उसके कवि-कर्म को (यदि वह सचमुच है तो) विज्ञापित करता रहे। मेरी धारणा है कि ऐसे कवि जो अपने आपको विज्ञापित करने के लिए किसी न किसी 'लेबिल' का सहारा लेते हैं या किसी गुट में शरीक होकर सृजनरत रहते हैं वे न तो कवि हैं और न उनका लिखा कविता है।

यह सब इसलिए लिख रहा हूँ कि साठोत्तर वर्षों में कविता तूफानी दौर से गुजरी है और इस आन्दोलनात्मक तूफानी प्रवाह में कितने बह गये, कितने ही ढह गये और बहाव के पानी के उतर जाने के बाद सूने रेत से बचे कितनों का नामलेवा ही कोई नहीं रहा। पिछले दो दशकों में कुकुरमुत्ते की तरह बढ़ती कवियों की भीड़ कविता की असलियत को भुलाकर नामों का उत्सव मनाती रही है और उत्सव में धमक दमक अधिक होती है प्रदर्शन और शोर-गुल अधिक होता है, असलियत कम। अधिकांश साठोत्तर कवियों ने शोर अधिक किया है, कविता को आन्दोलनों से जोड़कर नाम अधिक उछाले हैं, कविताएँ कम लिखी हैं। हरेक आन्दोलनकर्ता ने अपने अपने नाम का जिस तरह बखाना है, उसमें यही लगता रहा है कि ये सभी नाम कविता का भारवर सामने आये हैं। मैं यह नहीं कहता कि साठोत्तर वर्षों में जो कविता लिखी गई है, वह सभी घास-फूस है, पर इतना कहे बिना नहीं रह सकता कि सनातन सूर्योदयी कविता, अभिनव कविता, बीट कविता, भुभुक्षावादी कविता,

अस्वीकृत कविता अकविता निर्दिशायामी कविता, सहज कविता और तरह तरह की पीढियो मे कैद कविता ने ऐसा कुछ नही किया जो कम से कम गभीर चर्चा का विषय हो। इन सभी नामो को लेकर जिनकी एक लम्बी सूची डॉ० जगदीश गुप्त ने नयी कविता . स्वरूप और समस्याएँ कृति मे दी है[1]; बराबर यह सोच रहा है कि नामो के शोर मे कविता की फजीहत हुई है। उसके मर्मस्थल को काटकर फेंक दिया गया है और उस रिक्ति को चमकदार नामो से भर दिया गया है। वस्तुत आज हम उस कविता की जरूरत है जो बदलते सदर्भो मे विकसित मूल्यो, स्थितियो और मनोवृत्तियो का वाणी दे सके; आदमी को उसका असली चेहरा दिखा सके और इस सबके साथ वह कविता बनी रहे। 'सैक्स' व ध्रुवेपन का लकर कविता की उम्र लम्बी नही हो सकती है। 'अकविता गुट' न यही किया है। य व कवि रहे है जो प्रत्येक छिद्र के साथ सभाग करने म आनद पाते रहे हैं, स्तनो को काटकर फेंकन को यथार्थ-कर्म मानते रहे हैं और 'न्यूड्स' को कविता का पर्याय समझते रहे हैं।

हर रोज पत्र-पत्रिकाओ की भीड मे नये चेहरे दिखलाई दे रहे हैं। लगता है कि पिछले दशक मे एक साथ–एक ही दिन मे कई नयी और परस्पर विरोधी पीढियाँ जन्म ले चुकी हैं। इसी से थुक्का फजीहत हो रही है। हर नई पीढी जिस जोश खरोश से, जिस साहसिकता के साथ पहले की उपलब्धियो को नकार रही है, उससे हिन्दी कविता के नाम पर बहुत सारे प्रश्नचिन्ह लग गये हैं। अपनी प्रतिष्टापना के लिए दूसरो का अस्वीकार और विरोध इतना जरूरी नही जितनी जरूरी है अपनी प्रामाणिकता की गवाही। यह गवाही भी खुद देने की जरूरत नही,कविता खुद इसकी पैरोकार बनेगी। मेरी राय मे 'दिनकर' जी की 'अपील' ज्यादा सही है क्योकि वे किसी आन्दोलन की बात न करके 'शुद्ध कविता की खोज' पर जोर दे गये हैं। कविता को कविता बने रहना चाहिये, तभी वह जीवित रह सकती है। यह इसलिए कि कविता कोई ऐसी वस्तु नही है जो आज है, कल नही होगी। कविता की जीवनता इस बात पर निर्भर करती है कि वह कितना डुबाती है और कितना आस-पास का दर्शन कराती है। जब तक वह अपने परिवेश से खाद पानी लेकर डुबाती रहती है तभी तक वह कविता है। जैसे ही वह ऐसा करना बद कर देती है, वैसे ही उस अपने लिए नामा की जरूरत पडने लगती है और तब विशेषणो की खपत बढने लगती है। यह सब कहने का अर्थ यही है कि अब नामो का शोर बद होना चाहिए। क्या कविता के लिए नाम उसके कवितापन से भी ज्यादा अहम होत है ? हाँ, सुविधा क लिए काई नाम तो दिया जा सकता है, किन्तु गैर जरूरी नामों को उछालकर पाठका के लिए असुविधा पैदा करने और कविता को मृत्युदश सहने के लिए छोड देने का अधिकार किसी को भी नही दिया जा सकता है। पिछले वर्षों म जो नाम उछाले गय है, वे ऐसे ही है या कहूँ कि नाम भर है जो अपने को विज्ञापित करने के लोभ के परिणाम

1 डॉ जगदीश गुप्त . नयी कविता : स्वरूप और समस्याएँ पृ० 220

हैं और लोभ तो लोभ ही होता है । वह सही की अपेक्षा गलत की ओर जाने के लिए ज्यादा प्रोत्साहित करता है । अफसोस तो यह है कि अब जब आठवें दशक की साँझ घिर आई है तब भी यह प्रक्रिया जारी है । नये-नये नामो से जुड़कर कविता पत्रिकाएँ फैलती जा रही हैं ।

हां, इससे और कुछ हो न हो, इतना तय है कि 'रिमों' कागज की बिक्री हो रही है और दर्जनो ऐसे आदमी जिन्हे कला, कविता और सपादन के नाम पर कुछ नही आता, धडल्ले से कितने ही अच्छे सिक्को के बँच चल रह है। जाहिर है कि खोटे सिक्को का; नकली शक्लो का चलन बढ रहा है और भी बढेगा । (सरकार कितना ही प्रयत्न क्यों न करे, बढती रुकेगी नही) आज ढेर सारे कवि अपनी अपनी कविताओ को लेकर आ खडे हुए है । कुछ तो इतने साहसी निकले है कि नये-नये नामो के अनवरत अन्वेषण से ही अपने पाचन-सस्थान को बचाये हुए हैं । यही वजह है कि 'सूर्योदयी कविता से लेकर आज की कविता तक की बात हो रही है । मुझे विश्वास है कि आने वाले कल मे सिर्फ कविता की बात होगी और तब धर्मवीरभारती की यह उक्ति सार्थक होगी कि 'कौन कहता है कि कविता मर गई है ? नयी कविता ने समानातर साठोत्तर वर्षों मे विकसित विभिन्न काव्यान्दोलन न केवल अनर्गलता के प्रतीक है; अपितु कविता का गला घोट कर सामने आये शरारतपूर्ण ध्वसात्मक प्रयत्न भी हैं । इन सब की चर्चा यहाँ न तो अभीष्ट है और न आवश्यक ही है । हां, दो चार काव्यान्दोलनो की सक्षिप्त चर्चा जरूरी लग रही है ताकि इनकी असलियत को समझा जा सके और जाना जा सके कि इन्होने कविता को कहाँ ला पटका है, किसी सीमा तक उसकी फजीहत की है ? लगे हाथो यह कहना भी अप्रासगिक नही होगा कि इस फजीहत मे सबसे बडी भूमिका निभाई है अकविता ने ।

पहले लीजिए सनातन सूर्योदयी नूतन कविता' को । इसका सूत्रपात सन् 1962 म 'भारती' के 'होली रग.त्सव विशेषाक' के माध्यम से वीरेन्द्रकुमार जैन ने किया था । उन्होने अपनी उद्घोषणा मे कहा था—"पतन-पराजय, कुठा, आत्मपीडा और जीवित आत्मघात के असूझ अंधकार मे आत्महारा-दिशाहारा होकर भटक रही आज की अनाथ काव्य-चेतना के सम्मुख हम : अल्प से महत् मे ले जाने वाली अधकार से प्रकाश मे ले जाने वाली. मृत्यु से अमृत मे ले जाने वाली और सीमा मे असीम की लीला को उतार लाने वाली : आगामी कल की अनिवार्य सनातन सूर्योदयी नूतन कविता-धारा का द्वारा मुक्त करते हैं ।" वीरेन्द्र कुमार जैन की इस घोषणा मे जो कहा गया है वह कविता को सनातनता और सूर्योदयी दानो से जोडकर कहा गया है । यह काव्यान्दोलन नयी कविता को नकार कर सामने आया था और नकार का मूलकारण जहाँ और बातो से जुडा था वही भाषा से भी जुडा था । नतीजा यह रहा कि दो वर्षों के अल्पकाल मे ही यह आन्दोलन कालकवलित हो गया । जिस काव्य चेतना के लिये दिशाहारा और आत्महारा शब्दो का प्रयोग किया गया है वह तो खैर ऐसी थी नहीं; किन्तु नूतन कविता का नारा बुलद

करने वाले कवि ने अपनी कविता को जब 'सीमा मे असीम की लीला को उतारने वाली' कहा था तो वह अध्यात्म लोक मे झाँक रहा था। खैर यह सच है कि चौंकाने वाली भारी-भरकम शब्दावली की पीठ पर परस्पर विरोधी कथनो का लबादा लादकर हासिल कुछ भी नही हो सका, उल्टे बोझ ज्यादा होने से उसे सँभाला तक नही जा सका। वह चल नही पाई क्योकि उसके पैरो की गति गायब थी। अत जैसे-तैसे लस्टम-पस्टम गति से आने वाली सूर्योदयी कविता शाम होते-होते अस्तोन्मुख हो गई।

इसी तरह डॉ० इन्द्रनाथ मदान के सरक्षण मे रमेश कुतल मेघ और गगाप्रसाद विमल द्वारा सपादित अभिव्यक्ति— I मे 'अभिनव काव्य' की सरसराहट हुई, पर उसे भी कोई सुन नही पाया। कारण; वह कानो तक पहुँचने से पहले ही 'अकविता' द्वारा पराजित हो गई। इसी समय 'बीटनिक कविता' की घोषणा हुई जिसमे 'ग्लैमर' और 'क्रेज' दोनो थे पर जैसा कि जाहिर है ये दोनो ही चीजें कविता की करीबी चीजें नही हैं। यह 'बीटनिक कविता' उन्माद और नशे की कविता थी और इसी से किसी महत् तत्व को पाना चाहती थी। अतः इसकी परतें उधडने के लिये सन् 1967 मे धर्मवीर भारती ने सारिका म लेख लिखा और इस तरह यह कविता-आन्दोलन भी शगूफा बनकर रह गया। 'युयुत्सावादी' कविता के साथ शलभश्रीराम सिंह का नाम जुडा हुआ है। अप्रैल 1965 म 'रूपाम्बरा मे 'प्रारभ' क अन्तगत स्वदेश भारती ने युयुत्सावादी कविता की वकालत की और कहा कि मैं 'साहित्य-सृजन की मूल प्रेरणा के रूप मे उसी आदिम युयुत्सा को स्वीकारता हूँ जो कही न कही प्रत्येक क्राति, परिवर्तन अथवा विघटन के मूल मे प्रमुख रही है। यह युयुत्सा जिजीविषावादी, मुमूर्षावादी विद्रोहात्मक अथवा प्लैटोनिक कुछ भी हो सकती है।" (शलभ श्रीराम सिंह का वक्तव्य) शलभ श्रीराम सिंह का इसी तरह का एक कविता-सग्रह भी 'कल सुबह होने से पहले' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। इस सग्रह की कविताएँ तो छपी हैं, पर उपर्युक्त वक्तव्य के 'प्लैटोनिक' और 'विद्रोहात्मक' जैसे शब्दो का सहचरण समझ मे नही आता है। यद्यपि यह ठीक है कि 'शलभ' ने परम्परा और इतिहास को अस्वीकार नही किया और 'युयुत्सा' के अक्टूबर 1966 के अक मे लिखा—"फैशन के नाम पर अधाधुध साहित्य लिखने वाले लेखको की एक भीड अनजाने इस षडयत्र की जड मजबूत करने मे लगी हुई है। व्यक्तिगत स्थापना की लालसा इन लेखको को मूल बिन्दु से हटाकर एक ऐसी आधुनिकता के समीप ले जा रही है जहाँ जातीय बोध आधारहीनता की स्थिति को सहज ही प्राप्त होता जा रहा है। इसका एकमात्र और भयानक कारण यह है कि आज साहित्य और जन साधारण के बीच एक तीसरा व्यक्ति आ गया है।. .... आवश्यकता है गलत हाथो की पकड से यात्रिकता को मुक्त कराने के लिए सतुलित विद्रोह की जो एक विचारधारा के व्यक्तियो द्वारा चिन्तन के स्तर पर हो।"

कहने की आवश्यकता नही कि इस प्रकार के वक्तव्यो का महत्व है क्योकि इसमे विद्रोह के लिए विद्रोह वाली बात को नकार कर, आधारहीन सकट से मुक्ति की बात

सतुलित शैली मे कही गई है। बात क्योंकि सही थी अत. इसे भी विरोध सहना पडा और एक सही स्थिति असहयोग के कारण बिखर गई। सन् 1965 मे 'लय' पत्रिका के माध्यम से 'निर्दिशायामी कविता' की आवाज सुनाई दी; पर दिशाहीनता के कारण इसके नाम लेने वाले भी पैदा न हो सके। जो इस आन्दोलन से जुडे वे खुद भी नही समझ पाये कि इसकी दिशा क्या है ? 'ताजी कविता' की बात उठाई लक्ष्मीकात वर्मा ने पर जैसा की डा० जगदीश गुप्त ने लिखा है इस आन्दोलन और इससे जुडी कविता के सम्बध मे किसी ने कुछ नही कहा। डॉ०गुप्त ने लिखा है—'नयी कविता के प्रतिमान के लेखक को सहसा 'ताजी कविता के मतिमान' के रूप मे तेवर बदलते देख और नगी भाषा बोलते देख पहले तो लोग चकित हुए परन्तु ज्यो-ज्यो ताजी कविता के सुविचारित, परम मौलिक सैद्धातिक आधार, शरारतपूर्ण सह-सयोजन' का असली रूप सामने आने लगा त्यो-त्यो उनका आश्चर्य कम होता गया और उनकी समझ मे आगया कि 'शरारत' किसकी थी और 'सहसयोजन' किसका था। शरारत करने वाला मन ही मन मुस्कराता रहा, किन्तु प्रवर्तक की खिन्नता के बावजूद सह-सयोजनो मे से कोई भी इतना आस्थावान न निकला कि उसके समर्थन मे एक लेख ही लिखता।"[1] 'अस्वीकृत कविता' के आन्दोलन को भी चर्चा का विषय बनाया गया है। कुछ समीक्षको और कुछेक कवियो ने इसे 'अकविता' का ही पर्याय सिद्ध किया है। ऐसा शायद इसलिए किया गया हो कि दोनो मे ही जीवन के अस्वीकृत अश्लील सदर्भों को स्वीकार किया गया है। जो भी हो मैं यही सोचता हूँ कि अस्वीकृत कविता भी अस्वीकृत ही रही और जब ऐसा है तो उसकी चर्चा को भी कौन स्वीकारेगा ? अब हमारे सामने केवल दो नाम शेष रहते हैं जिनकी चर्चा को टाला नही जा सकता है। इनमे से 'अकविता' का स्थान पहला है और 'सहज कविता' का दूसरा। 'अकविता' की चर्चा इसलिए जरूरी है कि इसी ने कविता को नगी कर के चौराहे पर ला खडा किया और उसकी पहचान मिटाने मे काफी श्रम उठाया है। 'सहज कविता' की चर्चा का कारण यह है कि वह घट-बढकर नयी कविता की ही वकालत है सिर्फ नाम बदल दिया गया है।

अकविता आरोपित स्थितियों का घिनौना शब्दजाल

साठोत्तर वर्षों मे नयी कविता को दफना कर सुनियोजित षडयत्र के रूप म जो कविता-आन्दोलन उभरा वह 'अकविता' के नाम से जाना जाता है। अकविता मे जगदीश चतुर्वेदी, 'श्यामपरमार' गगाप्रसाद विमल और सौमित्र मोहन शामिल थे। इनका सहयोग करने वाले थे—धूमिल, जगूडी 'राजीव सक्सेना मोनागुलाटी और कुमार विकल। सही मानियो म तो चतुर्वेदी, विमल और परमार ही अकवितावादी थे। बाकी इनके सहयोगी समझदार कविताएँ लिख रहे थे और यातना के विरोध मे जागरूक कवियो की तरह खडे होकर व्यवस्था की धज्जियाँ उडाते हुए मानवीय सकट को वाणी दे रहे थे। 'विजप' के कवि 'इतिहास हता' बनकर और सब कुछ को

1. नयी कविता : स्वरूप और समस्याएँ पृष्ठ 246

अमाध्य मानकर जांघो के जगल में घूमते हुए देह की राजनीति की बैसाखियों के सहारे 'जीभ और जांघ के चालू भूगोल का' शब्दबद्ध कर रहे थे। इनका सारा विद्रोह नयी कविता के साफ सुथरे और आभिजात्यपूर्ण काव्य संसार के खिलाफ था। जो हो इतना यही समझ लेना चाहिए कि अकविता की अग्नि के कारण ही साठोत्तर वर्षों में एक ऐसा कवि-समूह भी सामने आया जो यथार्थ जीवन के वास्तविक संदर्भों, आसद परिवेश, मानवीय संकट और व्यवस्था के प्रति अस्वीकार तो लिए हुए था ही, अपनी सजगता के कारण मोहभंग तक पहुँच गया था। यही वह वर्ग था जो साठोत्तर वर्षों मे समकालीन जीवन का भूगोल लिखता हुआ समाज, व्यवस्था और मनुष्य के मन का 'एकसरे' सवेदना प्रवण शैली मे कर सका है और यही गत दशक का उल्लेख्य कवि समुदाय है। इनकी चर्चा आगे की गई है। यहाँ पहले यह जान लेना जरूरी कि अकविता का रचना ससार कैसा था और उसका क्या परिणाम हुआ ?

अकविता के ससार म आये सदर्भ लिजलिजे, घृणास्पद और नगे हैं जिन्हें देखकर लगता ही नहीं कि हम अपने ही ससार की कोई कविता पढ रहे हैं। कारण; उसकी परिधि इतनी सकीर्ण है कि स्त्री, स्त्री सम्बध और नगे सपर्कों के अलावा मानव तो उसमे गाहे-बगाहे ही आया है। यह आना भी मनुष्य का असली रूप नहीं है; उस पर थोपा गया रूप है। यही वजह रही है कि अकवितावादियो की चेतना सुन्न और ठहरी हुई थी। उनकी धार भोथरी और मुडी हुई थी। उसम न तो जीवन का स्पदन था और न परिवेश का कोई बिम्ब। था तो केवल चौंकाने वाले शब्दो का जाल जिसके आर-पार इधर-उधर कुछ भी नहीं देखा जा सकता था। अकवितावादियो ने अकविता विशेषांक भी निकाला और विजप' व 'इतिहास हत्ता' जैसे काव्य-सग्रह भी। न कुछ होते हुए भी, कविता को कवितापन की भूमिका से घसीट कर कीचड मे ला पटकने पर भी इस काव्यान्दोलन का कुछ ऐसा प्रभाव पडा कि 'गिरिजाकुमार माथुर' सरीखे कवि भी इसके साथ हो लिए। उन्होने 'अकविता' मे 'घोघा' कविता के साथ प्रवेश किया और 'घोंघे' ही बनकर ही रह गये। वे वहाँ के कायदे कानून मे फिट न होने के कारण 'अस्वीकृति का नवोन्मेष करके रह गये। फलत उनकी यश प्राथिता भी भटकन के होम हो गई। विजप' मे श्याम परमार, गगाप्रसाद'विमल और जगदीश चतुर्वेदी की कविताओ को जगह दी गई है। 'विजप' की कविताओ का सदर्भ बिन्दु एक है, चेतना एक है। जो भी हो वह नयी कविता के बाद का स्वर इसी अर्थ मे है कि चौंकाता है, स्त्री देह के इर्द गिर्द घूम कर उसके गुप्तांगो पर चोट करता है। मरी दृष्टि मे इन अकविताओ का ओछापन वहाँ प्रकट होता है जहाँ ये वक्तव्यो म बोलती हैं, 'रोमास'-विरोधी होकर भी एक दूसरे ढग से 'रोमास' की शुरुआत करती हैं। मानव -सदर्भों और सम्बधो को लेकर जो भी सदर्भ इनमे प्राप्त हैं, वे इतनी उथली और अखबारी शैली मे व्यक्त हुए हैं कि कोई भी सवेदना नहीं उभरती है। अखबारी शैली के कारण इन कविताओ का रक्तचाप ऐसा हो गया है कि अधिकाश कविताएँ न केवल शिथिल, निर्वस्त्र और उत्साहीन हो गई हैं, वरन् मरणोन्मुखी भी

पर्याय बन गई है। यह विनाश है, सारे समाज को तहस-नहस करके जुगुप्सा का साम्राज्य स्थापित करने की गलीज हरकत है। इस तरह की कविताओं से कतिपय उन युवकों को आनंद मिल सकता है जो 'सेक्स' को ही सब कुछ मानते हैं। कविता– समकालीन कविता मानसिक घटना का प्रत्ययन है, कोई मानसिक दुर्घटना नहीं कि जो चाहा गंदे-भद्दे शब्दों की पोटली में भरकर कविता में लाद दिया जाय। जगदीश की निऋति' शीर्षक से लिखी गई कविता भी ऐसी ही है। उसमें जो हो रहा है, उसका अंकन तो नहीं के बराबर है, किन्तु जो होगा उसकी कल्पना कर ली गई है और अपनी अतृप्ति-सूचक, पूर्व कल्पित और भदेस मनोदशा को कविता के हवाले कर दिया गया है। डॉ० विश्वंभर उपाध्याय ने इस कविता को पढ़ कर ठीक टिप्पणी की है 'यौन चित्रों की बीभत्सता इस कविता में इतनी अधिक है कि विक्टोरियननैतिकता के लोग तो इसे अपठनीय घोषित कर देंगे मगर नवसमृद्ध वर्ग में ही नहीं, सारे उच्च और मध्यवर्ग में यौनतृष्णा अत्यन्त प्रबल है जो समाज के भय के कारण अँधेरे-उजेलों में पूरी निर्लज्जता से प्रकट है। स्वयं अकवि की स्थिति भी यही है।'[1] उदाहरण के लिए ये पंक्तियाँ पढ़िये – 'लोग निवसन होने में आनाकानी करने वाली स्त्रियों से/असाधारण वैर की भावना में भरे सड़कों पर घूम रहे हैं। /व्यभिचार को सामाजिक प्रतिष्ठा दिलाने कुछ सिर फिरे/बदनाम गलियों की रोगिणी स्त्रियों के साथ/प्राइवेट वाहनों में रहस्यमयी मुद्रा में गुजर रहे हैं" / ये पंक्तियाँ न केवल अश्लील हैं, अपितु सर्वनाशी भी है, किन्तु इस सामूहिक विनाशेच्छा का मूल रहस्य क्या है? इसका औचित्य क्या है? और ऐसा कहकर कवि किस स्तर पर कवि है? यह जाहिर नहीं होता है। असल में जगदीश के मन में यौन-चित्र ऐसे बनते चले गए हैं जैसे समुद्र में लहर पर लहर चढ़ती हुई किसी किनारे से कुछ पा लेना चाहती हो और उसकी अथ से इति तक की यात्रा एक ही संदर्भ को जीवन का सर्वस्व मान बैठी हो।

'विमल' की कविताएँ मानव-स्थिति के ग्राफ भी देती हैं और उस परिवेश को भी बिम्बों में बाँधती हैं जो हमारे आस पास फैला है। उनकी अभिव्यक्ति में अपेक्षाकृत ईमानदारी और साहसिकता है। यों उसमें भी अधिकतर संदर्भ तो चतुर्वेदी वाला ही है, किन्तु कहीं-कहीं विमल ईमानदार भी हैं और कविता के सर्जक भी। पूरी जागरूकता के साथ कवि यह परिदृश्य प्रस्तुत करता है–"अँधेरी सड़कों के कोने पर लिपटे हुए/ गृह विहीन पनपते प्यार/ छोटी लेनों के वृक्ष तनों से सटे पूरे शरीर/ गर्म गर्म दीवारों पर आलिंगित कोमलांग/ पूरी शताब्दी को गाली उच्चारते छोटे-छोटे हाथ/ अपनी क्रियाओं में रत "/ देश के किसी बड़े हिस्से के छोटे कोने में घट रही जिन्दगी पूरे देश का भूगोल तो नहीं हो सकती है फिर इस तरह की स्थितियों को परिवेश की यथार्थता के नाम पर अभिव्यक्ति देने का षड्यंत्र किसलिए है?

1 समकालीन कविता की भूमिका पृष्ठ 63

मानव-संदर्भ और परिवेश में हुआ परिवर्तन आज कवि से प्रतिबद्ध तो है और होना भी चाहिए, किन्तु इस तरह की कविताओं में आई उग्रता भी ठंडी लगती है और इसका कारण यौन-प्रसंगों का अतिरेक है। 'परमार' की स्थिति अजीब रही है। वे बहकते हैं तो फिर उनकी बहक का कोई भी सिरा पाठक की पकड़ में नहीं आता है। 'विजय' में ऐसी कविताएँ ही अधिक हैं। नतीजा यह रहा है कि जो वर्ण्य-संदर्भ कवितारंभ में उनके साथ रहता है, वही कवितांत तक पहुँचकर करीब-करीब उनके हाथ से छूट चुका होता है। इसलिए वर्ण्य-विषय की कोई 'इमेज' नहीं बन पाती है और कथ्य सामान्य कथन-पद्धति में बदलकर कराहता मालूम होता है। अतः 'विजय' की अधिकांश कविताएँ अमानवीय प्रतिच्छवियों की काल्पनिक, लिखावट लगती हैं। मैं पूछता हूँ कि क्या आज दुनियाँ मात्र मलबे का ढेर होकर रह गई है? क्या यह संभावनाहीन भी हो गई है? जिस परिधि में ये कविताएँ घूमती हैं, वह एक सँकरी और नपुंसकीय दीवारों से घिरी परिधि है। तभी तो अभिव्यक्ति शिथिल और लिजलिजी भी हो गई है।

अपवादिक रूप से 'श्याम परमार ने कुछ विश्वसनीय कविताएँ भी लिखी हैं। 'अँधेरे का पाठक' और 'अट्ठाईसवीं सीढ़ी पर हत्या' कविताएँ ऐसी ही हैं। इनमें कवि के अनुभव का संसार विश्वसनीय और साक्षात्कृत लगता है। इनमें प्रतिपक्ष के विरुद्ध जमकर संघर्ष करने की शक्ति भी है और साहसिक तर्क भी 'होता यह है, उसे कोई और पढ़ता है/ उसने भी नहीं पढ़ा तो कोई और पढ़ता है/ उसने भी नहीं पढ़ा तो कोई और पढ़ता है/ मगर उसे कोई पढ़ता जरूर है/ और जो सबसे अधिक उसमें से अँधेरे को/ अपने अँधेरे से साथ मिला पाता है/ वह मेरी कविता से होकर मेरे पास आता है"/ मुझे लगता है कि परमार यदि 'अकविता' से न चिपके होते तो उनमें कवितागत बहक न होती। वैसे जैसे ही उन्हें अकविता की न्यूनताओं और अपनी बहक का अहसास हुआ वैसे ही वे 'कविताएँ-कविताओं से बाहर' के कवि होकर सामने आये। ध्यान देने की बात यह है कि वे अकविताओं के घेरे से चुपचाप निकलकर नहीं आये हैं, अपितु अकविता के प्रतिनिधि कवि जगदीश चतुर्वेदी को उन न्यूनताओं का परिचय देकर तथा यह कहकर "मगर बात यह है कि/ अब तुम्हारी पहुँच और मेरी कविता के बीच/ बहुत सी सड़कें बन गई हैं"/ तुम्हें समझाने के लिए मेरी कोशिश का नतीजा यह होगा/ कि कविता तुम्हारे लिए और भी दूर हो जायेगी"/ यह समझ और यह अहसास ही 'श्याम परमार' को कविता की ओर लाया है और उनकी सर्जना कवितापन से जुड़ गई है। 'मोना-गुलाटी' भी अकविता से जुड़ी रही हैं। यों कहने को उनकी कविताओं में भी असंतोष और आक्रोश की कमी नहीं है, पर अन्य अकवियों की तरह उनकी कविता में भी ढेर के ढेर वक्तव्य मिल सकते हैं। तकलीफ तब अधिक होती है जब उनके वक्तव्य भी अन्तर्विरोध युक्त दिखलाई देते हैं। यह अकारण नहीं है। असल में 'मोना' के मन में 'पुरुष इतिहास को अंत कर देने की इच्छा विद्रोह बनकर'

पर्याय बन गई है। यह विनाश है; सारे समाज को तहस-नहस करके जुगुप्सा का साम्राज्य स्थापित करने की गलीज हरकत है। इस तरह की कविताओं से कतिपय उन युवकों को आनंद मिल सकता है जो 'सेक्स' को ही सब कुछ मानते हैं। कविता—समकालीन कविता मानसिक घटना का प्रत्यकन है, कोई मानसिक दुर्घटना नहीं कि जो चाहा गंदे-भद्दे शब्दों की पोटली में भरकर कविता में लाद दिया जाय। जगदीश की निर्ऋति' शीर्षक से लिखी गई कविता भी ऐसी ही है। उसमें जो हो रहा है, उसका प्रकन तो नहीं के बराबर है, किन्तु जो होगा उसकी कल्पना कर ली गई है और अपनी अतृप्ति-सूचक, पूर्व कल्पित और मदेस मनोदशा को कविता के हवाले कर दिया गया है। डॉ० विश्वभर उपाध्याय ने इस कविता को पढ कर ठीक टिप्पणी की है 'यौन चित्रो की वीभत्सता इस कविता म इतनी अधिक है कि विक्टोरियननैतिकता के लोग तो इसे अपठनीय घोषित कर देंगे मगर नवसमृद्ध वर्ग मे ही नही, सारे उच्च और मध्यवर्ग मे यौनतृष्णा अत्यन्त प्रबल है जो समाज के भय के कारण अँधेरे-उजेलो मे पूरी निर्लज्जता से प्रकट है। स्वय अकवि की स्थिति भी यही है।[1] 'उदाहरण के लिए ये पंक्तियाँ पढ़िये'—'लोग निवसन होने मे आनाकानी करने वाली स्त्रियो से/असाधारण वैर की भावना मे भरे सडको पर घूम रहे है। /व्यभिचार को सामाजिक प्रतिष्ठा दिलाने कुछ सिर फिरे/बदनाम गलियो की रागिणी स्त्रियो के साथ/प्राइवेट वाहनो मे रहस्यमयी मुद्रा मे गुजर रहे है' / ये पंक्तियाँ न केवल अश्लील है, अपितु सर्वनाशी भी है. किन्तु इस सामूहिक विनाशेच्छा का मूल रहस्य क्या है? इसका औचित्य क्या है? और ऐसा कहकर कवि किस स्तर पर कवि है? यह जाहिर नही होता है। असल मे जगदीश के मन मे यौन-चित्र ऐसे बनते चले गए हैं जैसे समुद्र मे लहर पर लहर चढती हुई किसी किनारे से कुछ पा लेना चाहती हो और उसकी अथ से इति तक की यात्रा एक ही सदर्भ को जीवन का सवस्व मान बैठी हो।

'विमल' की कविताएँ मानव-स्थिति के ग्राफ भी देती है और उस परिवेश को भी बिम्बों मे बाँधती हैं जो हमारे आस पास फैला है। उनकी अभिव्यक्ति मे अपेक्षाकृत ईमानदारी और साहसिकता है। यो उसमे भी अधिकतर सदर्भ तो चतुर्वेदी वाला ही है, किन्तु कहीं कहीं विमल ईमानदार भी हैं और कविता के सर्जक भी। पूरी जागरूकता के साथ कवि यह परिदृश्य प्रस्तुत करता है—'अँधेरी सडको के कोने पर लिपटे हुए/ गृह विहीन पनपते प्यार/ छोटी लेनो के वृक्ष तनो से सटे पूरे शरीर/ गर्म गर्म दीवारो पर आलिंगित कोमलाग/ पूरी शताब्दी को गाली उच्चारते छोटे छोटे हाथ/ अपनी अक्रियायो मे रत "/ देश के किसी बडे हिस्से के छोटे कोने मे घट रही जिन्दगी पूरे देश का भूगोल तो नही हो सकती है फिर इस तरह की स्थितियो को परिवेश की यथार्थता के नाम पर अभिव्यक्ति देने का षडयन्त्र किसलिए है?

1 समकालीन कविता की भूमिका पृष्ठ 63

मानव-सदर्भ और परिवेश में हुआ परिवर्तन आज कवि से अनिबद्ध तो है और होना भी चाहिए, किन्तु इस तरह की कविताओ मे आई उग्रता भी ठडी लगती है और इसका कारण यौन-प्रसगो का अतिरेक है। 'परमार' की स्थिति अजीब रही है। वे बहकते हैं तो फिर उनकी बहक का कोई भी सिरा पाठक की पकड मे नही आता है। 'विजय' मे ऐसी कविताएँ ही अधिक हैं। नतीजा यह रहा है कि जो वर्ण्य-सदर्भ कवितारभ मे उनके साथ रहता है, वही कवितात तक पहुँचकर करीब-करीब उनके हाथ से छूट चुका होता है। इसलिए वर्ण्य विषय की कोई 'इमेज' नही बन पाती। है और कथ्य सामान्य कथन-पद्धति मे बदलकर कराहता मालूम होता है। अत 'विजय' की अधिकाश कविताएँ अमानवीय प्रतिच्छवियों की काल्पनिक लिखावट लगती हैं। मैं पूछता हूँ कि क्या आज दुनियाँ मात्र मलबे का ढेर होकर रह गई है? क्या वह सभावनाहीन भी हो गई है? जिस परिधि में ये कविताएँ घूमती हैं, वह एक सँकरी और नपुसकीय दीवारो से घिरी परिधि है। तभी तो अभिव्यक्ति शिथिल और लिजलिजी भी हो गई है।

आपवादिक रूप से 'श्याम परमार ने कुछ विश्वसनीय कविताएँ भी लिखी हैं। 'अँधेरे का पाठक' और 'अट्ठाईसवीं सीढ़ी पर हत्या' कविताएँ ऐसी ही हैं। इनमे कवि के अनुभव का ससार विश्वसनीय और साक्षात्कृत लगता है। इनमे प्रतिपक्ष के विरुद्ध जमकर सघर्ष करने की शक्ति भी है और साहसिक तर्क भी 'होता यह है, उसे कोई और पढता है/ उसने भी नही पढा तो कोई और पढता है/ उसने भी नही पढा तो कोई और पढता है/ मगर उसे कोई पढता जरूर है/ और जो सबसे अधिक उसमे के अँधेरे को/ अपने अँधेरे के साथ मिला पाता है/ वह मेरी कविता से होकर मेरे पास आता है"/ मुझे लगता है कि परमार यदि 'अकविता' से न चिपके होते तो उनमे कवितागत बहक न होती। वैसे जैसे ही उन्हे अकविता की न्यूनताओ और अपनी बहक का अहसास हुआ वैसे ही वे 'कविताएँ-कविताओं से बाहर' के कवि होकर सामने आये। ध्यान देने की बात यह है कि वे अकविताओ के घेरे से चुपचाप निकलकर नही आये हैं, अपितु अकविता के प्रतिनिधि कवि जगदीश चतुर्वेदी को उन न्यूनताओ का परिचय देकर तथा यह कहकर, "मगर बात यह है कि/ अब तुम्हारी पहुँच और मेरी कविता के बीच/ बहुत सी सडकें बन गई हैं / तुम्हें समझाने के लिए मेरी कोशिश का नतीजा यह होगा/ कि कविता तुम्हारे लिए और भी दूर हो जायेगी"/ यह समझ और यह अहसास ही 'श्याम परमार' को कविता की ओर लाया है और उनकी सर्जना कवितापन से जुड गई है। 'मोना गुलाटी' भी अकविता से जुडी रही हैं। यो कहने को उनकी कविताओ मे भी असतोष और आक्रोश की कमी नही है, पर अन्य अकवियो की तरह उनकी कविता मे भी ढेर के ढेर वक्तव्य मिल सकते हैं। तकलीफ तब अधिक होती है जब उनके वक्तव्य भी अन्तर्विरोध युक्त दिखलाई देते हैं। यह अकारण नही है। असल मे 'मोना' के मन मे 'पुरुष इतिहास को अत कर देनी की इच्छा विद्रोह बनकर

उमड़ती घुमड़ती है और वे अस्वीकार को अपनाती हैं, किन्तु वही निषेध जब अभिव्यक्ति का द्वार खटखटाता है तो उसकी उल्टी स्थिति हो जाती है। इसके साथ ही यह बात भी उल्लेख्य है कि अन्य अकवितावादियों की तरह ही 'मोना' की कविताओं मे भी श्रमहीनता, अन्तर्विरोध और अकाव्यात्मकता पर्याप्त मात्रा मे मिलती है। यही कारण है कि बावजूद साहसिकता और खुलेपन के 'मोना' की अधिकाश कविताओं का प्रारम्भ मध्य से और मध्य अन्त और प्रारम्भ दोनो से कटकर सामने आता है। *कविता टुकड़े-टुकड़े हो जाती है और इस स्थिति म कविता का हर टुकड़ा एक दूसरे से इतना अलग पड़ जाता है कि पाठक भी अपनी समझ और सवेदना से उस दूरी को भर नहीं पाता है।* फिर भी 'मोना' के हक मे इतना कहा जा सकता है कि उनकी कविताओं में जो भी सदर्भ हैं, सदर्भों के टुकड़े हैं वे कम से कम विविधात्मक *तो हैं—मानवीय उपस्थिति के सूचक तो हैं,* किन्तु 'विजप' सग्रह म तो यह भी नही है। 'विजप' की कविताए हो या *'इतिहास हता' की उनमे किसी ठोस मानवीय परिवेश* को तलाशना उतना ही मुश्किल है जितना चतुर्वेदी की कविताओं के ढेर मे से कोई सही कविता पा लेना।

अक्सर कहा गया है कि अकविताए स्थिति से सीधी टकराती हैं। लेकिन मैं पूछता हूँ कि क्या टकराहट कोई एकदम बाहरी चीज है? क्या उसका भीतर की टकराहट से कोई सम्बन्ध नहीं है? मैं समझता हूँ कि कविता कोई भी हो, यदि वह परिवेश से बँधी हुई है तो वह तभी सफल मानी जायेगी जब वह कही भीतर टकराये, कुछ सोचने को विवश करे और व्यक्ति-चेतना को छीलते हुए सवेद्यता की ओर बढ़े। हाँ, उसकी संवेद्यता तभी समव है जब वह खुद बोले, कवि नही। जगदीश, परमार और विमल सभी ने अकविताओं को परपरा से परे की कविताए कहा है। इस कथन के प्रमाणीकरण के लिए यदि 'विजप' की कविताओं को टटोलें तो जाहिर होगा कि परपरा से सबसे ज्यादा लगाव जगदीश चतुर्वेदी को ही है। यही वजह है कि कही-कही तो उनकी कविताए अतिरोमानी और अतिछायावादी भी हो गई हैं। उनमे खासा रागबोध है। यो यह बुरा नहीं है और इससे छुटकारा पा लेना भी आसान नही है, किन्तु जब कवि वक्तव्यों म रागबोध का निषेध करे तो *सोचना पड़ता है।*[1] मुझे *तो लगता है कि अकविता का रचना-ससार इन कवियो का* निजी ससार है। पिछले दो दशको में जो कविता सामने आई है, वह प्राय निजी परिवेश को तोड़कर लिखी गई है क्योकि बाहरी परिवेश की जटिलता आतरिक जटिलता की हमसाया बनकर या उससे टकराती हुई कवि चेतना के गोदामो म जमा होती रही है और जन्म देती रही है सशक्त कविताओ को। पर एसा उनके साथ ही हुआ है जो सही कवि हैं या उन कविताओ मे हुआ है जो सही कवियो द्वारा ईमानदार शैली म लिखी गई हैं। क्या राजनीति, क्या समाज, क्या धर्म क्या अन्तर्राष्ट्रीय सदर्भ सभी हमारी चेतना के गोलक मे प्रभाव-वृत्त बनाते हैं। सवेदनशील कवि के लिए इनसे बच पाना नामुमकिन नहीं तो मुश्किल जरूर है, पर अकवितागुट के कवियों

के लिए इस तरह के परिवेश और विसगतियो भरी जटिलता को दरगुजर करने में कमाल हासिल है। य कवि ऐसे परिवेश के साक्षात्कार से साफ दामन बचा गये हैं और चले गये हैं उस जगल म जहां "औरत की नाभि के नीचे/शून्य मे मानव नियति/स्तम्भन आकार गढने मे सलग्न'/है या फिर वहां जहां 'मनुष्य लावे से सराबोर हो ज्वालामुखी सा धधकता है और कौमार्य-भग की अतृप्ति से भरकर बदहवास लौट आता है"। अतः अधिकाश अकविताएं सकीर्ण, परिवेश से कटी हुई और मानवीय अनुपस्थिति और मानवीय-तनाव-रहित सदर्भों की कविताएं हैं। य मनुभूतियो की दरिद्रता, कवियों की निजी विकृतियो और ध्वस्त पस्त मनस्थितियो की कविताएं है। य चौंकाती भर है, सवेद्य ये नही है। बहुत सोचने के बाद भी यही कहा जा सकता है कि अकवितावादी निर्मम वास्तविकताओ के कवि नही है। 'सजेस्टिवटी को ये लोग खा गये हैं और सपाटबयानी का इतना नगा-कर गये हैं कि कविता कविता नही रही है, व्यभिचार या ढकोसला हो गई है।

सहज कविता : नयी कविता की पुनर्प्रस्तुति

जब 'सहज कविता' की घोषणा हुई तब काव्य वातावरण विक्षुब्ध, सन्त्रस्त, विघटित, आवेशयुक्त और उन्मादयुक्त था। कविता तमाशा बन गई थी और कवियो के मानस में सृजन कम और चमत्कृति व विध्वस के तत्व अड्डा जमाये बैठे थे। 'सहज कविता' की उद्घोषणा के लिए ऐसा वातावरण तो उपयुक्त न था किन्तु आवश्यकता इसकी जरूर थी। सहज कविता का नारा 1967 मे लगाया गया और 1968 मे डॉ० रवीन्द्र भ्रमर के सम्पादकत्व मे इसका काव्य-सग्रह प्रकाशित हुआ। इस चयन म अज्ञेय, दिनकर, नगेन्द्र आदि की प्रतिक्रियाओ को भी जगह दी गई। 'सहज कविता' की स्थापना के सम्बन्ध मे डॉ० कुमार विमल डॉ० परमानद श्रीवास्तव, राजेन्द्रप्रसाद सिंह, श्रीकात जोशी और डॉ० श्यामसुन्दर घोष के लेख भी प्रकाशित किये गये। यो तो अन्य काव्यान्दोलनो की तरह यह भी एक आन्दोलन ही था, पर उस समय के वातावरण को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि यह आन्दोलन होकर भी कविता की आत्मा की बात कर रहा था। इसके प्रसिद्ध व्याख्याता डॉ० रवीन्द्र भ्रमर थे जिन्होंने अपने लम्बे चौडे वक्तव्यों मे जो कहा था वह ठीक तो था, पर अभिनव नही था। ये बातें नयी कविता के सदर्भ से कही जा चुकी थी अथवा कहे कि बाढ़ का पानी उतरने के बाद की शाति के समान उभरे सच्चे नये कवि इन तथ्यो को समझते थे—समझाते थे और कविता लिखते थे। स्पष्टीकरण के लिए डॉ० रवीन्द्रभ्रमर के कुछ वक्तव्याश ये हैं :

(1) 'टेढी निरर्थक रेखा खीचना आसान है, किन्तु सहज सार्थक रेखा खीचना मुश्किल है। 'सहज कविता' इसी मुश्किल काम को ले रही है। सन् 1960 के बाद एक वर्ग ने 'मैनरिज्म' और 'क्राफ्टमैनशिप' को ही मूल लक्ष्य माना और हिन्दी कविता कुल मिलाकर टेढ़ी रेखाओ के व्यापार के रूप म सामने

आई। इसलिए वह फैशन रही है और इसीलिए बहुत अर्थपूर्ण भी नही। इस बीच जो नये-नये नाम अथवा नारे कविता के क्षेत्र मे उछाले गये उनके मूल मे स्वस्थ-सृजन की प्रवृत्ति उतनी नही रही जितनी कि उन नारों को उछालने वाले व्यक्ति अथवा व्यक्ति-समूह को प्रचारित करने का कौतुक। कविता के इन तथाकथित सूत्रधारो ने या तो मरे हुए विदेशी आन्दोलनो का आयात किया है या फिर अनास्था और हीनतापूर्ण दलीलें पेश करके नई पीढी को गुमराह करने की साजिश की है। अतएव आज एक ओर तो कुंठाएँ और विकृतियाँ हैं और दूसरी ओर चमत्कार एव अनुकरणमूलक प्रवृत्तियाँ जिनके कुहासे म कविता गुम है। *'सहज कविता' नये सिरे से* कविता की खोज करना चाहती है।'

(ii) "असगतियो और असहजताओ को 'सहज कविता' आक्रोशपूर्वक अस्वीकार करती है • अभिव्यक्ति तथा रचना के स्तर पर अनपेक्षित मैनरिज्म और अनिरिक्त कौशल का तथा भावानुभूति के स्तर पर मरणशील निराशा एव पतनोन्मुख यौनाचार आदि का निषेध करती है।'

(iii) "जो रचना यथार्थ अनुभूति-सवेग के साथ वाणी के मूर्त माध्यम म जन्म लती है, वह सहज है। इस दृष्टि से अनुभूति की प्रामाणिकता प्राथमिक वस्तु है।

(iv) "सहज कविता की माँग व्यष्टिमूलक होते हुए भी समाज-सापेक्ष है। ऐसी कोई भी अभिव्यक्ति अथवा भाव सरचना, जिससे मानवीय आस्था और मर्यादा के विघटन का बोध होता हो, असहज और अस्वाभाविक कही जाती है। 'सहज कविता' इस तथ्य को एक बार पुन रेखाकित करना चाहती है।"

(v) 'सहज कविता वस्तुत सार्थक कविता की दिशा मे एक मगलकारी प्रस्थान है। "" आज की विषम काव्य-परिस्थितियो मे वह कविता की खोज मात्र है।"" सहज कविता विवेक और सतुलन बनाये रखने की माँग है। वह दायित्व बोध की कविता है। जीवन और समाज से वह प्रतिबद्धता अनुभव करती है। उत्पीडन और शोषण के जो दायरे हैं, उन पर वह पूरी शक्ति के साथ प्रहार करना चाहती है। जड मूल्यो और निर्जीव मर्यादाओ को उखाड फैंकना चाहती है, लेकिन वैचारिक और सर्जनात्मक स्तर पर शिष्टता और अनुशासन भी बनाये रखना चाहती है।"

(vi) 'सहज कविता ने सार्थक कविता का भी सवाल उठाया है। जिसे सहज होना है उसे सार्थक भी होना है।" सहज कविता अकृत्रिम अनुभूति के अजटिल किन्तु सार्थक और सप्राण रेखाकन पर बल देती है। अनुभूति वास्तविक हो अभिव्यक्ति सप्रेषणीय और अथर्गभित हो तो सहज कविता का लक्ष्य निकट उपलब्धि की वस्तु हो जायेगा।"[1]

1 डॉ० रवीन्द्र भ्रमर समकालीन कविता, पृष्ठ 119, 120, 121, 122, 123

'सहज कविता' के ये उपरिनिर्दिष्ट तथ्य नये नही हैं। इनसे जाहिर होता है कि 'सहज कविता' के रूप मे 'नयी कविता' की ही पुनर्प्रस्तुति की गई है। सहज कविता स्वस्थ-सृजन मे विश्वास करती है और नयी कविता भी। 'कवितापन' की बात भी नई नही है दिनकर की 'शुद्ध कविता की खोज' इसी सदर्भ को विश्लेपित करती है। 'अनपेक्षित मैनरिज्म' और 'पतनोन्मुख यौनाचार' का निपेध 50 के बाद की नयी कविता मे भी है। अनुभूति की प्रामाणिकता की बात भी नयी कविता के सदर्भ से उठाई जा चुकी है। चौथा बिन्दु जिसमे व्यष्टिमूलक होते हुए भी समाज-सापेक्ष होने की तथा मानवीय आस्था और मर्यादाबद्ध होने की बात शामिल है, अज्ञेय, सर्वेश्वर, गिरिजाकुमार, जगदीश गुप्त सभी अपनी कविताओ मे कहते रहे हैं। मतलब यह है कि यह भी मौलिक बात नही है। यो भ्रमर जी को यह ज्ञात रहा है तभी तो वाक्य यह लिखा गया है कि ' ' "इस तथ्य को एक बार पुन रेखाकित करना चाहती है।" सहज को साधक से जोडकर मगलकारी प्रस्थान कहना नयी कविता की लोकहितवादी चेतना का ही समर्थन है। विवेक और सतुलन की माँग अज्ञेय भी करते रहे हैं और उनके अनुकरणकर्ता भी। रहा जड मूल्यो और निर्जीव मर्यादाओ को उखाड फेंकने का सवाल यह तो नयी कविता का प्रारभिक और मूल बिन्दु रहा है। हाँ, इस मूलोच्छेदन मे वैचारिक और सर्जनात्मक स्तर पर शिष्टता और अनुशासन बनाये रखने की भावना सर्वेश्वर, गिरिजाकुमार, भारती, अज्ञेय और भवानीप्रसाद मिश्र आदि सभी में मिलती है। अनुभूति की वास्तविकता, अभिव्यक्ति की सप्रेपणीयता और अर्थवत्ता तो नयी कविता का उल्लेख्य बिन्दु है ही। अज्ञेय का काव्य इसका जीवत प्रमाण है।

मेरे कहने का तात्पर्य यही है कि 'सहज कविता' की सभी मान्यताएँ और स्थापनाएँ नयी कविता की ही मान्यताएँ हैं। इनमे एक भी बात ऐसी नही जिसके सहारे 'सहज कविता' का नयी कविता मे कोई पृथक् अस्तित्व प्रमाणित होता हो। कथ्य, शिल्प और सवेदना तीनो के धरातल पर रवीन्द्र भ्रमर द्वारा उद्घोषित 'सहज कविता' 'नयी कविता' की आत्मा लेकर ही आई हुई कविता धारा थी। इसके सारे लक्षण-उपलक्षण वही थे। अत इसे नयी कविता की पुनर्प्रस्तुति ही कहा जाना चाहिए। इससे एक लाभ यह अवश्य हुआ कि कवियो ने कविता को एक उत्तरदायित्वपूर्ण कर्म और यथार्थ परिवेश की व्यजना का सही माध्यम मानकर अच्छी रचनाएँ देना शुरू कर दिया।

गुट निरपेक्ष और सही समझ के समकालीन कवि

कविता कोई फतवा नहीं है, बेमेल शब्दो का सयोजन नही है। वह एक उत्तरदायित्व पूर्ण कर्म है। एक अर्थ म वह जीवन की परिभाषा है। अत गुटो मे कैद होकर वह अपना कर्म भी खो बैठी है और अपनी परिभाषा को भी कलुपित करती रही है। प्रतिष्ठानों म बैंटकर ख्याति अर्जित करने की कामना वाला नुस्खा भी कामयाबी नही दिला सका है। हाँ एक बात सही है कि नयी कविता मे भाषा के

आई। इसलिए वह फैशन रही है और इसीलिए बहुत अर्थपूर्ण भी नही। इस बीच जो नये-नये नाम अथवा नारे कविता के क्षेत्र मे उछाले गये उनके मूल मे स्वस्थ-सृजन की प्रवृत्ति उतनी नही रही जितनी कि उन नारो को उछालने वाले व्यक्ति अथवा व्यक्ति-समूह को प्रचारित करने का कौतुक। कविता के इन तथाकथित सूत्रधारो ने या तो मरे हुए विदेशी आन्दोलनो का आयात किया है या फिर अनास्था और हीनतापूर्ण दलीलें पेश करके नई पीढी को गुमराह करने की साजिश की है।...... अतएव आज एक ओर तो कुंठाएं और विकृतियाँ हैं और दूसरी ओर चमत्कार एव अनुकरणमूलक प्रवृत्तियाँ जिनके कुहासे मे कविता गुम है। 'सहज कविता' नये सिरे से कविता की खोज करना चाहती है।"

(ii) "असगतियों और असहजताओ को 'सहज कविता' आक्रोशपूर्वक अस्वीकार करती है.........अभिव्यक्ति तथा रचना के स्तर पर अनपेक्षित मैनरिज्म और अनिरिक्त कौशल का तथा भावानुभूति के स्तर पर मरणशील निराशा एव पतनोन्मुख यौनाचार आदि का निषेध करती है।"

(iii) "जो रचना यथार्थ अनुभूति-सवेग के साथ वाणी के मूर्त माध्यम मे जन्म लेती है, वह सहज है। इस दृष्टि से अनुभूति की प्रामाणिकता प्राथमिक वस्तु है।

(iv) "सहज कविता की माँग व्यष्टिमूलक होते हुए भी समाज-सापेक्ष है। ऐसी कोई भी अभिव्यक्ति अथवा भाव-सरचना, जिससे मानवीय आस्था और मर्यादा के विघटन का बोध होना हो, असहज और अस्वाभाविक कही जाती है। 'सहज कविता' इस तथ्य को एक बार पुन रेखांकित करना चाहती है।"

(v) "सहज कविता वस्तुत सार्थक कविता की दिशा मे एक मगलकारी प्रस्थान है।......... आज की विषम काव्य-परिस्थितियो मे वह कविता की खोज मात्र है।.........सहज कविता विवेक और सतुलन बनाये रखने की माँग है। वह दायित्व बोध की कविता है। जीवन और समाज से वह प्रतिबद्धता अनुभव करती है। उत्पीडन और शोषण के जो दायरे हैं, उन पर वह पूरी शक्ति के साथ प्रहार करना चाहती है। जड मूल्यो और निर्जीव मर्यादाओ को उखाड फेंकना चाहती है, लेकिन वैचारिक और सर्जनात्मक स्तर पर शिष्टता और अनुशासन भी बनाये रखना चाहती है।"

(vi) "सहज कविता ने सार्थक कविता का भी सवाल उठाया है। जिसे सहज होना है उसे सार्थक भी होना है।...... सहज कविता अकृत्रिम अनुभूति के अजटिल किन्तु सार्थक और सप्राण रेखाकन पर बल देती है। अनुभूति वास्तविक हो, अभिव्यक्ति सप्रेषणीय और अर्थगर्भित हो तो सहज कविता का लक्ष्य निकट उपलब्धि की वस्तु हो जायेगा।"[1]

---

1 डॉ० रवीन्द्र भ्रमर : समकालीन कविता ; पृष्ठ 119, 120, 121, 122,123

'सहज कविता' के ये उपरिनिर्दिष्ट तथ्य नये नही हैं। इनसे जाहिर होता है कि 'सहज कविता' के रूप मे 'नयी कविता' की ही पुनर्प्रस्तुति की गई है। सहज कविता स्वस्थ सृजन में विश्वास करती है ग्रौर नयी कविता भी। 'कवितापन' की बात भी नई नहीं है दिनकर की 'शुद्ध कविता की खोज' इसी सदर्भ को विश्लेपित करती है। 'ग्रनपेक्षित मैनरिज्म' ग्रौर 'पतनोन्मुख यौनाचार' का निपेध 50 के बाद की नयी कविता मे भी है। ग्रनुभूति की प्रामाणिकता की बात भी नयी कविता के सदर्भ से उठाई जा चुकी है। चौथा बिन्दु जिसम व्यष्टिमूलक होते हुए भी समाज-सापेक्ष होने की तथा मानवीय ग्रास्था ग्रौर मर्यादाबद्ध होने की बात शामिल है; ग्रज्ञेय, सर्वेश्वर, गिरिजाकुमार, जगदीश गुप्त सभी ग्रपनी कविताग्रो मे कहते रहे हैं। मतलब यह है कि यह भी मौलिक बात नही है। यो भ्रमर जी को यह ज्ञात रहा है तभी तो वाक्य यह लिखा गया है कि "इस तथ्य को एक बार पुन रेखाकित करना चाहती है।" सहज को सायक से जोडकर मगलकारी प्रस्थान कहना नयी कविता की लोकहितवादी चेतना का ही समर्थन है। विवेक ग्रौर सतुलन की माँग ग्रज्ञेय भी करते रहे हैं ग्रौर उनके ग्रनुकरणकर्ता भी। रहा जड मूल्यो ग्रौर निर्जीव मर्यादाग्रो को उखाड फैंकने का सवाल यह तो नयी कविता का प्रारभिक ग्रौर मूल बिन्दु रहा है। हाँ, इस मूलोच्छेदन मे वैचारिक ग्रौर सर्जनात्मक स्तर पर शिष्टता ग्रौर ग्रनुशासन बनाये रखने की भावना सर्वेश्वर, गिरिजाकुमार, भारती, ग्रज्ञेय ग्रौर भवानीप्रसाद मिश्र ग्रादि सभी मे मिलती है। ग्रनुभूति की वास्तविकता, ग्रभिव्यक्ति की सप्रेपणीयता ग्रौर ग्रर्थवत्ता तो नयी कविता का उल्लेख्य बिन्दु है ही। ग्रज्ञेय का काव्य इसका जीवत प्रमाण है।

मेरे कहने का तात्पर्य यही है कि 'सहज कविता' की सभी मान्यताएँ ग्रौर स्थापनाएँ नयी कविता की ही मान्यताएँ हैं। इनमे एक भी बात ऐसी नही जिसके सहारे 'सहज कविता' का नयी कविता मे कोई पृथक् ग्रस्तित्व प्रमाणित होता हो। कथ्य, शिल्प ग्रौर सवेदना तीनो के धरातल पर रवीन्द्र भ्रमर द्वारा उद्घोपित 'सहज कविता' 'नयी कविता' की ग्रात्मा लेकर ही ग्राई हुई कविता धारा थी। इसके सारे लक्षण-उपलक्षण वही थे। ग्रत इसे नयी कविता की पुनर्प्रस्तुति ही कहा जाना चाहिए। इससे एक लाभ यह ग्रवश्य हुग्रा कि कवियो ने कविता को एक उत्तर-दायित्वपूर्ण कर्म ग्रौर यथार्थ परिवेश की व्यजना का सही माध्यम मानकर ग्रच्छी रचनाएँ देना शुरू कर दिया।

गुट निरपेक्ष ग्रौर सही समझ के समकालीन कवि

कविता कोई फतवा नही है, बेमेल शब्दो का सयोजन नही है। वह एक उत्तरदायित्व पूर्ण कर्म है। एक ग्रर्थ मे वह जीवन की परिभाषा है। ग्रत. गुटो मे कैद होकर वह ग्रपना कर्म भी खो बैठी है ग्रौर ग्रपनी परिभाषा को भी कलुषित करती रही है। प्रतिष्ठानो मे बैठकर ख्याति ग्रर्जित करने की कामना वाला नुस्खा भी कामयाबी नही दिला सका है। हाँ एक बात सही है कि नयी कविता मे भाषा के

क्षेत्र मे जो रूढि बनती जा रही थी, उससे मुक्ति दिलाने का काम कुछेक सही समझ वाले साठोत्तर कवियो ने अवश्य किया है। ध्यान रहे यह तभी हो सका है जबकि इन्होंने गुटबन्दी का मोह छोड दिया है। कविता कविधर्म को रेखांकित करती है, तभी तो कितने ही ऐसे कवि हैं जो इस गुटबाजी का सेहरा ओढना पसन्द नही करते हैं और इन सारी बातो पर थूकते हुए दो टूक बात कहकर अपने कवि—कर्म की सचाई का सकेत देते हैं। आज कवि वह है जो दायरों और शिविरो से अलग रहकर अपने जीवनगत असतोष, आक्रोश और मानव सम्बन्धो की असम्बद्धता को रचनात्मक स्तर पर व्यक्त करता है। जो वाकई असतोष है, जो भोगी हुई यातना है, वह सही अभिव्यक्ति पा ही जाती है, किन्तु कवि जब जीवन की स्थितियों को आरापित कर लेता है तब उनसे सजी कविताओ का कोई रक्तचाप नही होता है और ऐसी रक्तचाप हीन कविताओं की जिन्दगी उतने ही कम क्षणो की होती है जितनी उन कविताओ की जो आक्रोश के रूप म लिखी जाती हैं या गुटो के सीखचो म बद होने के कारण असली जुबान मे नही बोल पाती हैं।

जिन्दगी म जो यत्रणा व्याप्त है जो गहरा असतोष व निराशा है और जो अनिश्चय ग्रस्त मानस है उसकी सही किन्तु रचनात्मक व्यजना करने वालो म करीब डेढ दर्जन साठोत्तर कवि हैं। इनका अपना ढग है और उसम बनावट कम है, बुनावट अधिक है। वह काव्य-क्षेत्र म बनी रूढियो से हट कर है। जिन कवियो ने सही साठोत्तर कविता को प्रस्तुत किया है और जो जीवन की विविध स्थितियो के सर्जक हैं, उनमे श्रीकात वर्मा, कैलाश वाजपेयी रघुवीर सहाय, दूधनाथ सिंह, मलयज, श्याम विमल, धूमिल, जगूडी प्रयाग शुक्ल, श्रीराम वर्मा, नयी कविता के सर्वेश्वर, सौमित्र मोहन (जो अकविता की तर्ज को तिलाजलि देकर आये हैं) विनय, चन्द्रकात देवताले, विजेन्द्र, ऋतुराज, राजीव सक्सेना, बलदेव वशी मणि मधुकर, जयसिंह नीरज, रमेश गौड, डॉ० माहेश्वर और विश्वभर उपाध्याय आदि के नाम लिया जा सकता है।[1] इनमे से अधिकाश की चर्चा मैंने अपनी कृति पुनश्च में की है। हाँ; विनय, चन्द्रकात देवताले, बलदेव वशी और जगूडी की चर्चा यहाँ अपेक्षित है क्योकि एक तो इन्होने पिछले सात आठ वर्षों मे अपने सृजन को अधिकाधिक ईमानदारी से प्रस्तुत किया है दूसरे इनकी चर्चा भी पुनश्च में नही है। मेरी दृष्टि म ये समकालीन कविता की सही पहचान करान वाले कवि हैं। इन्होने कोरे विरोध और कोरे अस्वीकार को नही अपनाया है। इनका अस्वीकार जीवत है सकारण है, रचनात्मकता उसमे है। यही वजह है कि इनकी कविताओ म मनुष्य, उसकी स्थितिया और समय की शिला पर पडे निशानो को पकडा गया है, जिन्दगी के साक्षात्कृत अनुभव कवितायद्ध किये गये हैं। अत जो सही समझ की साठोत्तर कविता है उसमें पूर्णत कल्पित, आरोपित और अद्वितीय की तलाश नही की गई है वरन् जो सामने है और हो रहा है, उसे ही रचनात्मक स्तर पर खुलासा करके कहा गया है। इस समकालीन कविता

के साथ-साथ चलते हुए हम वर्तमान को देख समझ सकते हैं और पा सकते हैं, उस परिदृश्य को जिसमें जीते-मरते, लड़ते-झगड़ते, बौखलाते-बिसूरते, तड़पते-कसकते और हर ठोकर पर एक जोड़ी दर्द की गाँठ बाँधते, किन्तु फिर भी जीते आदमी की 'एक्सरे प्लेट्स' हैं। परिवर्तन की चोट सहकर लिखी गई यह कविता न केवल कविता है अपितु एक ऐसी बही है जिसमें हर आदमी जाने-अनजाने कोई न कोई वरक जोड़ता रहा है। पिछले वर्षों में जिन्दगी की इस 'बही' में अपनी उपस्थिति बतलाता हुआ भी आदमी यहाँ से कितना गैर हाजिर रहा है, कितना टूट टूटकर बिखरा है और कितना बेबस और लाचार होकर जीता रहा है, कितने ऐसे शीर्षक हैं जिनमें बँटता हुआ वह यहाँ-वहाँ भटका है, यह सब समकालीन कविता के बहीखाते के पन्नों में पढ़ा जा सकता है।

पहले लीलाधर जगूड़ी को लीजिए। जगूड़ी सातवें दशक से कवि रूप में उभरे और धीरे-धीरे विद्रोही कविता के अच्छे कवि के रूप में सामने आये हैं। इन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से राजनीतिक, सामाजिक और व्यवस्था जनित स्थितियों को कविता का विषय बनाया है। 'नाटक जारी है' काव्य सग्रह जगूड़ी की सशक्त और प्रभावी कविताओं का सग्रह है। जिस प्रकार धूमिल की 'पटकथा' और 'मोचीराम' कविताएँ प्रसिद्ध हुई है, उसी प्रकार जगूड़ी की 'इस व्यवस्था में' कविता प्रसिद्ध हुई। कविता का शीर्षक ही इस बात को सकेतित करता है कि कवि ने कविता के दौरान उस व्यवस्था का दिग्दर्शन कराया है जिसमें आज हम रह रहे हैं अथवा रहने के लिए अभिशप्त हैं। यह वह कविता है जो वर्तमान राजनैतिक परिदृश्य और व्यवस्था की अव्यवस्था को जितना बेपर्द शैली में उद्घाटित करती है, उतना ही सामाजिक विकृतियों, विसगतियों, जर्जर स्थितियों, दमघोटू सदर्भों और जीवन की बिडम्बनाओं को भी उजागर करती है।

कवि ने कविता लेखन के दौरान कोई क्रम नहीं रखा है क्योंकि वह जानता है कि हमारी राजनैतिक और सामाजिक व्यवस्था ही क्रमबद्ध नहीं है। अनेक स्थितियों अन्तर्विरोधों और सम्बद्ध असम्बद्ध मन स्थितियों के जोड़ से बनाकर लिखी गयी यह कविता सममामयिक परिवेश का जीता जागता बिम्ब प्रस्तुत करती है। यह एक ऐसी कविता है जिसको सही अर्थों में हृदयगम करने के लिये आवश्यक है कि पाठक उस सामाजिक चेतना से अवगत हो जिसमें वह रह रहा है। जगूड़ी ने कविता में सभी स्थितियों का ब्यौरा नहीं दिया है, अपितु सकेत दिया है। जहाँ वे ब्यौरा दे गये हैं, वहीं कविता स्तर से गिरने लगी है। कविता का प्रारम्भ भी इस ढग से हुआ है कि बिना सामाजिक चेतना की पकड़ के उसे समझा ही नहीं जा सकता है। कवि कहता है तमाम चीजों को नगा करके / जाँघों से छाती तक दंगा करके / माँस के खेत में आदमी की जड़ रोक कर / हमेशा पूर्वान्त हुआ है / जिन्दा रहने की जेब में खर्च करने के लिए / जीवन एक अनावश्यक सस्ता है" / जगूड़ी का मूल स्वर उनकी क्रांति जनित मानसिकता से जुड़ा है। वह एक साथ अनेक स्थितियों पर चोट

करता है और वह भी एक ऐसी चोट जो अन्दर तक घायल कर देती है किन्तु पूरी कविता को पढ़ने पर स्पष्ट होता है कि यह कविता टिप्पणियों, सरलीकृत सत्यों, पर्यवेक्षणों, साक्षात्कृत स्थितियों और क्रांतिधर्मी चेतना से भरी पड़ी है। ये सभी स्थितियाँ कविता में मुक्तिबोध की कविताओं की तरह रुक-रुक कर धैर्य के साथ पढ़ी जाने की माँग करती हैं। यह ठीक है कि कविता में रोचक सदर्भ हैं, यथार्थ स्थितियों का निर्मम अकन है और इस तरह एक पूरा परिदृश्य पाठक की आँखों के सामने झूल जाता है, किन्तु रुक-रुक पढना इसलिये जरूरी है कि ऐसा किये बिना कविता की आत्मा में स्पन्दित धड़कनों को पकड़ा ही नहीं जा सकता। जगूडी का कौशल इस बात में है कि उन्होंने अपनी कविता को बावजूद पूरी दीर्घता के दिलचस्प बनाए रखा है। अलग-अलग टुकड़ों और टिप्पणियों को जोड़कर जो विशद फलक तैयार किया गया है, वह ऐसा है जो कवि की अनुभव-यात्रा से बनी सूक्ष्म अनुभूतियों का निष्कर्ष है। यह भी ठीक है कि जगूडी ने यथार्थ को अपनी तीखी नजर से पकड़कर छोटे-छोटे सदर्भों के रूप में प्रस्तुत किया है और इस प्रयास में उसे एक हद तक सफलता भी मिली है किन्तु इसी से कई टुकड़े और कई सन्दर्भ वक्तव्य होकर प्रगट हुये हैं। यह वक्तव्यपरकता इस दौर की अधिकांश कविताओं में मिलती है और इसका कारण परिवेश में ही खोजा जा सकता है। यों जगूडी ने परिवेश में व्याप्त पाखण्ड दम्भ, अन्याय, शोषण, मिथ्या आश्वासन और कुरूपताओं को प्रस्तुत किया है तथा ईमानदार व्यंजनाएँ दी हैं, किन्तु ये व्यंजनाएँ कहीं-कहीं अकाव्यात्मक भी हो गयी हैं।

यथार्थ को प्रस्तुत करने की धुन में आई वक्तव्यपरकता और अकाव्यात्मक स्थितियाँ उनकी 'नाटक जारी है' कविता में भी उपलब्ध हैं। 'नाटक जारी है' कविता में समकालीन मनुष्य के निम्नमध्यवर्गीय यथार्थ को पूरे दबाव, तनाव और घुटन भरे सदर्भों के साथ प्रस्तुत किया गया है। यह ठीक है कि इस कविता में एक यथार्थ परिवेश उभर कर सामने आया है, किन्तु कवि ने इस प्रक्रिया में सामाजिक सघटना के उस पहलू को सही रूप में नहीं उभारा है जो अनेक अन्तर्विरोधों और आन्तरिक दबावों के कारण समूची मानव-जाति के सम्बधों के परिवर्तित स्वरूप को उजागर करता है। इसका कारण कविता में आई वह प्रवृत्ति है जो ब्योरों में विश्वास करती है। कविता का प्रारम्भ जिस साहसिक मन स्थिति और मध्यवर्गीय व्यक्ति के चेहरे का उजागर करता है, वह व्यक्तव्यपरकता और गद्यपृथुल स्थितियों के कारण अधिक प्रभावित नहीं कर पाता है। डॉ० राजकुमार शर्मा ने इस सम्बन्ध में ठीक निष्कर्ष प्रस्तुत किया है "वैज्ञानिक समझ का यह अभाव, सामाजिक यथार्थ के विशिष्ट वस्तुपरक सदर्भ और रचनाकार की सामान्य चेतना के बीच एक गहरा अन्तराल पैदा कर कविता के केन्द्रीय प्रश्न को उसकी जमीन से, उसके अनुभव के मूल से अलग कर देता है। यथार्थ के विशिष्ट बिम्ब देते समय कवि प्रभावित करता सा लगता है किन्तु उस यथार्थ के प्रति आलोचनात्मक रुख

मन्नियार करते हो उसकी समझ की सीमा स्पष्ट होने लगती है। इस तरह अनुभव पक्ष तथा चिन्तनपक्ष की अलगाव भरी समानांतरता के कारण कविता की सरचना मे बिखराव साफ तौर पर दिखने लगता है।"[1]

अनुभव श्रौर चिन्तन के बीच का यह अ तराल अनुभवो की शृ खला मे तो फाक पैदा करता ही है, उस अनुभव से किसी बडी सच्चाई तक या उस सच्चाई से उभरी यथार्थ दृष्टि को भी धूमिल कर देता है। हाँ इस कविता मे कही-कही विशिष्टता भी उभरी है श्रौर यह उन स्थलो पर जहाँ कवि ने टुकडे-टुकडे होती जा रही जिन्दगी के बिम्ब प्रस्तुत किये हैं या जहाँ आदमी का असली चेहरा, उस पर उभरे चोटो के निशानो को लिये उपस्थित हुआ है। कारण, यह स्थिति श्रौर इसका दर्द ऐसे स्थलो पर सामूहिक पीडा का प्रतिरूप बनकर आया है "यद्यपि मौजूदा दृश्य के पीछे/ हाहाकार कोरस की तरह बज रहा है/ फिर भी गौर से सुनें/ उसमे बहुत अप्रिय स्वर वाला एक पुराना बाजा है/ जो हमारे अज्ञान श्रौर हमारी गरीबी को/ सस्कृति की तरह अलापता है/ श्रौर खारिज अपीलो वाले समूचे ससार को/ एक सजायाफ्ता राग म बदल देता है।" ऐसे स्थलो पर दर्द की निजता सामूहिक पीडा का बिम्ब देने के कारण कवि की मानवीय सवेदना को प्रकट करती है। निजता के घेरे से निकल कर कवि जब बाहरी परिवेश मे किसी अर्थ की तलाशता है तो अनेक प्रश्न-उपप्रश्न श्रौर आतरिक जिज्ञासाए उससे यह कहलाती हैं "मजिलो श्रौर इरादो के बीच/ सडकें किसी को नही मिला रही हैं/ वे कौन से जगल हैं/ जिनमे मेरी वास्तविकता मिट्टी है/ मेरी उँगलियाँ/ टहनियो की तरह फूटकर/ शरीर के भीतर जो बगीचे के अ श हैं/ उन्हें सारी छटपटाहट के बाद भी/ नही खिला रही हैं।" 37 वदो म लिखी गई यह कविता यदि कुछ छोटी होती तो ज्यादा प्रभावी हो सकती थी फिर इसकी विस्तरित परिधि मे वक्तव्यपरकता कम होती श्रौर कवि जीवन की स्थितियो को एक सघटना देकर अपनी वैज्ञानिक चिन्तना को उजागर कर सकता था। इससे अधिक व्यवस्थित श्रौर सघन्ति रचना 'बलदेव खटिक' है।

'बलदेव खटिक' जगूडी के 'बची हुई पृथ्वी' कविता सग्रह (1977) की सशक्त कविता है। इस कविता के केन्द्र मे एक ऐसा पात्र है जो पुलिस-व्यवस्था की अमानवीय, भ्रष्ट श्रौर विसगत स्थितियो को उजागर करता है। प्रारम्भ से अ त तक कविता पूरी तरह व्यवस्थित है। इसमे न कही कोई दरार है, न वक्तव्यपरकता श्रौर न कही भाषायी लटके हैं। इस कविता मे कवि की मुख्य चिन्ता यह रही है कि "*इस वक्त कहाँ से/ लाये जायें ऐसे शब्द/ जो हलफनामा बन सकें/ जो तरफदारी कर सकें*"/ जगूडी ने इस कविता मे रगतू श्रौर 'बलदेव खटिक' जैसे दो पात्रो को प्रस्तुत करते हुए "वास्तविक चरित्रो की सक्रिय सामाजिक सत्ताओ को उभारा है। दरअसल मे ये चरित्र नही, प्रतिरोध के विचारो के साथ जुडी हुई विसगतियो श्रौर त्रासद अनुभवो के बाद लिये जाने वाले निर्णयो के मूर्त रूप है।" 'रगतू' जो कल

1 लम्बी कविताओ का रचना विधान पृष्ठ 190

राशन लूटने मे शरीक था""/ न पेड है न पत्ता है/ न हवा है/ अँधेरे के भीतर दुबका हुआ अँधेरे का कीडा भी नही/ शब्द भी नही/ रगतू एक अकेले आदमी का दर्द है/और अकेला आदमी अपराधी होता है/ सवालो के जत्थे से भरा हुआ अकेला आदमी/ एक दुर्घटना होता है"/ कविता का रगतू कवि की चेतना मे आया एक ऐसा चरित्र है जो मानवीय दुर्घटना को मूर्तित करता है और 'बलदेव खटिक' एक विसगत और विडम्बना पूर्ण जीवन स्थिति का प्रतीक चरित्र है। यह पात्र एक ऐसी व्यवस्था (पुलिस-व्यवस्था) से जुडा हुआ है जो भ्रष्ट, अमानवीय और अत्याचारिता को प्रतीबिंबित करती है; किन्तु उसका मनस्-विद्रोह तब उजागर होता है जब वह देखता है कि पूरी वफादारी के बाद भी उसे इतना हक नही कि वह अपनी बीमार माँ को देखने जा सके, उसे अस्पताल ले जा सके। उसकी चेतना से आवरण हटने लगता है और वह मरते हुए न्याय; मरती हुई ईमानदारी और बढते हुए भ्रष्टाचार को सहन नही कर पाता है। उसकी शिरायें तनती हैं; आतरिक दबाव फूटता है और आक्रोश के चरम क्षणो मे वह धडाधड फायर करता हुआ सडक पर मरे कौवो को लाँघकर फरार हो जाता है। जगूडी ने आतरिक और बाह्य दबावो से पीडित व्यक्ति की मनस्थिति का सही बिम्ब प्रस्तुत किया है :

"उसके सिर पर टोपी नहीं है
कमीज हाफ पैन्ट से बाहर आ गई है
वह हरेक औरत से पूछता है तुमको क्या बीमारी है?
अस्पताल तक पैदल चलो/ गाड़ी खराब है........"

बलदेव खटिक की इस स्थिति को निरूपित करने के पीछे कवि का उद्देश्य परिवेश की भ्रष्टता; क्रूरता और ओछी राजनीति के स्वरूप को प्रस्तुत करना रहा है। कविता के बीच-बीच मे ग्राम्य परिवेश का यथार्थ, सरकारी कर्मचारियो की दिखावटी व्यस्तता और पुलिस विभाग की हरामखोरी और भ्रष्ट आदतो पर भी रोशनी डाली गयी है : "एक मार खाया हुआ आदमी चिचियाता है/ मेरा बटुआ छिन गया, उसमे मेरी लडकी का फोटो था/' ....वे उससे बलात्कार करेंगे/ वे उसे मार डालेंगे/ देखिए मुझे कितनी चोटें आई हैं/ मेरा दर्द दर्ज करो/ इस मटीले कागज पर मेरा दर्द—दर्ज करो/ अपने होठो पर मुर्दा दिन को जिन्दा करते हुए/ दीवान कहता है/ किस कलम से करूँ ?/ चाँदी की कलम से करूँ/ सोने की कलम से करूँ/ कि लकडी की कलम से करूँ ?/" कहने की आवश्यकता नही है कि जगूडी की यह कविता एक यथार्थ का सही दस्तावेज है। इसमे एक परिस्थिति का घिनौना रूप अकित है। इसमें जो कथ्य है; वह केवल विसगतियो और विडम्बनाओ का हवाला देने तक ही सीमित नही है। कवि मात्र यही नही बतलाना चाहता कि पीडित और शोषित लोगो की मुक्ति का द्वार मृत्यु ही है। वह सकेत देता है कि तमाम अमानवीय और भ्रष्ट स्थितियो को विद्रोह की अमापी शक्ति से ही दूर किया

जा सकता है। मुक्ति विद्रोह से ही मिल सकती है। कवितात मे यह स्वर साफ है

"आप लोग अपनी परवाह करें
अपने बच्चों की जांच करवायें
यह केवल अफवाह नहीं है
कि देश मे कुछ लोग पेट से ही पागल होकर आरहे हैं
लेकिन जब वे फायर करेंगे
तो यह तय है कि
इस बार कोए नहीं मरेंगे।"

'चन्द्रकात देवताले' भी सातवे दशक के चर्चित कवियो मे से हैं। उनकी कविताओ मे वक्तव्य कम हैं और वक्रता अधिक है। उन्होने प्रत्येक वाक्य मे विचारो को ठूँस-ठूस कर भरने की कोशिश नही की है। कवि का पूरा जोर इस बात पर रहा है कि वह अपने आसपास फैले कटु और त्रासद परिवेश को पूरी निमग्नता के साथ प्रस्तुत कर सके। 'देवताले' ने बाह्य परिवेश की क्रूरता और अव्यवस्थाजनित त्रासदी को या तो अपनी आन्तरिकता से जोडकर प्रभावी शैली म प्रस्तुत किया है या फिर अपनी विवशता को महसूस करते हुए अभिव्यक्ति के दौरान उसकी शैली आग उगलने लगी है। यह आग व्यग्य से पुष्ट हुई है, किन्तु कहीं-कही ऐसा भी हुआ है कि कवि आक्रामक हो गया है। उनके द्वारा रचित 'दृश्य' कविता मे न केवल निर्मम स्थितियो का साक्षात्कार है, अपितु उनकी क्रूर और बेपर्द व्यजना भी है। जब वे कहते हैं कि "गोली से भून दिए जाने के बाद/ ट्रको मे ढोया जा रहा है लाशो को/ आग नही सिर्फ धक्का काफी होगा/ दृश्य के बाहर फैक देने के लिए"/ या फिर जब वे लिखते हैं कि "बाँस के जलते हुए पुल/ कोई नही आना चाहता यहाँ/ सब निरापद जगह ढूँढते हैं/ एक औरत को बाजू मे दबाए/ अखबार लपेटकर लोग अपना/ नगापन छिपा रहे हैं/ और राजनीति/ फिर से अपना जश्न मनाने के लिए बारूद से खेल रही है"/ तो उनकी व्यग्यजनित कटुता और क्रूर साहसिकता को लक्षित किया जा सकता है। कवि अनुभव करता है कि समकालीन परिवेश कितना त्रासद और भयावह हो गया है कि उसकी कविता; उसके वक्तव्य किटकिटाते दांतो के बीच बेवकूफ की तरह उसी पर हँस रहे हैं। यह वह स्थिति है जो कवि को अन्दर तक झिझोड देती है और कवि है कि इसे सही शब्द नही दे पाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि चन्द्रकान्त देवताले की कविताएँ एक साहसिक और अनुभूति प्रवण कवि की ईमानदार कविताएँ हैं। उनमे आक्रामक मुद्रा है, हम लावरी तेवर हैं और है कडवापन, किन्तु उन्होने कविता के दौरान कही भी अपने इन तेवरो को आवरण के साथ प्रस्तुत नही किया है। जहाँ उनकी कविताओ म व्यग्य है, वहाँ एक तिलमिलाहट है। वे व्यग्य के दौरान उसे अधिक प्रभावी बनाने के लिए अनुभूति का ताप उसम मिलाते रहे हैं—"मैं भडभूजे की तरह/ इन शब्दो को कब तक फोडता रहूँगा/ ? मस्तिष्क के भीतर/ मृत मछलियो को अबेरते हुए/

नदी के चढते बुखार को/ कब तक अपनी हड्डियो के थर्मामीटर मे/ चुपचाप पढता रहूँगा/ ? 'पोलियोग्रस्त बच्चे की बीमारी, कविता मे व्यग्य भी है तेजाब की गध भी है और ताप भी है। इन सभी से मिलकर कविता एक साहसिक और निर्मम वास्तविकताओ की यथार्थवादी कविता हो गयी है।

सन् 1965 के आस पास के वर्षों मे जो कवि तेजी से अपनी अलग पहचान लेकर आये है, उनमे 'बलदेव वशी' का सृजन भी पर्याप्त महत्त्वपूर्ण है। दर्शक दीर्घा, उपनगर म वापसी, अँधेरे के बावजूद और काला इतिहास (सपादित) उनके ईमानदार सृजन के गवाह है। उनकी कविताएँ वर्तमान सकट, अन्याय और विसगत स्थितियो का आलख प्रस्तुत करती है। उल्लखनीय तथ्य यह है कि बलदेव वशी ने अन्य कवियो की तरह न तो कविता का गैर जरूरी चीजो का गोदाम बनाकर प्रस्तुत किया है और न बावजूद त्रासद परिवेश के उनसे उनका कवितापन छीना है। उनकी कविताएँ वर्तमान सघर्ष के उत्तप्त चेहरे को देखती महसूस करती हुई भी ईमानदार कविताएँ हैं। कोरी वक्तव्यपरकता, विद्रोह के नाम पर किया गया विद्राह और शाब्दिक जादूगरी से बलदेव की कविताएँ मुक्त है। वे तो एक ऐसे कवि की सजना हैं जो अपने परिवेश से अनुभव सकलित करता है और वे ही अनुभव उसकी वैचारिकता से छनकर कविताओ मे आकार पाते है। एक वाक्य मे कहूँ तो बलदेव वशी की कविताएँ समकालीन परिवेश और उसम साँस लेते आदमी की स्थितियो और मन स्थितियो के सश्लिष्ट बिम्ब प्रस्तुत करती है। उनमे जो विद्रोह है, आक्रामकता है, वह वैचारिक है, आरापित और नकली नही है। इसी से वे कविताएँ हैं—कवितानुमा कोई और चीज नही है। वे बाहर से जितनी कविताएँ लगती हैं, भीतर से भी उतनी ही कविताएँ लगती है। बलदेव की कविताएँ वर्तमान सघर्ष को निरूपित करती हुई व्यक्ति की जिजीविषा, निस्सहायता निराशा, करुण-भाव खीझ, हतोत्साह, बेचैनी, विरोध और आक्रामकता आदि सभी कुछ को कविता की शैली म प्रगट करती है। उन्होने अपनी कविताओ म न केवल समकालीन नरक का भूगोल प्रस्तुत किया है, अपितु मानव और उसके परिवेश का बोध कराते हुए व्यक्ति को अपने अस्तित्व के प्रति सचेत भी किया है। बलदेव ऐसा इसलिये कर सके हैं कि उनका कवि समकालीन स्थितियो को वैचारिक धरातल पर रख कर देखता है, न कि किसी भावुक धरातल पर। उनकी लम्बी कविताओ मे 'उपनगर मे वापसी 'एक्न' रचना है।

'उपनगर म वापसी' एक ऐसी कविता है जिसमे आजादी के बाद के परिवेश, उसमे सघर्षरत मनुष्य और उसकी विडम्बनाओ को उजागर किया गया है। राजीव सक्सेना ने इसे शहरी लैण्डस्केप मे यातनाग्रस्त और त्रस्त मनुष्य की गाथा कहकर एक वाक्याश म ही कविता की मूल सवेदना को प्रगट कर दिया है। ठीक भी है इसमें उस आदमी का चित्र है जो शहर के बनने और उठने के साथ साथ तमाम सघर्षो, तनावों और सकटो को झेल रहा है। इस कविता मे व्यक्ति की विभिन्न मनस्थितियाँ

नियोजित हैं और इस नियोजित मे कवि न तो कोई वक्तव्य देता है, न कोई कृत्रिम विरोध दिखलाता है और न अभिव्यक्ति के लिए कोई भी भाषायी लटका इस्तेमाल करता है। यही वजह है कि कवि की सवेदना जिस रूप मे उभरती है, वह मात्र स्थिति का चित्र नही होता, बल्कि स्थिति सापेक्ष मन स्थिति का व्यापक मानवीय चेतना युक्त बिम्ब होता है। कवि जब भारतीय उपनगर के निर्मित होते जाने का चित्र प्रस्तुत करता है तो यह भी अनुभव करता है "जहां जहां उपनगर न सिर उठाया है / औसत आदमी ने वही दचका खाया है" / उप नगर के चित्राकन मे कवि ने बडे कौशल से काम लिया है। कही रात का चित्र है तो कही मौसम के हाल का बयान करते-करते कवि उसी के बीच बीच मे मानव-स्थितियो के बिम्ब भी पिरोता गया है 'कभी कभी इसके किनारो को गिराती है बरसाती नाले की धार / वैसे कुछ भी अनपेक्षित घटने पर यहां / अब नही होती है हैरानी /—बस व्यक्ति अपने ही ऊपर / गिरता है औधा पूरा का पूरा / और सँभलते-देखते / पानी की एक और शक्ल मिट जाती है / आस-पास अब भी गड्ढे है / जहां बरसातो मे पानी भरता है / घास उगती है, पशु चरते हैं / जहां अब भी कोई शर्मदार डूब मरता है /"

'उपनगर मे वापसी' कविता म कवि ने समसामयिक परिवेश से जसवन्तू, भगतू और अमरू जैसे पात्रो को अकेले नही लिया है। इनके साथ इनका पूरा परिवेश भी कविता मे आ गया है। कवि पूरी सचेतन दृष्टि को अपनाकर अपनी प्रचेता मानसिकता के सस्पर्श से कविता को विश्वसनीयता प्रदान कर गया है। स्पष्टीकरण के लिए यह उदाहरण देखिये जिसम मानव और उसका परिवेश एकमेक होकर आये हैं 'इसी ब्लाक को ले लो/यहाँ जसवन्तू गले मे फदाडाल भूल गया था भरी दोपहरी मे/ बाप अभी दुकान पर बैठा है हर समय मोमवत्ती जलाये / हर मौसम मे पखा डुलाता • / मौसम के साथ समय भी मर गया है। देहरी पर / यही नगर की आधार शिला है / जिसके निकट अब भी / नेहरू युग का पागल गठरी सा पडा है /.... . इसके नीच कुओ मे दफन है युवा मन/स्थान और समय के एक बिन्दु पर / खडे हो इन्होंने भरी हैं कुओ की गहराई /—आवारा पशुओ के शव / सक्रामक रोगियो के वस्त्र / कूडा बीनती लडकियाँ / बलात्कारो हत्याओ के चिन्ह / पिछवाडे से फेंके लायडे".. । शहरी जीवन के इस त्रासद परिवेश के और भी अनेक यथार्थ बिम्ब कविता म है किन्तु कवि की सवेदना की निष्कर्षात्मक परिणति के रूप मे पागल का यह चित्र पाठकीय सवेदना को गहरे छू जाता है पूरे नगर मे वही एक स्वतत्र है / हवा की तरह / बेमतलब घूमता पागल / गिर रहा है नीचे / कभी वह धूल की तरह हँसकर / सफेदी की तरह गभीर हो जाता है /" इसी क्रम मे उस पिता का चित्र भी देखिये जो अपने 13 वर्षीय मरणो-मुख बेटे स आँखें नही मिला पाता है — 'थककर उसका बाप / शाम को घर पर नही रहता / तिल तिल मरत बच्चे को आँखो मे भरकर भटकना है / ताश के पत्तो म बँटता / लम्बे कशो मे खिचता / बीडी के धुँए मे उडता हुआ लौटता है दोबारा / जबकि घर के बर्तनो को चाट कर/

गली के मोड पर मिलते हैं ऊँची आवाज मे रोते कुत्ते / और वह साजिश की तरह घुसता है भीतर" / इन स्थितियो के सही अ कन मे बलदेव वशी पर्याप्त सफल हैं और उनकी सफलता का रहस्य यही है कि उन्होने इस परिवेश को पूरी तरह भोगा और जिया है ।

कहने का तात्पर्य यही है कि बलदेव वशी हर बिन्दु पर सतर्क हैं । वे परिवेश के हर हिस्से को देखते और महसूस करते हैं । अपने बद कमरे मे भी वे इस परिवेश से अलग नही हो पाते हैं और वे समझौते की तरह देह को तोडकर युद्ध मे शामिल हो जाते हैं । कवि की चिन्ता इस बात को लेकर है कि परिवेश मे सडाँध और आमद स्थितियो का कीचड भर गया है फिर भी न जाने क्यो लोग इसके खिलाफ निर्णायक सघर्ष नही छेडते हैं । कवि रचनात्मक स्तर पर अपनी खीझ को प्रगट करता हुआ कहता है ' 'उसके जिस्म पर / लाल और सफेद चीटियाँ / रेंग रही हैं एक साथ / क्या नागरिक होना / यो निरीह होना है / कोई भी नगर ऐसा नही होता / और जब भीतर आग लगी हो/चुपचाप नही सोता'/कविनाल म कवि न बडी होशियारी से कविता को एक विवेकशील और सवेदनशील कवि की तरह प्लय चेतना की कविता होने से बचा लिया है 'मन रोड पर चलता हुआ पागल / सहसा बडबडाता है / उपस्थितियो से लेकर उपदशाओ में फैले तत्र मे झूलते वर्तमान / विकृत घुलते हुए / फिर अपनी भागी कमीज को निचोड कर / फटकारता हुआ / प्राय चीखते हुये कहता है / कहाँ हो यार / उबकाई आ रही है । मूर्ख जल्दी करो / दृश्य बदलो"/ कुल मिलाकर यही कह सकते हैं कि 'उपनगर मे वापसी' समकालीन परिवेश का प्रामाणिक दस्तावेज है । इसमे सप्रेषणीयता का गुण अन्य लम्बी कविताओ की तुलना म कही अधिक है ।

डॉ० विनय ने अपने कवि कर्म की पहली पहचान 'सदर्भ' के माध्यम से दी थी । 'सदर्भ' एक सयुक्त कवि प्रयास है, पर इतना निश्चित है कि उसमे विनय की जो कविताएँ है, वे औरो की तुलना म (देवेन्द्र उपाध्याय, कृष्णदत्त पालीवाल और कृष्णवात्स्यायन) काफी अच्छी हैं । 'अजन्मे भविष्य के लिए एक स्वर, 'मैं जीता हूँ' मेरा देश भूखा और पर्तों का साँप' उल्लेखनीय कविताएँ हैं । इनमे कवि सत्रास, जडता और अर्थहीन सदर्भों की भीड मे पिसता हुआ भी जीवन-दृष्टि खोजता प्रतीत होता है । 'मरा देश भूखा' तो काफी अच्छी रचना है । इसमें कवि व्यग्य करता है और सारी विसगति की चर्चा करता हुआ भी जीवन की गति खोजने के लिए व्याकुल है । *उसकी पीडा यहाँ आरोपित नही है वरन् कवि मानस की निश्छल अभिव्यक्ति है ।* अन्य कविताओ मे आक्रोश है, अतिरिक्त साहसिकता है । हाँ जहाँ कही यह साहसिकता सतुलित है या सदर्भ-विशेष के अन्तस् से फूटी है वहाँ कवि प्रभावित करता है । 'मै जीता हूँ' कविता इसी प्रकार की है । खैर 'सदर्भ' की कविताओ की बात तो अब पुरानी पड गई है क्योंकि विनय अब काफी आगे आ गये हैं । उनके अब तक प्रकाशित कविता सग्रह ये हैं—एक पुरुष और (प्रबध) दूसरा राग और 'पुनर्वास का दण्ड' ।

'एक पुरुष ग्रौर' विनय की 1974 मे प्रकाशित प्रबंध सृष्टि है। इसमे विश्वामित्र ग्रौर मेनका के प्रसग का ग्राधार बनाकर ग्राधुनिक युग की प्रमुख समस्या ग्रस्तित्व का सकट को प्रस्तुत किया गया है। विनय का मानस यह निष्कर्ष देता है कि यह समस्या प्रत्येक युग मे रही है ग्रौर हरेक युग म इसे ग्रलग ग्रलग तरीके से समझा गया है। 'विश्वामित्र' भी इसी समस्या से जूझे ग्रौर वे जिस स्तर पर सघर्षरत हुए वह एक मानवीय सघर्ष था। ग्राज का मानव भी इसी सघर्ष से जूझ रहा है। कवि की स्वीकारोक्ति है कि "ग्राज के मानव-सघर्ष के विषय मे जो मै कहना चाहता था, उसे विश्वामित्र ग्रौर मेनका के माध्यम से कहकर मानव के काल निरपेक्ष सघर्ष की ग्रभिव्यक्ति करते हुए सामयिक प्रश्नो के विषय में भी ग्रपन रचनाकार की भूमिका ग्रदा करता रहा हूँ"। इसलिए यह काव्य ग्राज के जीवन की उस मूल समस्या पर विचार करता है जो एक ग्रार व्यक्ति को ग्रस्तित्व रक्षा के निमित्त सतर्क करती है ग्रौर दूसरे छोर पर समाज के नैतिक मूल्यो से टकराती हुई उस बोध को उजागर करती है जिसके सहारे नवीन जीवन-मूल्यो की स्थापना हो सके। विश्वामित्र ग्राधुनिक मानव की तरह ग्रस्तित्व की खोज मे रत होते हैं। उनकी इस तलाश का सही किन्तु सघर्षशील रूप इन पक्तियो म उभरा है जहाँ वे यथार्थ की जमीन को छूते हुए कहते हैं "विश्वामित्र एक राजा / विश्वामित्र एक तपस्वी / ग्रौर इन सबसे ऊपर / विश्वामित्र मेनका की पुत्री का पिता / स्वर्ग का निर्माता नही / त्रिशकु का पुरोहित भी नही / धरती के सत्य-नये रक्त का/ एक जन्मदाता/ ग्रात्म तत्व को ग्रपने विकास के साथ/ जोड देने वाला एक पुरुष . एक पुरुष ग्रौर"/ वास्तव मे विश्वामित्र का राजपुरुष रूप उन्ह जीवन की सच्चाइयो का सामना नहीं करन देता है ग्रौर साधक का रूप उन्ह इतना विरागी बना देता है कि वे वहाँ भी जिन्दगी का यथार्थ नही देख पाते हैं। ग्रात्मोन्मुखता के इसी बिन्दु पर मेनका ग्राकर उनके मानस को उद्वेलित करती है। कवि ने इस ग्रान्तरिक द्वन्द्व को पूरी मनोवैज्ञानिक किन्तु यथार्थ शैली मे प्रस्तुत किया गया है। विश्वामित्र का ग्र त सघर्ष ग्रौर मनका का व्यक्तित्वाकन जिस रूप में किया गया हैं वह न केवल विनय की वैचारिकता के उत्कर्ष को निरूपित करता है, ग्रपितु उनके शैलिक सयम को भी स्पष्ट कर देता है। विश्वामित्र ग्रनक द्वन्द्वो ग्रन्तर्द्वन्द्वो की भूमियो को पार कर ग्र तत जिस सहज मन स्थिति मे जीवन के विकास की प्रक्रिया मे ग्रपन को जोडते हैं ग्रौर ग्रात्मतेज जगाकर यथार्थ के धरातल पर दमन पर ग्राधृत व्यवस्था से लडने को उद्यत होते हैं वे सब उनके ग्रस्तित्व की खोज के ही ग्रायाम हैं।

यह माना कि वे व्यक्तिरूप मे भौतिक जीवन दृष्टि का निषेध कर ग्रांतरिक मूल्यों से जुडते हैं परन्तु उनका जीवन के यथार्थ से जुडना इस बात का भी सूचक है कि वे ग्रांतरिक मूल्यो के उस रूप को महत्व नही देन जा यथार्थ ग्रौर वास्तव-जीवन-दृष्टि की उपेक्षा करता है। कवि की तो स्थापना यही है कि जीवन के यथार्थ से बडा कोई ग्रन्य मूल्य या सत्य होता ही नही है। 'एक पुरुष ग्रौर' के रचयिता ने काव्य के बीच

-बीच मे अनेक ऐसे काव्याश भी जड दिये हैं जो आधुनिक मनुष्य की जिज्ञासा-वृत्ति को कहीं कुरेदते, कहीं छेडते और कहीं शात करते चलते हैं। ऐसे अ शो मे आधुनिक समस्याओ की गूंज सुनाई देती है

1. "वह अपना एक नया व्यक्तित्व बनायेगा/जिसके निर्माण मे न होगा राज्य/ न होगा वैभव/और न रक्तपात ।"
2. बनने दो समान धरती और स्वर्ग को/ताकि भेद की सीमाओं के परे / आदमी सिर्फ आदमी रहे.. . ./ देवता या आदमी नहीं /"
3. 'न जाने क्या हुआ मेरे युग को/कि बहता रहा आदमी से आदमी । जुडती रही भीड जनपथों पर/अधिकार मांगने की मुद्रा मे / शताब्दियो का पानी नाली मे बह गया.. ...../"

ऐसे सदर्भ कृति मे जगह जगह मिलते हैं जो आधुनिक सदर्भों को व्यजित करते हैं और साथ ही विनय की प्रचेता जीवन दृष्टि को भी रेखाकित करते हैं। कहने की आवश्यकता नही कि 'एक पुरुष और' विनय की आधुनिक चेतना को निरूपित करने वाला, अस्तित्व की खोज मे रत मनुष्य की विवेक-प्रक्रिया को स्पष्ट करने वाला और सहज जीवन दर्शन की भूमिका पर सार्थक जीवन मूल्यो के अन्वेषण का काव्य है। विनय ने नये जीवन मूल्यो के सवाल को व्यक्तित्व और मानव-अस्तित्व के रक्षण की समस्या स जोडकर दोनो के बीच एक सम्बध बना दिया है।

'दूसरा राग' की कविताएँ विनय की सामाजिक जीवन की समझ को निरूपित करने वाली कविताएँ हैं। इनमे वर्तमान परिवेश और आज के आदमी की त्रासदी ता व्यजित है ही, मानवीय सघर्ष और उस सघर्ष के बीच से पाई हुई वह राह भी दिखलाई देती है जो उन्हे जिजीविषा और आस्था का कवि प्रमाणित करती है। सामाजिक यथार्थ का चित्रकार विनय उस मनुष्य की खोज को निरूपित करता है जिसे अस्मिता की खोज कहा जा सकता है। इन कविताओ म आदमी के द्वन्द्व, सघर्ष और उससे जुडे परिवेश को कुछ इस ढग से अ कित किया गया है कि लगता ही नही कि कोई मानव मूल्य अ तिम हो सकते हैं --खासकर तब जब हरेक दिन परिवेश म कुछ न कुछ टूटता हो और कुछ नया दिखलाई देता हो। मानव मूल्यो की यह स्थिति मनुष्य का असमजस और अनिर्णय के झमेले मे डाल देती है, किन्तु विनय एक ऐसे कवि हैं कि ऐसी सकटग्रस्त स्थिति म भी आस्था और जिजीविषा के साथ एक निर्माता के रूप म हर जगह हाजिर हैं। 'प्रतीक्षित सूर्योदय', प्रत्येक क्षण और 'हर आदमी का आकाश ऐसी ही कविताए' हैं। 'विनय' की ये कविताएँ उस सर्जक की सृष्टियाँ है जो मानवीय मूल्यों के प्रति भी आस्थावान है और जीवन के तमाम सदर्भों के प्रति भी। डॉ० चन्द्रकान्त बादिवडेकर का यह कथन सही नही है कि 'ये एक आश्वस्त व्यक्ति की कविताएँ अवश्य हैं, परन्तु ये मानवीय मूल्य उसके जीने की सहज भगिमा बन गये हैं, ऐसा कविता के आधार पर नही कहा जा सकता है'। मैं सोचता

हूँ कि ग्रास्था-चेतना ग्रौर ग्राश्वस्ति तभी सभव होती है जब व्यक्ति सघर्षो ग्रौर कटु-त्रासद ग्रनुभवो के लोक से निकलकर कोई वृहत्तर मूल्य पाना चाहता है। जो जितना झेलता है उतना ही तलाश की ग्रोर बढता है ग्रौर इस बढने मे वह यदि ग्राश्वस्त नही होगा तो लक्ष्योन्मुख कैसे होगा ? विनय की कविताग्रों को धैर्य के साथ पढने पर यह बात भी साफ हो सकती है कि जिन मानव-मूल्यो की ग्रास्थामय तलाश उसे है, वे उसके ग्रन्तस् से जुडे हैं ग्रौर किसी भी सही तलाश के कवि से जुडे हो सकते हैं।

'दूसरा राग' का कवि जितना साफ ग्रौर सुलझा हुग्रा है; उतना ही कवित्व-पूर्ण भी है। उसकी कविताग्रो में वह ऊष्मा है, वह ताप है ग्रौर कही-कही वह सौन्दर्य भी है जो सफल रचनाकार के लिए ग्रनिवार्य होता है। 'हर ग्रादमी का ग्राकाश' मे यदि "ग्रपने को होम करके.. .पाताल से खीचकर जिन्दगी का ग्रर्थ" लाया गया है तो यह भी बतला दिया गया है कि सघर्ष करते हुए मर जाना बेहतर है बजाय एक लिज-लिजी शान्ति ग्रौर नपु सक शरारत के'। विनय क्राति चाहता है क्योकि वह काफी झेल चुका है ग्रौर झेलने के बाद परिवर्तन लाने के लिए यह जरूरी भी है कि क्राति का सहारा लिया जाय। इसी परिवर्तन की ग्राकाक्षा व्यक्त करते हुए विनय ने एक कविता मे (ग्र तिम ग्रभिव्यक्ति के लिए) साफ ग्रौर सही कहा है

> कब नहीं हुई है क्रान्ति / या युद्ध.. .. .
> युद्ध—मरणधर्मा कौम का शोक नहीं
> जरूरत हो जाता है–/जब वह देखती है कि / कहीं भी कोई भी /
> नहीं सुन पा रहा है उसकी प्रार्थना ...तब वह ग्र तिम ग्रभिव्यक्ति के लिए/
> हो जाती है सन्नद्ध / ग्र तिम ग्रभिव्यक्ति के लिए /"

'बदलाव के लिए', 'साथ चलने के लिए' 'दूसरा राग', 'ग्रादमकद ग्राईना', 'वह नगर', प्रतीक्षित सूर्योदय के लिए,' 'जयजयकार करते हुए,' 'हर ग्रादमी का ग्राकाश,' 'नीद टूटने पर' ग्रौर 'प्रत्यावर्तन' बहुत ग्रच्छी ग्रौर सशक्त कविताए हैं। वस्तुत: 'दूसरा राग' का कवि न तो निजता के घेरे मे कैद है ग्रौर न ग्रपने परिवेश को भुलाये हुए है। वह तो ग्राम ग्रादमी के जीवन को प्यार करता है ग्रौर उस परिवेश का एक हिस्सा बनकर ग्राता है जो हमारे ग्रास पास फैला हुग्रा है। 'पुनर्वास का दण्ड' में यह स्थिति ग्रौर साफ है। यह एक ऐसी लम्बी कविता है जिसमे सामयिक स्थिति के साथ ग्रौर उससे जुडे ग्रनेक सवालो को उठाया गया है।

'पुनर्वास का दण्ड' कविता एक सामयिक घटना प्रसग की देन है। ग्रापात् काल के दौरान 'पुनर्वास की योजना' के ग्रन्तर्गत बसाई गई बस्तियो की त्रासद-वरुण गाथा ही इसकी प्रेरिका बनकर ग्राई है। ग्रनगिनत इन्सानो के जीवन की पीडा को महसूस करता विनय का कवि इस लम्बी कविता मे परिवेश के प्रति ग्रपनी हिस्सेदारी दिखाता है। यों कवि का लक्ष्य मात्र ग्रपनी हिस्सेदारी साबित करना नहीं है। वह तो इस घटना के माध्यम से उन प्रश्नों को उठाने के लिए व्यग्र है जो हमेशा से

आदमी की जिन्दगी को झकझोरते आये हैं। भारतीय प्रजातन्त्र की स्थिति अभी तक ऐसी रही है कि मनुष्य बँटता रहा है; उसे राजनीतिक शक्तियाँ टुकडे-टुकडे करती रही हैं और इसी बिखरने-टूटने मे अनेक मानवीय प्रश्न सामने आते रहे हैं। विनय के सामने भी ऐसे ही प्रश्न हैं। वह प्रजातान्त्रिक मूल्यो की रक्षा के लिए ऐसे कर्णधार की प्रतीक्षा मे है जो देश को राजनीति को और समूची सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था को सही दिशा दे सके। इसमे कोई शक नही कि कवि की चिन्ता सही है, पर इससे भी ज्यादा क्या यह सही नही कि जबतक अमानवीय सदर्भ रहेगे; तब तक जीवन अविभक्त नही होगा। सत्ता बदलना काफी नही है क्योकि सत्ताधीश कोई भी हो, जब तक भीतर से परिवर्तन नही होगा तब तक कुछ भी बदलना नाकाफी है। कवि पुनर्वास कालोनियो मे यातना झेलते मानवो की पीडा से अधिक क्षुब्ध है और उसकी यही पीडा कविता मे जगह-जगह अनेक मानवीय प्रश्नो को उठा गई है। अन्तिम अश तक पहुँचते पहुँचते तो कवि की चेतना सारे मानवीय परिवेश का एक सक्रिय हिस्सा हो जाती है। वह जनशक्ति के समायोजित होने की भूमिका तैयार करता है और आश्वस्ति के शिखर पर खडा होकर जो कहता है वह उसकी आस्थावादी जीवन दृष्टि और जिजीविषा का मूर्त रूप है, परन्तु समीक्षक के मन म एक हल्का सा प्रश्न यह भी उभरता है कि कही यह आस्था ऐसी तो नही जो व्यक्तित्व की भीतरी तहो से न निकलकर कोरी मानसिकता की देन हो ? कवि की इन पक्तियो के समानातर चलते हुए आप भी अनुभव कीजिए—"वह जो झोपडी म/ढिबरी जलाये बैठी माँ है/वह जो सडक के किनारे/भीख माँगता बच्चा है/वह जो बिना उपचार के साँसें गिनता किसान है/पराजित नही हो पायेगा/अपने द्वार पर/ सबने अनुभव किया कि रक्त की भाषा के परे/एक और भाषा जन्म ले रही है/सम्बन्धो के धरातल पर/ वह चीज जो खोई जा रही थी/केन्द्रित अर्थ की सभ्यता के पखो पर/अब विकेन्द्रित होकर/व्यापक हो रही थी मनो पर/" फिर भी यह सही है कि विनय ने इस लम्बी कविता मे एक सामयिक सदर्भ को व्यापक भूमिका पर उठाया है और इसी क्रिया मे वह अनेक मानवीय प्रश्न उठा गया है। विनय मे कविता शक्ति भरपूर है, यह तथ्य उनके सभी सग्रहों से प्रमाणित हो जाता है। 'पुनर्वास का दण्ड' और 'एक पुरुष और' मे यह शक्ति अपनी पूरी गुणात्मकता के साथ उभरी है।

दूधनार्थसिह और श्रीराम वर्मा भी सही समझ के कवि हैं। 'दूधनार्थसिह' की 'अपनी शताब्दी के नाम' की कविताएँ तो ऐसी हैं जो रोमानी मिजाज को अधिक और यथार्थ बोध को कम उजागर करती हैं; किन्तु उनकी परवर्ती रचनाओ में विचार तत्व प्रमुख है और वे कविताएँ परिवेश की त्रासदी को व्यजित करती हैं। 'सुरग से लौटते हुए' कविता मे व्यक्ति के भीतरी स्तर का दर्द अकित है और है परिवेश व्यापी रुग्णता और त्रासदी का चित्र। कवि जब लिखता है कि "नभ के नीचे है वही अँधेरा मैदान/ जहाँ हँसी की अर्थियाँ भीड में दुबक कर/ लोहे की काली नीली खिडकियो मे/ सुलग सुलग जलती हैं / जहाँ हर आदमी एक अधी समस्या है" / तो उसकी यथार्थ

चेतना का अहसास होता है। वस्तुत 'सुरंग से लौटते हुए' एक ऐसी कविता है जिसमे समस्त परिवेश और मानवीय स्थिति के यथार्थ बिम्ब पाठक को भीतर तक हिला देते हैं। इसमे समाजव्यापी दबावो-तनावो, जडता और शून्यता के साथ 'पैरेलाइज' कर देने वाले भयावह सदर्भो का तीखी शैली मे अकन हुआ है। 'श्रीराम वर्मा' की कविताएँ उस तबके की कविताएँ हैं जिनमे एक ओर तो सारे परिवेश के दबाव से उत्पन्न आक्रोश है और दूसरी ओर वे समूचे परिवेश से तटस्थ बने रहते हैं। कभी-कभी तो वे इतने तटस्थ से लगते हैं कि उनका व्यक्तित्व ही, कही खोया सा लगता है एक ऐसे ससार मे जहाँ सब कुछ उनके ऊपर से यो ही गुजर जाता है। यह ठीक है कि उनकी ऐसी कविताओं मे जहाँ तटस्थता है एक प्रकार की करुणा और रामानियत है किन्तु यह उनकी कविताओ का एक छोर है। असल मे श्रीराम वर्मा का तनाव उस स्तर पर उद्घाटित होता है जहाँ एक ओर वे रोमानी अदाज मे सामने आते हैं और दूसरी ओर कही गहरे वे उससे मुक्ति की बात भी करते हैं। भाषा और भाव के बीच का यह सघर्ष-क्षण भी उनकी कविताओं मे है।

'श्रीराम वर्मा' जैसे ही रोमानी अन्दाज से हटकर परिवेश की ओर देखते हैं, तो उन्हें अपने आस पास ही कही पीडा और अर्थहीनता के साथ-साथ जीवन की त्रासद स्थितियाँ भी दिख जाती हैं। इसी स्थिति मे वे कहते हैं : "पैरों के नीचे मसान है आजकल/पढता रहता हूँ नदियाँ बनोनियाँ/पाता हूँ हर जगह भेडियाधसान/ कहीं-कही आक्रोश भी उभरा है, पर वह ठण्डा आक्रोश है। 'व्याकरण' और 'प्रेम' शीर्षक कविताएँ इसका उदाहरण हैं। 'प्रेम' आज की जिन्दगी मे व्यर्थता का प्रतीक बन गया है और वह आदमी को गिलहरी की तरह कुतरता रहता है। 'शब्दो की शताब्दी' अच्छी रचना है। इसमे मूल्यो की तलाश सकेतित है। जीवन की अर्थहीनता का अर्थपूर्ण शब्दावली मे किया गया सकेत भी कवि की परिवेशगत जागरूकता को स्पष्ट करता है। इसमे व्यग्य भी प्रभावी बन गया है। समूचा देश, उसकी नीति और अहिसा, राष्ट्रीयता, सहअस्तित्व की भावना और उसके साथ-साथ फिरती भूख के सदर्भ से लिखी गई इन पक्तियो का व्यग्य आक्रोशमिश्रित है। इसमे समूची पद्धति की सदर्महीनता और अप्रासगिकता के साथ-साथ उसकी अर्थहीनता भी रेखाकित है . "भूखे रहने पर यथार्थ की बुनियादें पक्की हो जाती हैं / सन्यस्त होती है जिन्दगी / सह अस्तित्व के नाम पर क्या लडना / कैसा अस्तित्व, कैसी तैयारी / अहिसा ही अस्त्र है / चाहे उससे चाचाजी की ही मौत हो / हिमालय हो रक्तवर्ण धरती का स्वर्ग समन्दर मे डूब जाय /यह भी एक दर्शन है/तिरगे से चाहे भाँग छानी जाय / चाहे मोजे बना लिए जायें"। वर्मा जी की कविताओ मे वे कविताएँ ही प्रभावित करती हैं जो यथार्थ परिदृश्य से साक्षात्कार कराती हैं। 'न्यायदण्ड', 'शब्दो की शताब्दी', 'निचोड', 'भाषा के जनतत्र मे', 'घास-फूल' और 'हाशिये पर कुर्सी' ऐसी ही कविताएँ हैं। इनमे मानवीय स्थिति के विविध बिम्ब हैं। कही कवि प्रश्निल है, कही पीडित हैं, कही विवश है तो कहीं-कही इतना बेलाग है कि एक ही पक्ति मे बहुत कुछ कह देता है। उसकी चिन्ता यह है कि "पेड तने सहित हैं एक पेड / हम अपने

बावजूद प्रेत हैं / है इस तरह कि बिल्कुल नहीं हैं/हमारा बोट सिर्फ बिनौला क्यो है / बादल क्यो नही है ।" इसी तरह जब वे 'कुर्सी के होकर रहो साहब के नहीं' कहते तो उनका व्यग्य काफी धारदार हो जाता है। लगता है जैसे कवि यथार्थ को न केवल भोग रहा है, वरन् उसकी एक एक रग को महसूस भी कर रहा है :

"एक बिछाये जाल को/जब कुर्सी ऊन के गोले की तरह पेश करती है/
किस तरह भीगी बिल्ली बन जाती है/
रटा रटाया उसका सारा घटाटोप/
फौताध्वनि मे कैसे जरा सा म्याऊँ बन जाता है/" [हाशिए पर कुर्सी]

अ त मे यही कहना काफी है कि साठोत्तर वर्षों मे जिन कवियो का सृजन समकालीन परिवेश की पहचान लेकर आया है, उनमे सही समझ वाले गुट निरपेक्ष कवियो की भी एक बडी सख्या है। सभी कवि नही हो सकते हैं क्योकि सभी की चेतना सृजन के सूक्ष्म स्तरो का स्पर्श नहीं कर सकती है। आज सही कवि उसे ही माना जा सकता है जो अपने परिवेश को ईमानदारी से पकडे, उस मानवीय सकट का साक्षी हो जो सुबह से शाम तक अनगिनत रूपो मे उभरता है और अपने अनुभव-लोक को सही अनुभूतियो मे ढाल कर प्रसन्न अभिव्यक्ति के द्वारा सवेद्य बना सके, न कि उस कवि को जो आरोपित और कृत्रिम सदर्भों को कविता की जुबान मे प्रस्तुत करता है या जो मात्र विज्ञापनी शैली का प्रयोक्ता होने से वक्तव्यो में बोलता है बिना यह अनुभव किये कि उसके कथ्य की सार्थकता क्या है ? इसमें कोई सदेह नही कि साठोत्तर कविता युवा आक्रोश और मोहभग की कविता है, उसमे निर्मम वास्तविकताओं का शब्दाकन हुआ है। इसी से प्रेरित होकर आगामी अध्याय मे साठोत्तर कविता की प्रवृत्तिगत उपलब्धियो और विशिष्टताओं का विवेचन विश्लेषण इन्ही सही समझ वाले समकालीन कवियो की कविता के आधार पर किया गया है।

□

9

- ☐ परिवेश और पहचान
- ☐ प्रवृत्ति विश्लेषण
    - रोमानी सस्कारो से मुक्ति
    - मोह-भग
    - जीवन से सीधा साक्षात्कार
    - अस्वीकार की मुद्रा
    - आक्रोश और विद्रोह
    - छीलने वाला व्यग्य
    - सघर्षशीलता
    - राजनैतिक सदर्भो से साक्षात्कार
    - निर्मम वास्तविकताओ की बेपर्द-व्यजना
- ☐ अभिव्यजना की ईमानदारी
- ☐ समाकलन

साठोत्तर वर्षों मे लिखी गई कविता के तेवर बदले हुए हैं। उसके स्वरों में मोहभंग, अस्वीकार, आक्रोश, व्यंग्य, यथार्थ जीवन का सीधा साक्षात्कार, जीवन के जटिल प्रश्नों और संघर्षों की अभिव्यंजना, साहसिकता, खरापन, तनाव, छटपटाहट, अपरिचय, अविश्वास, ऊब, मूल्यहीनता और सपाटबयानी पूर्वापेक्षा अधिक है।..........अत साठोत्तर कविता बदलते परिप्रेक्ष्य की गवाह तो है, किन्तु उसका आविर्भाव नयी कविता के दौर का समाप्त हो जाना नहीं है, अपितु उसके ही कतिपय सन्दर्भ-स्वरों का व्यापक स्तर पर तीखा और ईमानदार प्रस्तुतीकरण भर है। इस बिन्दु पर साठोत्तर कविता समकालीन जीवन का भूगोल है। उसमें वर्तमान परिवेश की निर्मम वास्तविकताएँ, उनसे उत्पन्न दबाव, तनाव के साथ मानवीय सम्बन्धों की कृत्रिमता निरूपित हुई है। इस कविता की पहचान का कुछ-कुछ अन्दाज़ धूमनाथसिंह के इस कथन से हो सकता है : "यह वह कविता नहीं है/यह केवल खून सनी चमड़ी उतार लेने की तरह है/यह केवल रस नहीं/जहर है जहर"। यह वह कविता है जो अन्याय के खिलाफ खड़ी है; शासन द्वारा कही जाने वाली चिकनी बातों पर आक्रोशी मुद्रा में जल रही है और अपनी समूची शब्दावली से आदमी और उसके परिवेश की हर परत उघाड़ रही है।

9 साठोत्तर कविता : युवा आक्रोश एवं मोहभंग की कविता

परिवर्तन की कडी चोट जैसे जीवन को सहनी पडती है, वैसे ही कविता को भी। परिवर्तन एक क्रमिक प्रक्रिया है जिससे बचा नहीं जा सकता है। जो सहज और अनिवार्य हो उससे बचा भी कैसे जा सकता है? बचकर हम कृत्रिमता का वरण करते हैं। आजादी आई तो एक खास किस्म की मुक्ति हमें मिली। कई वर्षों का सपना पूरा हुआ और जब वह पूरा हुआ तो हमने भी कुछ सपने सँजोये। कुछ समय उन सपनो को सच्चाई मे बदलने की प्रतीक्षा मे बीता, किन्तु लगा कि हम आजादी के नशे मे गाफिल हैं और उसी मे धुन् पडे रहना चाहते हैं। देश विदेश, राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हम मानवता का राग अलापते रहे। अहिंसा, क्षमा और तटस्थता के हथियारो से लैस होकर अपनी जिन्दगी को जीते रहे किन्तु सन् 1960 का वर्ष बीतते ही हमारे सपनो के फूल बिखरने लगे, उनकी एक-एक पखडी एक-एक प्रश्न बनकर हमारे सामने फैल गई। हम उन प्रश्नो से जूझते, उनका कोई हल निकालते कि तभी चीनी आक्रान्ताओ की बदूकें व तोपें धुँआ उगलने लगी। इसी समय हमे लगा कि हमारी आँखो मे पले सपने धुमैले हो गये हैं और उनकी पलको पर काला, दहशत भरा और छटपटा देने वाला धुँआ तैर गया है। हम लडे। अपनी जान हथेली पर लेकर आगे बढ़े; किन्तु शक्ति के आगे कामयाब न हो सके। अहिंसा, क्षमा और तटस्थ नीतियो का रग पहली बार फीका लगा। यही वह बिन्दु था जब हमे, हमारी पद्धति और शक्ति का पुनर्मूल्याकन करने का अवसर मिला। कहने का तात्पर्य यह है कि सन् 60 के पश्चात् जीवन बदला, राजनीतिक शक्ति बदली और इस बदले हुए समस्त परिवेश के प्रभाव से कविता भी अपने को बचा नही पाई।

परिवेश और पहचान

साठोत्तर वर्षों मे लिखी गई कविता का बदला हुआ मिजाज गवाह है कि यह परिवर्तन बदलते परिवेश से जन्मी विवशता का परिणाम था। कविता मे जो परिवेश और स्थितियाँ उभरी वे राजनैतिक और सामाजिक परिवर्तन के साथ-साथ नये विकसित जीवन-मूल्यो और उनसे सम्बद्ध स्थितियो का सच्चा इतिहास हैं। कविता का कथ्य और शिल्प अपने समय से जुडा हुआ है। इसी से उसमे अनेक ऐसी प्रवृत्तियाँ उभरी हैं जो मोहभग, सपाटबयानी, विद्रोह-आक्रोश, आन्तरिक सघर्ष, निर्मम वास्तविकताओ की प्रतिकृति, अर्थहीनता ऊब, अकुलाहट, बेचैनी, असतोष और अजनबीयत के भावो से जुडी हुई हैं। कितनी ही त्रासद स्थितियाँ कविता की पक्तियो मे

साठोत्तर वर्षों मे लिखी गई कविता के तेवर बदले हुए हैं। उसके स्वरों में मोहभंग, अस्वीकार, आक्रोश, व्यंग्य, यथार्थ जीवन का सीधा साक्षात्कार, जीवन के जटिल प्रश्नों और संघर्षों की अभिव्यंजना, साहसिकता, खरापन, तनाव, छटपटाहट, अपरिचय, अविश्वास, ऊब, मूल्यहीनता और सपाटबयानी पूर्वापेक्षा अधिक है। ....अत साठोत्तर कविता बदलते परिप्रेक्ष्य की गवाह तो है, किन्तु उसका आविर्भाव नयी कविता के दौर का समाप्त हो जाना नहीं है, अपितु उसके ही कतिपय सन्दर्भ-स्वरों का व्यापक स्तर पर तीखा और ईमानदार प्रस्तुतीकरण भर है। इस बिन्दु पर साठोत्तर कविता समकालीन जीवन का भूगोल है। उसमें वर्तमान परिवेश की निर्मम वास्तविकताएँ, उनसे उत्पन्न दबाव, तनाव के साथ मानवीय सम्बन्धों की कृत्रिमता निरूपित हुई है। इस कविता की पहचान का कुछ-कुछ अन्दाज दूधनाथसिंह के इस कथन से हो सकता है : "यह वह कविता नहीं है/यह केवल खून सनी चमड़ी उतार लेने की तरह है/यह केवल रस नहीं/जहर है जहर"। यह वह कविता है जो अन्याय के खिलाफ खड़ी है; शासन द्वारा कही जाने वाली चिकनी बातों पर आक्रोशी मुद्रा मे जल रही है और अपनी समूची शब्दावली से आदमी और उसके परिवेश की हर परत उघाड़

9 साठोत्तर कविता : युवा आक्रोश एवं मोहभंग की कविता

परिवर्तन की कडी चोट जैसे जीवन को सहनी पडती है, वैसे ही कविता को भी। परिवर्तन एक क्रमिक प्रक्रिया है जिससे बचा नहीं जा सकता है। जो सहज और अनिवार्य हो उससे बचा भी कैसे जा सकता है? बचकर हम कृत्रिमता का वरण करते हैं। आजादी आई तो एक खास किस्म की मुक्ति हमें मिली। कई वर्षों का सपना पूरा हुआ और जब वह पूरा हुआ तो हमने भी कुछ सपने सँजोये। कुछ समय उन सपनो को सच्चाई मे बदलने की प्रतीक्षा मे बीता, किन्तु लगा कि हम आजादी के नशे मे गाफिल हैं और उसी मे धुत् पडे रहना चाहते हैं। देश विदेश, राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हम मानवता का राग अलापते रहे। अहिंसा, क्षमा और तटस्थता के हथियारो से लैस होकर अपनी जिन्दगी को जीते रहे किन्तु सन् 1960 का वर्ष बीतते ही हमारे सपनो के फूल बिखरने लगे, उनकी एक-एक पखडी एक-एक प्रश्न बनकर हमारे सामने फैल गई। हम उन प्रश्नो से जूझते, उनका कोई हल निकालते कि तभी चीनी आक्रान्ताओ की बदूकें व तोपें धुँआ उगलने लगी। इसी समय हमे लगा कि हमारी आँखो मे पले सपने धुमैले हो गये हैं और उनकी पलकों पर काला, दहशत भरा और छटपटा देने वाला धुँआ तैर गया है। हम लडे। अपनी जान हथेली पर लेकर आगे बढे; किन्तु शक्ति के आगे कामयाब न हो सके। अहिंसा, क्षमा और तटस्थ नीतियो का रग पहली बार फीका लगा। यही वह बिन्दु था जब हमे, हमारी पद्धति और शक्ति का पुनर्मूल्याकन करने का अवसर मिला। कहने का तात्पर्य यह है कि सन् 60 के पश्चात् जीवन बदला, राजनीतिक शक्ति बदली और इस बदले हुए समस्त परिवेश के प्रभाव से कविता भी अपने को बचा नही पाई।

परिवेश और पहचान

साठोत्तर वर्षों में लिखी गई कविता का बदला हुआ मिजाज गवाह है कि यह परिवर्तन बदलते परिवेश से जन्मी विवशता का परिणाम था। कविता मे जो परिवेश और स्थितियाँ उभरी वे राजनैतिक और सामाजिक परिवर्तन के साथ-साथ नये विकसित जीवन मूल्यो और उनसे सम्बद्ध स्थितियो का सच्चा इतिहास हैं। कविता का कथ्य और शिल्प अपने समय से जुडा हुआ है। इसी से उसम अनेक ऐसी प्रवृत्तियाँ उभरी हैं जो मोहभग, सपाटबयानी, विद्रोह आक्रोश, आन्तरिक सघर्ष, निर्मम वास्तविकताओ की प्रतिकृति, अर्थहीनता ऊब, झुंझलाहट, बेचैनी, असतोष और अजनबीयत के भावो से जुडी हुई हैं। कितनी ही त्रासद स्थितियाँ कविता की पक्तियो मे

बैठकर आत्मीयता से सारे समाज की ओर दृक्पात करती दिखाई देती हैं। ध्यान देने की बात यह है कि इन स्थितियो के लिए अकेला चीनी आक्रमण जिम्मेदार नही है। पाकिस्तान के वे दो आक्रमण भी जिम्मेदार हैं जिनसे जीवन को दिशा भी बदली और देश की राजनीति भी। इन आक्रमणो, इनके प्रभावो, परिणामो और सम्बधित प्रश्नो-उपप्रश्नो ने न केवल बुद्धिजीवियो को अपितु आम आदमी को भी प्रभावित किया। यही पर हमारे मो-हभग की प्रक्रिया भी घटित हुई जिसे साठोत्तरी कविता मे देखा जा सकता है।

मोहभग के साथ-साथ विद्रोह और आक्रोश का स्वर उभरा। जो नयी पीढी सामने आई, उसने प्रस्थापित मूल्यों, स्थापित व्यवस्था और हवाई आदर्शो पर प्रहार करने प्रारभ कर दिये। एकबारगी समूचा जनमानस बौखला उठा, व्यक्ति के मनोराज्य मे आशका, असतोप, आक्रोश और भय व्याप्त हो गया। इन सभी स्थितियों के बीज भारतीय परिवेश मे थे; हमारी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थितियो मे थे। राष्ट्रीय स्तर पर ही नही, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी हम अनेक समस्याओ से जूझ रहे थे। समसामयिक अन्तर्राष्ट्रीय चेतना से जुडे हुए कारणो मे विज्ञान की भयावह और विध्वसक शक्ति, मानवीय सत्ता का सकुचन, अधिनायकवादी और अतिमानवीय सगठनो की प्रमुता, पूँजीवादी व्यवस्था के दुष्परिणाम, अस्तित्व के प्रति जागरूकता और अभिशापित स्थितियो म जीने से उत्पन्न विक्षोभ, तनाव, सत्रास, ऊब, अजनबीयत और आक्रोश आदि के स्वर प्रबल से प्रबलतर होते गये। इसका सीधा प्रभाव साठोत्तर कविता पर पडा जिसे अनेक सजग कवियो ने ईमानी शैली मे अभिव्यक्त किया है। यही पर यह भी ध्यातव्य है कि उक्त सन्दर्भो की अभिव्यजना के दौरान कविता अकविता, अतिकविता, ताजी कविता, सूर्योदयी कविता, मोहभग की कविता और अस्वीकृत कविता जैसे नामो का शोर भी बढा। सन् 60 के बाद कविता जिस रूप मे सामने आई उसकी कोई ठोस उपलब्धि 65 तक दिखलाई नही दी। हाँ, उसके बाद उसमे काफी निखार आया है। जो भी हो एक बात सही है कि नयी कविता मे जो 'मैनरिज्म' विकसित हो गया था-विशेषकर भाषा के क्षेत्र मे उससे मुक्ति दिलाने का साहसिक और उल्लेखनीय प्रयत्न साठोत्तरी कविता मे देखा जा सकता है। मानव से सीधे साक्षात्कार से वर्ण्य-वस्तु मे जो सहजता, निश्छलता और साहसिकता आई है वह पहले भी थी किन्तु यहाँ आकर वह सर्वत्र फैलती दिखाई देती है। आज जो सकट और वैपम्य सामने है, उसका अहसास और अभिव्यक्ति की 'टोन' (मुहावरा) भी बदली है। यह परिवर्तन जरूरी था और ऐसी स्थितियो मे सदैव जरूरी रहेगा।

साठोत्तर पीढी को नकारना उचित नहीं है। हाँ, नकार उस पीढी की कविताओ के लिए तो ठीक है जो कतिपय आरोपित सदर्भों और मुखौटों को साथ ले आई हैं या जिसकी कविताओ म यौन-सदर्भों की विकृतियो को ही स्थान प्राप्त है।

साठोत्तर वर्षों मे जो सही समझ वाले कवि उभरे हैं, उनकी कविताएँ जिन्दगी से सीधे साक्षात्कार की कविताएँ है । अधिकतर ये सभी उस मुहिम पर खडे है जहाँ जिन्दगी मरा हुआ चूहा, बासी वर्तन, टुकडो मे बँटती जाने से अनेक विसगतियो का पुज और आत्मनिर्वासन का दाह लिए उपस्थित है । इनमे एक नई करवट लेने की छटपटाहट और कसमसाहट है । प्रश्न है कि आखिर साठोत्तरी कविता की वस्तु इतनी भयावह और विसगति पूर्ण क्यो है ? मैं समझता हूँ कि इसके कारण हमारे आस-पास ही हैं । वे उस परिवेश मे ही व्याप्त हैं जो पिछले दो दशको मे काफी बदल गया है । आज आजादी कायम है, पर जैसे एक दूसरे स्तर पर, चाहे तो उसे भीतरी कह लीजिये, हम पराधीन होते जा रहे है । अपनी शक्ल भूल गये हैं । नतीजा यह कि हम जीवित होकर भी लाश, आजाद होकर भी पराधीन, परिचित होकर भी अपरिचित और मामूली होकर रह गये हैं । हम सभ्य भी असभ्य भी, मानव भी, अमानव भी, शोषक भी, शोषित भी और तमाम अन्तर्विरोधो के बाद आदमी हैं और जरूर हैं । शिरायें तनती हैं और तनकर भी टूटती या फटती नही वरन् सिकुड जाती हैं । कैसी लाचारी है कि न तो हम पूरी तरह आक्रोश कर पाते हैं, न प्रेम, न घृणा और न उपेक्षा ही । यानी कि हम हैं, पर हम मे कुछ भी ऐसा नही जो पूरा हो । अधूरी जिन्दगी का यह अधूरा वृत्त कितनी ही विसगतियो की वैसाखियो के सहारे बना हुआ है । इस तरह कोई कब तक रह सकता है ? नही रह सकता, इसलिए बिखर जाता है । फिर उठता है, कोशिश करता हूँ तो हर कोशिश उसे तग और चक्करदार गलियो में भटका देती है ।

विवशता ऊब अकुलाहट, 'तनाव 'अजनबीयत' अकेलापन, चाहे-अनचाहे सदर्भों में जीना, दूसरो द्वारा जिया जाना सब कुछ कैसे होता है ? क्यो होता है ? हर आदमी एक दूसरे का और दूसरा तीसरे का दहेज कब हो जाता है ? चाहने पर भी वह व्यक्ति क्यो नही रह पाता; वह सबके साथ एक ही कुएँ का पानी पीकर भी विष क्या उगलता है ? आदि कितने ही सवालो से घिरी जिन्दगी मे भी अपने को अलग पहचनवाने का मोह क्यों रहता है ? ये ज्वलन्त प्रश्न हैं । यही वह धरती है जहाँ विसगति, विडम्बना और आक्रोश जन्म लेते हैं और यही वह भूमिका है जहाँ अनगिनत नामर्दियों के बीच आदमी जीने को विवश है । इन्ही सब स्थितियो से हमारे वर्तमान परिवेश की जमीन पटी पड़ी है और इसी पर साँस लेने वाला सवेदनशील कलाकार अपनी कविता का पट इन्ही स्थितियो के धागो से बुन रहा है । ये सभी स्थितियाँ अनिवार्यताएँ बनकर कवि के गले मे फँसी हुई हैं । आज के आदमी को उसके समस्त अन्तर्विरोधो के साथ, सकल्प विकल्पो और निश्चय-अनिश्चयो के साथ साठोत्तर कवि ने पहिचान लिया है । यह पहचान काफी साफ तेज और तल्ख है तभी तो कविता मे एक जोरदार कशिश एक छटपटाहट; असपन्नता, नैराश्य, स्वनभग और आक्रोशी व अस्वीकारी मुद्रा उभरी है । वस्तुत इस प्रकार के चित्रण की शुरुआत नयी कविता ने ही की थी । उसने ही आदमी के सामने एक ऐसा दर्पण रख दिया जिसमें वह अपना

बैठकर आत्मीयता से सारे समाज की ओर दृक्पात करती दिखाई देती है। ध्यान देने की बात यह है कि इन स्थितियों के लिए अकेला चीनी आक्रमण जिम्मेदार नहीं है। पाकिस्तान के वे दो आक्रमण भी जिम्मेदार हैं जिनसे जीवन को दिशा भी बदली और देश की राजनीति भी। इन आक्रमणों, इनके प्रभावों, परिणामों और सम्बंधित प्रश्नो-उपप्रश्नों ने न केवल बुद्धिजीवियों को अपितु आम आदमी को भी प्रभावित किया। यहीं पर हमारे मो-हभग की प्रक्रिया भी घटित हुई जिसे साठोत्तरी कविता मे देखा जा सकता है।

मोहभग के साथ-साथ विद्रोह और आक्रोश का स्वर उभरा। जो नयी पीढ़ी सामने आई, उसने प्रस्थापित मूल्यों, स्थापित व्यवस्था और हवाई आदर्शों पर प्रहार करने प्रारभ कर दिये। एकबारगी समूचा जनमानस बौखला उठा, व्यक्ति के मनो-राज्य मे आशका, असंतोष, आक्रोश और भय व्याप्त हो गया। इन सभी स्थितियों के बीज भारतीय परिवेश मे थे; हमारी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थितियो मे थे। राष्ट्रीय स्तर पर ही नही, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी हम अनेक समस्याओं से जूझ रहे थे। समसामयिक अन्तर्राष्ट्रीय चेतना से जुड़े हुए कारणों मे विज्ञान की भयावह और विध्वसक शक्ति, मानवीय सत्ता का सकुचन, अधिनायकवादी और अतिमानवीय सगठनो की प्रमुखता, पूँजीवादी व्यवस्था के दुष्परिणाम, अस्तित्व के प्रति जागरूकता और अभिशापित स्थितियो में जीने से उत्पन्न विक्षोभ, तनाव, सत्रास, ऊब, अजनबीयत और आक्रोश आदि के स्वर प्रबल से प्रबलतर होते गये। इसका सीधा प्रभाव साठोत्तर कविता पर पड़ा जिसे अनेक सजग कवियों ने ईमानी शैली मे अभिव्यक्त किया है। यहीं पर यह भी ध्यातव्य है कि उक्त सन्दर्भों की अभिव्यंजना के दौरान कविता अकविता, अतिकविता, ताजी कविता, सूर्योदयी कविता, मोहभग की कविता और अस्वीकृत कविता जैसे नामो का शोर भी बढ़ा। सन् 60 के बाद कविता जिस रूप मे सामने आई उसकी कोई ठोस उपलब्धि 65 तक दिखलाई नहीं दी। हाँ, उसके बाद उसमे काफी निखार आया है। जो भी हो एक बात सही है कि नयी कविता मे जो 'मैनरिज्म' विकसित हो गया था—विशेषकर भाषा के क्षेत्र मे उससे मुक्ति दिलाने का साहसिक और उल्लेखनीय प्रयत्न साठोत्तरी कविता मे देखा जा सकता है। मानव से सीधे साक्षात्कार से वर्ण्य-वस्तु में जो सहजता, निश्छलता और साहसिकता आई है वह पहले भी थी किन्तु यहाँ आकर वह सर्वत्र फैलती दिखाई देती है। आज जो सकट और वैषम्य सामने है, उसका अहसास और अभिव्यक्ति की 'टोन' (मुहावरा) भी बदली है। यह परिवर्तन जरूरी था और ऐसी स्थितियो मे सदैव जरूरी रहेगा।

साठोत्तर पीढ़ी को नकारना उचित नही है। हाँ, नकार उस पीढ़ी की कविताओं के लिए तो ठीक है जो कतिपय आरोपित सदर्भों और मुखौटों को साथ ले आई हैं या जिसकी कविताओ म यौन-सदर्भों की विकृतियो को ही स्थान प्राप्त है।

साठोत्तर वर्षों मे जो सही समझ वाले कवि उभरे हैं, उनकी कविताएँ जिन्दगी से सीधे साक्षात्कार की कविताएँ हैं। अधिकतर ये सभी उस मुहिम पर खडे हैं जहाँ जिन्दगी मरा हुआ चूहा, वासी वर्तन, टुकडो मे बँटती जाने से अनेक विसगतियो का पुज और आत्मनिर्वासन का दाह लिए उपस्थित है। इनमें एक नई करवट लेने की छटपटाहट और कसमसाहट है। प्रश्न है कि आखिर साठोत्तरी कविता की वस्तु इतनी भयावह और विसगति पूर्ण क्यो है? मैं समझता हूँ कि इसके कारण हमारे आस-पास ही हैं। वे उस परिवेश मे ही व्याप्त हैं जो पिछले दो दशकों मे काफी वदल गया है। आज आजादी कायम है, पर जैसे एक दूसरे स्तर पर, चाहे तो उसे भीतरी कह लीजिये, हम पराधीन होते जा रहे हैं। अपनी शक्ल भूल गये हैं। नतीजा यह कि हम जीवित होकर भी लाश, आजाद होकर भी पराधीन, परिचित होकर भी अपरिचित और मामूली होकर रह गये हैं। हम सभ्य भी असभ्य भी; मानव भी, अमानव भी, शोषक भी, शोषित भी और तमाम अन्तर्विरोधो के बाद आदमी हैं और जरूर हैं। शिरायें तनती हैं और तनकर भी टूटती या फटती नही वरन् सिकुड जाती हैं। कैसी लाचारी है कि न तो हम पूरी तरह आक्रोश कर पाते हैं, न प्रेम; न घृणा और न उपेक्षा ही। यानी कि हम हैं, पर हम मे कुछ भी ऐसा नही जो पूरा हो। अधूरी जिन्दगी का यह अधूरा वृत्त कितनी ही विसगतियो की बैसाखियो के सहारे बना हुआ है। इस तरह कोई कब तक रह सकता है? नही रह सकता; इसलिए बिखर जाता है। फिर उठता है, कोशिश करता है तो हर कोशिश उसे तग और चक्करदार गलियो मे भटका देती है।

विवशता, ऊब अकुलाहट, 'तनाव 'अजनबीयत' अकेलापन, चाहे-अनचाहे सदर्भों मे जीना, दूसरो द्वारा जिया जाना सब कुछ कैसे होता है? क्यो होता है? हर आदमी एक दूसरे का और दूसरा तीसरे का दहेज कब हो जाता है? चाहने पर भी वह व्यक्ति क्यो नही रह पाता; वह सबके साथ एक ही कुएँ का पानी पीकर भी विष क्यो उगलता है? आदि कितने ही सवालों से घिरी जिन्दगी मे भी अपने को अलग पहचनवाने का मोह क्यों रहता है? ये ज्वलन्त प्रश्न हैं। यही वह धरती है जहाँ विसगति, विडम्बना और आक्रोश जन्म लेते हैं और यही वह भूमिका है जहाँ अनगिनत त्रासदियों के बीच आदमी जीने को विवश है। इन्ही सब स्थितियो से हमारे वर्तमान परिवेश की जमीन पटी पडी है और इसी पर साँस लेने वाला सवेदनशील कलाकार अपनी कविता का पट इन्ही स्थितियो के धागो से बुन रहा है। ये सभी स्थितियाँ अनिवार्यताएँ बनकर कवि के गले मे फँसी हुई हैं। आज के आदमी को उसके समस्त अन्तर्विरोधो के साथ, सकल्प-विकल्पो और निश्चय-अनिश्चयो के साथ साठोत्तर कवि ने पहिचान लिया है। यह पहचान काफी साफ तेज और तल्ख है तभी तो कविता मे एक जोरदार कशिश एक छटपटाहट; असफलता, नैराश्य, स्वनभग और आक्रोशी व अस्वीकारी मुद्रा उभरी है। वस्तुत इस प्रकार के चित्रण की शुरुआत नयी कविता ने ही की थी। उसने ही आदमी के सामने एक ऐसा दर्पण रख दिया जिसमे वह अपना

असली चेहरा तो देख ही सका, अन्दरूनी तसवीर की हल्की-गहरी सभी रेखाएँ भी पूरे रोएँ-रेशो के साथ देख सका। तलघर मे छिपे कितने ही बिम्ब ऊपर तैर गय। विज्ञान तो मन की 'एक्सरे मशीन' ईजाद न कर सका, किन्तु कविता ने वह काम कर दिखाया। स्पष्ट है कि साठोत्तरी कविता नयी कविता के ही कतिपय प्रसगो का एक *विशेष दिशा मे हुआ विकास है। आज चाहे अधिकाश युवा कवि इसे नयी कविता से* बिलकुल अलग काव्य-प्रयत्न मानने की वकालत कर रहे हो, किन्तु यह सही है कि साठोत्तर कविता नयी कविता के ही कतिपय तीखे सदर्भो की यथार्थ अभिव्यजना हैं वह इसी अर्थ मे नयी कविता से अलग हैं कि इसम वस्तु Content के प्रति एक साफ और तीखी नजर दिखलाई देती हैं। फिर ऐसा मान लेने से साठोत्तरी कविता की उपलब्धियो और नयी चिन्तना—अभिव्यजना को कोई आघात भी नही पहुँचता हैं।

यह सच है कि सन् 65 के बाद की कविता के तेवर बदले हुए हैं। उसके स्वरो मे मोहभग अस्वीकार, आक्रोश, व्यग्य, यथार्थ जीवन का सीधा साक्षात्कार, जीवन के जटिल प्रसगो,सघर्षों की अभिव्यजना, साहसिकता, खरापन, तनाव, छटपटाहट, अपरिचय, अविश्वास, ऊब, मूल्यहीनता और बेलौस सपाटबयानी पूर्वापेक्षा अधिक है। 'पूर्वापेक्षा अधिक' वाक्यांश को लिखने के पीछे यही धारणा है कि ये सब स्वर नयी कविता मे थे। अत साठोत्तर कविता बदलते परिप्रेक्ष्य की कविता तो है, किन्तु उसका आविर्भाव नयी कविता के दौर का समाप्त हो जाना नही है, अपितु उसके ही कतिपय सदर्भ स्वरो का व्यापक स्तर पर ईमानदार प्रस्तुतीकरण भर है। इसमे मानव-स्थिति की समझ और पहचान काफी गहरी होती गई है।

प्रवृत्ति विश्लेषण

साठोत्तरी कविता समकालीन जीवन का भूगोल है। उसम वर्तमान परिवेश की निर्मम वास्तविकताएँ, उनसे उत्पन्न दबाव, तनाव के साथ मानवीय-सम्बधो की कृत्रिमता निरूपित हुई है। इसी से यह कविता अपने पारपरिक रूप स्वरूप और अर्थ से च्युत हो गई है। इस कविता की पहचान का कुछ-कुछ अन्दाज दूधनाथसिंह के इस कथन से हो सकता है "यह वह कविता नही है / यह केवल खून सनी चमडी उतार लेने की तरह है / यह केवल रस नही / जहर है जहर "/ जाहिर है कि साठोत्तरी *कविता निर्मम वास्तविकताओ की क्रूर व्यजना है, असह्य परिवेश से उपजी* चीख है। लगता कि पारपरिक अर्थ मे कविता स्थगित हो गयी है और एक नयी कविता-धारणा का स्वर साठोत्तरी कविता मे सुना जा सकता है। यह वह कविता है जो अन्याय के खिलाफ खडी है, शासन द्वारा कही जाने वाली चिक्नी बातो पर आक्रोशी स्वर मे जल रही है और अपनी समूची शब्दावली से आदमी और उसके परिवेश की हर परत को उघाड रही है। ऐसी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियो को इस प्रकार विश्लेपित किया जा सकता है;

1 रोमानी सस्कारो से मुक्ति

सन् साठ के बाद की कविता मे जो पहली प्रवृत्ति उभरी है, वह रोमानी या छायावादी अभिरुचि या सस्कारो से मुक्ति है। नयी कविता नवीन तो थी, यथार्थ तो थी और परिवेश से प्रतिबद्ध तो थी, किन्तु एक सीमा तक छायावादी सौन्दर्य से भी सिक्त थी। उसम एक सीमा तक छायावादी रोमान बराबर जिन्दा रहा है। यह माना कि नयी कविता इसके खिलाफ झडा लेकर आई थी, किन्तु झण्डा लाना, खिलाफत की बात करना एक बात है और सचमुच ऐसा कर पाना बिल्कुल दूसरी बात है। यही वजह है कि नये कवि बावजूद मौलिक चिन्तना और शिल्प के नये आयामो के राग-सवेदन के छायावादी नुस्खे से पूरी तरह मुक्त नही हो सके। गिरिजाकुमार माथुर 'धूप के धान' मे ही नही 'भीतरी नदी की यात्रा' म भी छायावादी गध को दूर से ही पहचाना जा सकता है। 'अज्ञेय' के 'महावृक्ष के नीचे' मे भी चार-छह कविताएँ ऐसी जरूर हैं जो छायावादी कविताओ की पक्ति म बिठाई जा सकती है। कुँवरनारायण अधिकाशत इससे बचे हैं, परन्तु जब 'आस नहायी रात' का बिम्ब प्रस्तुत करते हैं तो वह पूरा छायावादी लगता है। जगदीश गुप्त का 'हिमबिद्ध' तो छायावादी सौन्दर्य की प्रयोगशाला मे ही बैठकर तैयार किया गया है। वही आसक्ति, वही मधुरिमा, वही सौन्दर्य का लरजता सागर 'हिमबिद्ध' मे है जो कमोबेश रूप मे प्रसाद की लहर, पत के पल्लव और निराला की कुछ कविताओ मे मिलता है। धर्मवीर भारती का 'सातगीत वर्ष' भी छायावादी रगो के छीटे लिए हुए है। 'कनुप्रिया' का तो काफी कुछ छायावादी तन्तुओ से बना हुआ है। यही स्थिति 'एक सूनी नाव' के सर्जक सर्वेश्वर की है जिन्होने अपनी अनेक कविताओ मे छायावाद के उत्कर्षकाल के शिल्प को अपनाया है। उनकी 'भोर' और 'रात' कविताओ का मानवीकरण तो छायावादी साँचा लेकर ही तैयार किया गया है।

सवाल यह है कि ऐसा क्यो हुआ कि कतिपय नये कवियो के यहाँ रोमान अभी भी जीवित है और साठोत्तर कवियो ने उस खिडकी को ही बद कर दिया जहाँ से सौदर्य के वे बिम्ब दिखाई देते हैं जो छायावाद से मेल खाते हैं। मै सोचता हूँ नये कवियों के जीवन मूल्यो मे कही न कही यह भाव जरूर है कि सौन्दर्य का जादू और प्यार का मरहम जीवन के समूचे घावो को भर सकता है। मेरी भी यही धारणा है कि जीवन कितना ही जटिल और परिवेश कितना ही दहशत भरा क्यो न हो जाये प्यार की अनिवार्यता और सौन्दर्य की ओर आकर्षित होने की मूल वृत्ति कभी भी चुक नही सकती है। हमारा मन यदि जीवन की विसगतियो से थका अनुभव करता है, हम टूटने लगते हैं तो उस स्थिति के प्रति आक्रोश जितना अहम है, उतना ही जरूरी है वह लहरिल सागर, आकाश की छाती पर बिखरा इन्द्र धनुष और वह लहर जो तट को छू कर वापस लौट जाती है। फिर जीवन की भयावहताओ की अहमियत रोमान की व्यजना से कम थोडे ही हो जाती है। साठोत्तर वर्षों का ससार ऐसा

जरूर रहा है कि प्यार की गुनगुनाहट के ऊपर गुस्से की गुनगुनाहट तेज और साफ सुनाई दी है, किन्तु रोमानी भावों को दबाया नहीं भी नहीं जा सका है। यह बात अलग है कि उसे कहा इस ढग से गया है जैसे उससे मुक्ति प्राप्त करली गई हो। परिणाम स्वरूप पुरानी मणिमा के रोमानी मिजाज को छोडकर कवि ने कहा : 'विशल खम्भों और आरेंगिन भित्तियो वाली इमारतें / सटकती रहती हैं जहाँ / मशीनो से मये जा रहे दलदल मे / मैं उस शहर से गुजरता हूँ" / [बजरग बिश्नोई] जो प्रेम कभी कविता का सर्वस्व था वही आज के सामने प्रश्न बन गया है क्योंकि भूख से छटपटानी अन्तडियो को प्यार की अपेक्षा रोटी पहले चाहिए। अन कवि राजीव सक्सेना 'प्रेम' किस चिडिया का नाम है जैसे प्रश्न उछालते हैं और कमलेश प्रेम के घेरे को तोडकर रोजमर्रा की भीड मे घुस कर यह कहते हैं -

> "बाजार में आज छ छटाँक की हो दाल मिली, प्याज भी
> चाँदी की तरह तेज, डेढ़ रुपये कचहरी मे
> लग गये वहाँ से लाते खरबूज, सुना ऊँच गाँव मे
> कोई गमी हो गई है।"

इस कविता मे जो मुक्ति की माँग जारी है, उसे ममता अग्रवाल की इन पक्तियो मे भी देखा जा सकता है : "प्यार शब्द घिसते-घिसते/चपटा हो गया है/अब हमारी समझ मे सहवास आता है।" वस्तुत साठोत्तरी कविता मे रोमानी सस्कारों से मुक्ति का प्रयत्न किया गया है। जो कवि इस प्रयत्न मे रहे हैं, उनमे दूधनाथसिंह, श्रीकात वर्मा, लीलाधर जगूडी, धूमिल, कैलाश बाजपेयी, श्रीराम वर्मा और बलदेव वशी आदि के नाम प्रमुख हैं। ये वे कवि हैं जो रोमानी सस्कारो से मुक्ति पाने मे काफी हद तक सफल हुए हैं। 'बसत' शीर्षक कविता की ये पक्तियाँ देखिए : "बसत आयेगा इस वीरान जगल मे/जहाँ वनस्पतियो को सिर उठाने के जुर्म मे/पूरा जगल आग को सौंप दिया गया था/बसत आयेगा दबे पाँव/हमारे तुम्हारे बीच आँखो से होता हुआ/होठो के बीच सवाद कायम करेगा/उदास, उदास मौसम मे/बिजली की तरह हँसी फेंक कर/बसत सिखलायेगा हमे/अधिकार से जीना।" इतना ही क्यो जब कवि को ऋतुओ मे सौन्दर्य नही दिखाई देता और लगता है कि उनमे भी बदलाव का असर आ गया है तो उसका मानस यह अनुभव करने लगता है "हम जानते हैं ऋतुएँ बहुत गरीब है /हमारे लिए/हम जानते हैं नरक के दरवाजे तक जाकर / हमारी यातनाएँ एक बार तो लौटेंगी ही"/[प्रवणकुमार बद्योपाध्याय]।

2. मोह-भंग

समकालीन कविता समाज की मृत मान्यताओ, टूटती हुई परपराओ और मोह-भग की कविता है। उसमे आज की विकृत जिन्दगी और सम्बधो की खीच अभिव्यक्त हुई है। मोह-भग की जो प्रवृत्ति इस कविता मे मिलती है उसे समकालीन परिवेश की तल्खी से उत्पन्न प्रतिक्रिया माना जा सकता है। आजादी के बाद ठोस

जरूर रहा है कि प्यार की गुनगुनाहट के ऊपर गुस्से की भुनभुनाहट तेज और साफ सुनाई दी है, किन्तु रोमानी भावों को दफनाया वहाँ भी नहीं जा सका है। यह बात अलग है कि उसे कहा इस ढग से गया है जैसे उसमे मुक्ति प्राप्त करली गई हो। परिणाम स्वरूप पुरानी भगिमा के रोमानी मिजाज को छोडकर कवि ने कहा ' 'विशन स्तभों और आरेखित भित्तियो वाली इमारतें / लटकती रहती हैं जहाँ / मशीनो से मथे जा रहे दलदल मे / मैं उस शहर से गुजरता हूँ'' / [बजरग विश्नोई] जो प्रेम कभी कविता का सर्वस्व था वही आज के सामने प्रश्न बन गया है क्योंकि भूख से छटपटाती अन्त-डियो को प्यार की अपेक्षा रोटी पहले चाहिए। अन कवि राजीव सक्सेना 'प्रेम' किस चिडिया का नाम है जैसे प्रश्न उछालते हैं और कमलेश प्रेम के घेरे को तोडकर रोजमर्रा की भीड मे घुस कर यह कहते हैं :

> "बाजार में आज छ छटाँक की ही दाल मिली, प्याज भी
> चाँदी की तरह तेज, डेढ़ रुपये कचहरी मे
> लग गये कहाँ से लाते तरबूज, सुना ऊँच गाँव मे
> कोई गमी हो गई है।"

इस कविता मे जो मुक्ति की माँग जारी है, उसे ममता अग्रवाल की इन पक्तियो मे भी देखा जा सकता है ."प्यार शब्द घिसते घिसते/चपटा हो गया है/अब हमारी समझ मे सहवास आता है।" वस्तुत साठोत्तरी कविता मे रोमानी सस्कारो से मुक्ति का प्रयत्न किया गया है। जो कवि इस प्रयत्न मे रहे हैं, उनमे दूधनाथसिंह, श्रीकात वर्मा, लीलाधर जगूडी, धूमिल, कैलाश वाजपेयी, श्रीराम वर्मा और बलदेव वशी आदि के नाम प्रमुख हैं। ये वे कवि हैं जो रोमानी सस्कारो से मुक्ति पाने मे काफी हद तक सफल हुए हैं। 'बसत' शीर्षक कविता की ये पक्तियाँ देखिए : "बसत आयगा इस वीरान जगल मे/जहाँ वनस्पतियो को सिर उठाने के जुर्म मे/पूरा जगल आग को सौंप दिया गया था/बसत आयेगा दबे पाँव/हमारे तुम्हारे बीच आँखो से होता हुआ/ होठो के बीच सवाद कायम करेगा/उदास, उदास मौसम मे/बिजली की तरह हँसी फेंक कर/बसत सिखलायेगा हमे/अधिकार से जीना।" इतना ही क्यो जब कवि को ऋतुओ मे सौन्दर्य नही दिखाई देता और लगता है कि उनमे भी बदलाव का असर आ गया है तो उसका मानस यह अनुभव करने लगता है· "हम जानते हैं ऋतुएँ बहुत गरीब हैं /हमारे लिए/हम जानते हैं नरक के दरवाजे तक जाकर / हमारी यान्तनाएँ एक बार तो लौटेंगी ही"/[प्रवणकुमार बध्योपाध्याय]।

2. मोह-भंग

समकालीन कविता समाज की मृत मान्यताओ, टूटती हुई परपराओ और मोह भग की कविता है। उसमे आज की विकृत जिन्दगी और सम्बधो की खीच अभिव्यक्त हुई है। मोह भग की जो प्रवृत्ति इस कविता मे मिलती है उसे समकालीन परिवेश की तल्खी से उत्पन्न प्रतिक्रिया माना जा सकता है। आजादी के बाद ठोस

उपलब्धि के नाम पर केवल 'आजादी' शब्द ही मिला है जिसे तीन थके हुए रगो से जाना जा सकता है। चीन का आक्रमण, कच्छ न्यायाधिकरण का दुर्भावनापूर्ण निर्णय, ताशकद घोषणा, काग्रेस सरकार की निष्क्रियता, जडता, राजनीतिक अव्यवस्था, भ्रष्टाचार, नेताओ द्वारा प्रदत्त झूठे आश्वासन, निरतर बढती हुई कमर तोड मँहगाई, अकाल, बेरोगारी, भुखमरी, जातिवाद और भ्रष्ट प्रशासन आदि ऐसे अनेक तत्व थे जिनसे मोह-भग की स्थिति पैदा हुई। यह मोह-भग साठोत्तरी कविता की प्रमुख प्रवृत्ति है। आजादी के बाद हर बार लालकिले की दीवार से तिरगा तो फहराया जाता रहा, किन्तु देश के निर्माण का; उसे आत्मनिर्भर बनाने का स्वप्न अधर मे झूलता रहा। समृद्धि के स्थान पर विपन्नता: भूख व नगापन बढता गया और मानव मोह-भग की स्थिति से गुजरने लगा। धूमिल की निम्नाकित पक्तियाँ इसी मोह-भग को सूचित करती हैं :

"मैंने इन्तजार किया
अब कोई बच्चा भूखा रहकर
स्कूल नहीं जायेगा
अब कोई छत
बारिश मे नहीं टपकेगी

× × × ×

अब कोई किसी की रोटी नहीं छीनेगा
कोई किसी को नगा नहीं करेगा
मैं इन्तजार करता रहा।
मगर एक दिन मैं स्तब्ध रह गया
मेरा सारा धीरज युद्ध की आग से
पिघलती हुई बर्फ में बह गया।"

इसी मोह-भग की स्थिति की सटीक अभिव्यजना लीलाधर जगूडी की इन पक्तियो मे देखिये :

"सूचना विभाग के हर पोस्टर पर
खुशहाली है। चारों ओर
कगाली के पास आटा नहीं गाली है।
और जिसमें कोई नहीं
खाना चाहता
आजादी एक झूठी थाली है।"

रघुवीरसहाय एक ऐसे कवि हैं जो परिवेश के प्रति सर्वाधिक प्रतिबद्ध रहे हैं। उनका परिवेश अधिकतर राजनैतिक सदर्भों से निर्मित हुआ है। वे जानते हैं कि कांग्रेस-प्रशासन से आशा लगाना व्यर्थ है क्योंकि अब तक के सभी सजीले स्वप्न मिट्टी मे मिल गये हैं और नेता लोग निरन्तर नारेबाजी से जनता को भुलावने मे डालते रहते हैं। उन्होंने मोह-भग की इसी स्थिति में लिखा है :

"बीस साल
धोखा दिया गया
वहीं फिर मुझे कहा जायेगा विश्वास करने को
पूछेगा ससद मे भोलाभाला मन्त्री
मामला बताओं हम कारवाई करेंगे
हाय-हाय करता हुआ हां-हां करता हुआ हैं-हैं करता हुआ दल का दल
पाप छिपा रखने के लिये एक जुट होगा
जितना बडा दल होगा उतना ही खायेगा देश को।"

सन् साठ के बाद के वर्षों म त्रासद स्थितियां उभरती गई। देश के नेता व प्रशासक लापरवाही से नीद म ऊंघते रहे। कुर्सी की लडाई—उखाड पछाड, चलती रही। शोषक अपने पट का आयतन बढाते रहे, बडे-बडे पूंजीपतियो के मुर्ते के घेर चोरी बन गये और मदाध और सत्ता लोलुप अपनी गति से चलते रहे। सवेदनशील कवि और बुद्धिजीवियो ने उक्त स्थितियों को बखूबी देखा और राजकमल का कवि मोह मग की मुद्रा मे कह उठा है

"आदमी को तोडती नहीं है लोकतात्रिक पद्धतियां केवल पेट के बल
उसे झुका देती हैं धीरे-धीरे अपाहिज
धीरे-धीरे नपु सक बना लेने के लिये उसे शिष्ट राजभक्त देशप्रेमी
नागरिक बना लेती हैं
आदमी को इस लोकतत्री सरकार से अलग हो जाना चाहिए।"

मोह-भग की स्थिति को धूमिल, लीलाधर जगूडी और बलदेव वशी ने न केवल कविताओ मे कहा है वरन् उसे एक साफ जुबान में इस रूप मे कहा कि पाठक तिलमिला उठता है। व्यवस्था, व्यवस्था मे जीने वाला आदमी और वह मजदूर जो रोटी पैदा करता है, तीनों धूमिल की निगाह म है किन्तु कवि का मोह-भग तब साफ हाता है जब वह कहता है "एक आदमी रोटी बेलता है एक आदमी रोटी खाता है/एक तीसरा आदमी भी है/जो न रोटी बेलता है, न रोटी खाता है/वह सिर्फ रोटी से खेलता है/ मैं पूछता हूँ यह तीसरा आदमी कौन है ? मेरे देश की ससद मौन है" / असल मे आजादी मिलने के इतने साल बाद भी जब देश की ससद भूख, बीमारी और बेरोजगारी का इलाज न कर सकी तो आदमी के रूप म मिलने वाला सुनहरा स्वप्न टूक-टूक हो गया। यह स्थिति जहां आम आदमी को तोडती रही है, वही सवेदनशील

कवियो की आत्मा को खरोचती हुई उनसे कविता की भाषा मे कहलाती रही है :

> "संसद में काफी देर तक/नग्न सार्वजनिक समस्याओं पर/बहस चलती रही/
> प्रश्न उभर दीवालों से चिपकते गये/ इन सवालो से सब परिचित थे/
> किन्तु अजाने बने सोते रहे /........शाम होते-होते ससद भवन / खाली
> उदास और बेजान हो गया/.. .... समस्याएँ मैदान मे लोटती रहीं/और
> अभ्यस्त फाइलें / उन्हें गोद मे पुचकारती / ध्वनि शून्य हो चुकी थी" ।
> [मत्स्येन्द्र शुक्ल]

जीवन से सीधा साक्षात्कार

साठोत्तरी कविता परिवेश के प्रति प्रतिबद्ध है। उसमे जीवन की यथार्थ स्थितियो से सीधा साक्षात्कार चित्रित हुआ है। पिछले दशक की कविता सघर्ष केन्द्रित है। उसमे जीवन का सही, निर्मम और सीधा साक्षात्कार करके उपलब्ध अनुभूतियो का अनुभवाकन हुआ है। इसमे उत्तेजना, खीझ, असतोष निराशा और कडुवाहट है। नयी कविता ने पारपरिक आदर्शों, मूल्यो और स्थापित मान्यताओ का विरोध भर किया, किन्तु आज का कवि समाज की विकृतियो मे खुद हिस्सा ले रहा है। आज का कवि जब मनुष्य को दोहरी जिन्दगी जीते देखता है तो वह साक्षात्कृत परिवेश के प्रति अपनी प्रतिबद्धता सूचित-करता है। यह प्रतिबद्धता और कुछ नही कवि की सचेत दृष्टि द्वारा परिवेश का सही ग्रहण ही है और यही समकालीन सदर्भों और स्थितियो से सीधा साक्षात्कार है। केदारनाथ सिह, मलयज, धूमिल, प्रयाग शुक्ल और राजकमल चौधरी की कविताएँ इसी सीधे साक्षात्कार की वे कविताएँ हैं जो अभिव्यक्ति के सारे खतरे उठाकर लिखी गई हैं। 'धूमिल' को कविता की रचना के दौरान अपने आस-पास के घेराव का पूरा ज्ञान रहा है जिसमे मनुष्य की भीषणता और यान्त्रिकता भी शामिल है। 'मोचीराम', 'उस औरत की बगल मे लेटकर' 'पटकथा' 'जनतत्र के सूर्योदय मे', 'गाँव' और 'प्रौढ शिक्षा' कविताओ मे जीवन से सीधा साक्षात्कार देखने को मिलता है। 'कल सुनना मुझे' की कविताओ मे तो यह साक्षात्कार जैसे भीतर से फूटकर कविता के पृष्ठों पर फैल गया है। जब वे कहते हैं कि "वह चाहे जो है जहाँ कही है, आजकल कोई आदमी जूते की माप के बाहर नहीं है" तो लगता है कि वे समूचे परिवेश के दबाव-तनाव को सहते हुए मानव की त्रासद स्थितियो मे खुद घुल गये हैं। 'उस औरत की बगल मे लेटकर' कविता मे यह साक्षात्कार तीखापन लेकर आया है। 'पटकथा' का परिदृश्य भी ऐसा ही है जिसमे समूचा राजनैतिक परिवेश आ गया है। ससद, सविधान, प्रजातत्र और जनता सभी का खुला कच्चा चिट्ठा कविता मे देखा जा सकता है :

> अपने यहाँ ससद, तेली की वह घानी है,
> जिसमें आधा तेल है और आधा पानी है

"कवियों की शब्दावली में लिखे गये शांति के संयुक्त वक्तव्य
हाइड्रोजन बम परीक्षण में पंख फड़फड़ाते हुए
कबूतरों की मौत मर जाते हैं
और बाकी शहरों में राजनीतिक वेश्याओं ने पीला मटमैला अँधेरा
फैला रखा है।
अपनी देह को उजागर करने के लिये
नयी दिल्ली में और ढाका करांची में अब कोई फर्क नहीं है।"

मूल्यों और आदर्शों की व्यर्थता और अप्रामाणिकता को प्रमाणित करता हुआ राजकमल का कवि अस्वीकार के स्वर में यह भी कह देता है . "पराजय के तीस वर्षों में एकत्र की गई धर्म, सैक्स इतिहास/ समाज परिकल्पना ज्योतिष की किताबें डाक टिकट सिक्के सोवेनियर/ मैं बड़े डाक घर के बहुत बड़े लैटरबॉक्स में डाल आया"/ निश्चय ही राजकमल का यह अस्वीकार फैशन के तौर पर किया गया अस्वीकार मात्र नहीं है। इसमें कवि मानवीय अस्मिता के ठीक सामने खड़ा है। अस्वीकार में वक्तव्यबाजी; फिकरेबाजी और फैशन का रंग कैलाश बाजपेयी में भी कहीं-कहीं मिलता है। जहाँ यह है वहीं कविता की प्रामाणिकता को खतरा पैदा हो गया है। 'स्नायुघात', 'आगामी भूत वाणी' और 'देश-एक शोक गीत' कविताओं में इसी अप्रामाणिकता के खतरे को देखा जा सकता है। दूधनाथसिंह के यहाँ यही अस्वीकार संवेदना के सूक्ष्म धरातल पर है और वह वरण की स्वतंत्रता से संसिक्त होकर आया है क्योंकि 'भारतीय प्रजातंत्र उन्हें एक ढकोसला दिखाई देता है और वे "अँधियारे के शून्य में बाँहें फैलायें, मौत के भयानक काले मेहरावी जबड़े से गुजर रहा है।" अस्वीकार की यह मुद्रा मानवीय मुक्ति और मानवीय नियति से संवेदनात्मक स्तर पर अभिव्यंजना के क्षणों में जुड़ गई है। 'श्याम परमार' में जो अस्वीकार बोध है वह भी वैचारिकता लिये हुए है। अस्वीकार के इस बौद्धिक धरातल को इन पंक्तियों में देखा जा सकता है।

"गोल चेहरे वाले सत्य को कविता की भट्टी में झोंककर
मुझे मालूम हुआ जा रहा है कि आज का सच लोहा नहीं है।"

'सौमित्र मोहन' की 'लुकमान अली' कविता का अस्वीकार भी जीवन की विसंगतियों से जुड़कर निरन्तर एक रचाव की मुद्रा में प्रतिफलित हुआ है। कहने का तात्पर्य यह है कि अस्वीकार हथियार तो है, किन्तु उसका प्रयोग बौद्धिक एवं रचनात्मकता के साथ होना चाहिए न कि जुमलेबाजी की शैली का खोल ओढ़कर निरर्थकता के धरातल पर। कारण, अस्वीकार जब वैचारिकता और रचनात्मकता से जुड़ा होगा तभी वह मानव जीवन और उसकी नियति के समस्त संदर्भों का कलात्मक रूपान्तरण बन सकता है।

त उनका व्यग्य प्रभावी और तिलमिला देने वाला हो गया है। एक कवि की म्नाकित पक्तियाँ तो देखिये जिनम कहा गया है कि भ्रष्टाचार का विरोध न करना ौर चुपचाप उस सहते जाना भी एक तरीके का भ्रष्टाचार ही है। कवि व्यग्यमयी ाणी मे 'नाग' को भ्रष्टाचार का प्रतीकार्थ देकर कहता है

> 'आज हम सब नागदेश के अधिवासी
> हमारे चारों ओर नाग ही नाग हैं
> कुछ काले हैं, कुछ कबरे कुछ अजगर
> हम उन्हे दूध देकर पाल रहे हैं"

प्रभावी व्यग्य की दृष्टि से श्रीकान्त वर्मा की कविताओ को भी नही भुलाया जा सकता है। दिनारभ और 'मायादर्पण' की अधिकाश छोटी बडी कविताओ म व्यग्य का भाव पर्याप्त गहरा है। कवि जब कहता है कि "न मरी कविताए हैं, न मरे पाठक हैं यहाँ तक कि मेरी सिगरेटें भी नही हैं' तो सिगरेट के प्रयोग स उभरा व्यग्य और भी गहरा हो जाता है। यही व्यग्य जब कवि को आत्मसाक्षात्कार की सीढी पर लाता है तो वह अपने को टटोलते हुए दावे के साथ कहता है कि 'मै एक साथ ही मुर्दा भी हूँ और ऊदबिलाव भी, मै एक बासी दुनियाँ की मिट्टी म दबा हुआ अपन को खोज रहा हूँ"/ व्यग्य की मुद्रा मे ही श्रीकात का कवि जो लिख गया है उसम समकालीन परिवेश मे उभरते मान मूल्यो पर व्यग्य है

> 'कुछ लोग मूर्तियाँ बना कर फिर
> बेचेंगे क्रान्ति की (अथवा षडयन्त्र की)
> कुछ और लोग सारा समय
> कसमे खायेंगे लोकतन्त्र की।"
>
> × × × ×
>
> "एक आदमी दूसरे का और दूसरा तीसरे का / दहेज है /
> जिसकी वाणी मे आज तेज है / दस साल बाद
> वह इस तरह लौट आता है / जैसे किसी वेश्या के कोठे से /
> अपने को बुझा कर /"

कहीं कहीं तो व्यग्य को रचनात्मकता भी प्रदान की गई है। श्रीराम की कविताएँ इसका प्रमाण हैं। उन्होने सामान्य और प्रचलित शब्दो का सहारा लकर ही आज के निरतर सवेदनाशून्य और असाधारण रूप से व्यावहारिक व्यक्ति को व्यग्य का निशाना बनाया है। वर्तमान परिवेश मे जीते आदमी की सवेदनहीनता पर व्यग्य करते हुए उन्होने लिखा है 'मेरे पास दिल था लोग कहते थे तुम अभी बच्चे हो / मैंने दिल को मजबूत किया लोग कहने लगे तुम बिल्कुल कच्चे हो / मैंने दिल की जगह एक जूता टाँग दिया लोग चिल्ला उठे / अरे तुम कितने सच्चे हो" / दिल (सवेदनशीलता) नासमझी का खिताब देता है और जूता सवेदनाहीनता

को प्रतीकित करता हुआ आज के आदमी की स्थिति पर व्यग्य करता है। 'दिल' और 'जूता' जैसे शब्दो मे जो व्यग्यार्थ है, वह साठोत्तर कविता की भाषा की शक्ति है।

7. संघर्षशीलता

साठोत्तरी कविता मे जो परिवेश उभरा है वह पर्याप्त भयावह और तनाव पूर्ण है। परिवेश व्यापी यह तनाव और भयावहता व्यक्ति-व्यक्ति के सम्बधों की कृत्रिमता और परिवर्तित मान मूल्यो के कारण और दहशत भरी हो गई है। युवा कवि इन स्थितिगत भयावहताओं से भागना नही चाहता है, अपितु, सघर्ष-आत्म-सघर्ष की भूमि पर खड़ा होकर अन्तिम क्षण तक अपना अस्तित्व बनाये रखना चाहता है। अस्तित्ववादी दर्शन से प्रभावित होकर साठोत्तरी कविता या रचनाकार अपने अस्तित्व के लिये सघर्षरत है। इसी सघर्षशीलता के कारण आज का कवि एक बड़ी चट्टान को बार-बार गिरि शिखर पर ठेलकर पहुँचते रहने वाले यूनानी कथानायक सिसिफस की यत्रणा और निरन्तर सघर्ष का प्रतीक मानता है। मुक्तिबोध की 'अँधेरे मे' राजकमल की 'मुक्तिप्रसंग', रघुवीर सहाय की 'आत्महत्या' के विरुद्ध' श्रीकान्त वर्मा की 'समाधि लेख', दूधनाथ सिंह की 'सुरग से लौटते हुए और विश्वनाथ तिवारी की 'आखिरी लड़ाई' और 'जिजीविषा' कविताओं मे अस्तित्व के प्रमाणीकरण के लिये सघर्ष और आत्मसघर्ष की प्रभावी मुद्रा को देखा जा सकता है। सामाजिक परिवर्तन के लिये सघर्षरत श्यामविमल की ये पक्तियाँ देखिये जिनमे सघर्ष का स्वर साफ और तेज है

> "बाँस के झुकने को मैं क्षमा नहीं कर सकता
> मुझमें नहीं उगेगा बाँस
> कंकड़ से फोड़ूँगा दूर पड़े रस के गिलास
> काँटे से बेधूँगा फलों की त्वचा
> कीचड़ या तारकोल कों मुट्ठियों में फेंकूँगा
> नगे शरीर की अपराधी तोंदों व गालों पर"।

यह सघर्ष अकारण नही है। इसम आक्रोश व विद्रोह का मुहावरा भी आ मिला है। वस्तुत: यह सघर्षशीलता युवा कवियों को हर स्थिति मे जीने की शक्ति देती है तभी तो विश्वनाथ प्रसाद तिवारी लिख गये हैं "मैं जीना चाहता हूँ/ इस भयानक अँधेरे मे भी जीना चाहता हूँ आखिरी यातना तक / चलना तो है ही जब तक हमारे सामने रास्ता है/ या पैर सही सलामत हैं/ न रास्ते का विकल्प है/ न चलने का"/ जीने की यह सार्थकता कवि और कविता दोनो को सघर्ष के चौराहे पर लाकर' छोड़ देती है और साठोत्तरी कविता का नया चेहरा इन्ही मे चमकता-दमकता दिखाई देता है।

8. राजनीतिक संदर्भों से साक्षात्कार

साठोत्तरी कविता की एक प्रवृत्ति राजनैतिक सदर्भों के साक्षात्कार की है। इसमे राजनीति कविता के निकट और कविता राजनीति के निकट आ गई है। कुछ समीक्षको ने राजनीति को कविता का विषय बनाने मे आपत्ति की है। वर्तमान परिस्थियो मे जब देश और उसकी राजनीति प्रत्येक आम आदमी की जिन्दगी का हिस्सा हो गई है तो उसे कविता से बहिष्कृत कैसे किया जा सकता है? हाँ दल विशेष की पक्षधरता की आड मे लिखी गई कविता अवश्य ही आलोचना का शिकार होनी चाहिए। अत कविता और राजनीति का सम्बध काव्यात्मक और रचनात्मक स्तर पर होना चाहिए। साठोत्तरी कविता म यही स्थिति है। लगता है वर्तमान युग मे कवि राजनीतिक स्तर पर जुडने के लिए विवश है। जहाँ राजनैतिक स्तर पर आम आदमी के जीवन का फैसला होता हो और सरकारी तत्र का हर निर्णय जन–जीवन से जुडा हुआ हो वहाँ कविता मे राजनीतिक प्रवेश पर कैसे रोक लगाई जा सकती है? मुक्तिबोध, श्रीराम वर्मा, मत्स्येन्द्र शुक्ल, चन्द्रकात देवताले, रमेश गौड, धूमिल, रघुवीर सहाय, श्रीकान्त वर्मा और लीलाधर जगूडी आदि अनेक कवियो की कविताओ मे राजनैतिक सदर्भो और उनसे जुडे प्रश्नो को उठाया गया है। रघुवीर सहाय की 'आत्महत्या के विरुद्ध' कृति मे तो समूचा शासनतत्र नगा होकर सामने आया है। धूमिल की 'पटकथा' मे राजनैतिक सदर्भ हैं, देश का बिखरा हुआ चेहरा है और प्रजातत्र की थोथी उपलब्धियो पर व्यग्य है। जब कवि कहता है कि "सस्कृति, शाति, मनुष्यता, ये सारे शब्द थे, सुनहरे वादे थे, खुशफहम इरादे थे, सुन्दर थे, मौलिक थे" तो उसकी व्यग्य भावना सारे राजनैतिक सदर्भ की साकेतिक व्यजना कर देती है। ससद्, लोकतत्र, जनता मतदान, लाठीचार्ज, अश्रुगैस, कर्फ्यू आदि के सभी सदर्भ कविता मे आये हैं। इससे राजनैतिक परिदृश्य खुलासा होकर सामने आया है। रघुवीर सहाय की ये पक्तियाँ देखिये :

> "हर सकट भारत मे एक गाय है
> ठीक समय पर ठीक बहस कर नहीं सकती
> राजनीति
> बाद मे जहाँ कहीं से भी शुरू करो
> बीच सडक पर गोबर कर देता है विचार"

श्यामविमल की ये पक्तियाँ भी देखिये :

> 'मेरे इस देश मे हर बार
> वही होता है वही
> कि आदमी के कद का जो नेता है
> अपने पेट मे कद्दू आ बोता है।

वस्तुत साठोत्तरी कविता मे जो ठोस यथार्थ अभिव्यक्त हुआ है उसमे देश की राजनीति और उससे सम्बद्ध प्रश्नो की बखिया उधेडी गई है। किसी भी कविता को उठा लीजिए उसमे कही न कही राजनैतिक परिवेश से सीधा साक्षात्कार अवश्य मिल जायेगा। और तो और सर्वेश्वरदयाल की ही ये पक्तियाँ लीजिये :

"लोकतत्र को जूते की तरह
लाठी मे लटकाये
आगे जा रहे हैं सभी
सीना फुलाये।"

जरा इन्ही पक्तियो के साथ 'धूमिल' की ये पक्तियाँ भी पढ़िये . "दरअस्ल अपने यहाँ जनतत्र/ एक ऐसा तमाशा है/ जिसकी जान मदारी की भाषा है"/ राजनैतिक सदर्भों की दैनंदिनी बनकर आने वाली साठोत्तरी कविता मे लोकतत्र के प्रति अविश्वास और जनतात्रिक मूल्यो की अर्थहीनता को भी ईमानदार अभिव्यक्ति प्राप्त हुई है। स्वय राजकमल इस स्थिति को समझते थे और अनुभव करते थे। उन्होंने लिखा :

'आदमी को तोडती नहीं हैं लोकतात्रिक पद्धतियाँ केवल पेट के बल
उसे झुका देती हैं धीरे-धीरे अपाहिज
धीरे-धीरे नपुसक बना लेने के लिए उसे शिष्ट राजभक्त देश प्रेमी
नागरिक बना लेती हैं
आदमी को इस लोकतत्री ससार से अलग हो जाना चाहिए।"

9 निर्मम वास्तविकताओ की बेपर्द व्यंजना .

साठोत्तरी कविता वर्तमान परिवेश की विसगतियो, यत्रणाओ और विविध भयावहताओ की बेपर्द अभिव्यजना कर रही है। "जिन्दगी मे जो यत्रणा व्याप्त है, गहरा असतोष व निराशा है और जो अनिश्चय ग्रस्त मानस है उसकी सही व रचनात्मक स्तर पर व्यजना अनेक साठोत्तर कवियो ने पूरी ईमानदारी से की है। कैलाश वाजपेयी, केदारनाथ सिह, मलयज, धूमिल दूधनाथसिह नीलाभ, राजकमल, और श्याम विमल आदि अनेक कवियो की कविताएँ निर्मम वास्तविकताओ की व्यजना रचनात्मक स्तर पर करती हैं। पिछले दस वर्षों म मनुष्य ने क्या नहीं भोगा है ? मृत्यु से भी ज्यादा द श सहकर जिन्दा रहने जैसी बेमतलब ,सज्ञा का बोझ ढोया है। वह मरा भले ही न हो, किन्तु कितनी ही मौतें उसके अन्दर घटती रही हैं। जिन्दा रहने के उसके सभी लक्षण जैसे सत्रस्त स्थितियो ने छीन लिये हैं। इस विवश, अपाहिज और स्नायुघात से पीडित जिन्दगी के भोक्ता कवि के रूप मे कैलाश वाजपेयी को पढ़ा जा सकता है, 'धूमिल' को सामने रखा जा सकता और राजकमल के हवाले से निर्मम वास्तविकताओ से सीधा साक्षात्कार ...... है। साठोत्तरी कविता के प्राय सभी कवियो का ससार ऐसा है

ऊब, अजनबीयत, असतोष, छटपटाहट, स्नायुधान, दमघोट परिस्थितियो और जीवन मे आई रिक्तता व अनिश्चितता के साथ जिन्दगी के घावो से रिसते मवादो का हवाला प्रस्तुत करता है। जिन्दगी की विसगतियो को व्यक्त करता हुआ श्रीकान्त वर्मा का कवि यदि 'वक्त चला जाता है, वक्त चला गया है और हर जगह हाजिर था मैं, किन्तु दस्तखत कही नही' या 'मैं अनुभव कर रहा हूँ सब कुछ/ बस छू कर चला जाता है" तो लगता है वह जीवन के भीतरी हिस्से के दर्द को वाणी देते हुए परिवेश की जटिलता को बेपर्दगी के साथ अभिव्यक्त कर रहा है। इतना ही नहीं स्वप्न भग हो जाने के बाद, जीवन से विश्वास का रग उड जाने के बाद और मूल्य हीनता व अर्थहीनता की स्थितियो से गुजरने के बाद की अजीबोगरीब मनस्थिति मे कवि ने यह भी लिखा है 'बरस रहा है अधकार ''''''/जिज्ञासाहीन अधकार मे/ कीचड की शैय्या पर, स्वप्न देखती हुई/ सुखी है वसुधरा/ मनुष्य उगल रही है/ नगर फैंक रही है।"

साठ के बाद बुद्धिजीवियो की जो पीढ़ी सामने आई है उसे अपने आगे अधकार का अनत प्रसार दिखाई दे रहा है। एक ओर दायित्व से ऊबी हुई सरकार है, अपने स्वार्थों की कीचड म आकठ डूबे हुए राजनीतिज्ञ हैं, दूसरी ओर सफेदपोश और इज्जत व समाज के भीतर शिक्षा के प्रतीक प्रशासक हैं जो अपनी जेबे भरने मे व्यस्त हैं, तीसरी ओर शोषक वर्ग है जो अपनी तोद के घेरे मे अन्न और सोना इकट्ठा कर रहा है और इन सभी के साथ वह मरघिल्ला किसान है जो दिन रात हाथो को घिसता हुआ और रिश्वत देते-देते थक जाने के कारण धीरे-धीरे मर रहा है, मर सा गया है, किन्तु क्रान्ति के लिए तैयार नहीं है। दूधनाथसिंह की ये पक्तियाँ देखिय

> "जो हाथों से काम करते हैं/ वे गुलाम हैं अभी भी
> लगान भरते हैं; रिश्वत देते हैं/ और पाई भर जमीन के लिए खून करते हैं,
> मुकद्दमे लडते हैं/ जेल की रोटियाँ बेलते हैं/ नागरिकता सीखते हैं।
> और उनकी पत्नियाँ अधेरे की सीलन मे/ रोते हुए बच्चों को भरपेट पीटती हैं,
> फिर रो-रो कर प्यार जताती हैं/ कचरे मे सनी हुई;
> पूजा करती हैं और जीवित रहती हैं।"

परिवेश मे आया बिखराव 'टैरर', 'टेन्शन' और घिनौनी स्थितियाँ साठोत्तर युवा कवि के मानस को घेरे हुए हैं। उसे उन सारे हादसो और मुकामो से गुजरना पड रहा है जो उसे चारो ओर से खीच रहे हैं। यह खींचतान और आपाधापी कितनी पीडक और त्रासक है, इसका अनुमान उस घातक परिवेश के नजरिये से किया जा सकता है जिसे दूधनाथसिंह ने निर्मम वास्तविकताओ के रोजनामचे के रूप

में प्रस्तुत किया है

> 'इस सन्नाटे मे कैंसर मेनजाइटिस दल बाँधे खडे हैं
> सडकों पर खजर छुपाये भेडिये टहल रहे हैं ।"

या 'सुरंग से लौटते हुए' की ये पंक्तियाँ लीजिये

> "मै तुम्हें दिखाऊँगा, बलगम मे सने हुए गाँव
> पीव की फुहारों मे उबले हुए पाँव
> गले हुए हाथ, भरी हुई आँखें
> गर्भपतित मानव की किसलयी शाखें
> वेश्या व औरतो के बूढ़े सतीत्व
> इससे पृथ्वी पीडित है, निगोडी जीवित है ।"

'श्याम विमल' की कविताएँ भयावह मानव स्थिति की व्यजक कविताएँ हैं। 'दीमक की भाषा' सग्रह इसकी गवाही देता है जिसमे आदमी अर्थशून्यता की ओर बढती कविता का आखिरी 'पैराग्राफ' बनकर आया है । इस सग्रह मे आज के आदमी का परिवेश है । उसका सही हुलिया है । इतना ही क्यो उसकी धुँआ खाई जिल्द है, ताश की तरह फैंटे जाने वाला व्यक्तित्व है । कवि का आक्रोश व्यग्य के सिरहाने बैठा बैठा कितने ही सम्बधो की अर्थहीनता भी बतलाता है और उससे उत्पन्न बेमानी स्थितियो और निर्मम वास्तविकताओ के प्रति गाढी पहचान भी । इस सदर्भ मे निम्नाकित पक्तियो को देखिये जिनमे वर्तमान परिवेश मे रिक्तता अनुभव करते, समस्याओ और प्रश्नो से दबे आदमी की आकारहीनता, भीतर आक्रोश किन्तु कुल मिलाकर लाचार व्यक्ति की अन्तत फटी हुई और निरन्तर प्रयुक्त होने से बेल्ट के छेद की तरह चौडी और झीनी होती जिन्दगी जो नाम से गिरकर चीज हो गई है, का वास्तविक वर्णन काफी गहराई से हुआ है—

1. "आदमी कितना कागज हो रहा है / चुप / प्रश्नों पर पाँव धरता हुआ;
   मेरा आकार / निहायत छोटा पड़ रहा है
   गदे पैसे पर रेंगता हुआ जैसे कोई जुलूस
   जिस्म जिस्म होकर बिखर रहा है ।"
2. 'लाचार / अपनी जरूरतों पर कुर्सी ढो रहा हूँ नौकरी भर /
   मेरे नाखून जल्दी बढ़ जाते रहे हैं / और मैं उन्हें अपनी खुजली पर/
   इस्तेमाल करता रहा हूँ" ।
3. "जाता हूँ गुमो / सड़क से घर तक / यही रोज / इतना ही होना लाज़मी है /
   जानवर सा यहाँ / सब कुछ होना लाजिमी है /"

चारों ओर असगतियाँ है, युगीन जटिलताओं का दहशत भरा परिवेश है इन सबमें भग्न-पीडित कवि का दर्द जो युग के इतिहास भूगोल का

शब्दावली में देता है तो लगता है कि एक समाज अपनी रगें काटकर दिखा रहा है : "आह ! मेरी भाषा / मैं तेरा सुन्दर उपयोग किस तरह करूँ/वह फूलों की सेज और शाकाहारी देवता / कहाँ से लाऊँ ? / आह मेरी पत्नी / मेरे तेरे गर्भ में भविष्य का/ निरपराध आत्मघाती कैसे रखदूँ / आह मेरे छोटे भाई ! मैं तुम्हे रेशमी कमीज / कैसे सिलवा दूँ / आह मेरी कविता ! मैं तुझे पाठक / या श्रोता कहाँ से लादूँ / यह रस नही जहर है / आह मेरे लोगो ! मैं तुम्हें अमृत के घूँट कहाँ से पिला दूँ" / इसी क्रम में 'सव्यसाची' की ये पंक्तियाँ भी देखिये जिनमें आजादी के कर्णधारों के प्रदेय का प्रश्निल शैली में पर्दाफाश किया गया है .

> **"आखिर क्या दिया है तुमने आजादी के नाम पर / लूप और लाटरी / जनता को बूट से कुचलती पुलिस, भ्रष्ट अफसर / भूख आगजनी / रिश्वत, हत्या, लूट गिरहकटी / काले कानून, झूँठी अदालतें । बहुरूपिया शासन / अभाव, विवशता और गुलामी / तुमने हर आदमी को जानवर / और हर औरत को वेश्या / बना दिया है देशभक्ति का मतलब सिर्फ तिरंगा फहराना और / बंदे मातरम् दोहराना / ही तो नहीं होता" /**

10. अभिव्यंजना की ईमानदारी

साठोत्तरी कविता अनुभव की आँच से तपाकर लिखी गई कविता है । इसके कवि अपने अनुभूत की ईमानदार अभिव्यंजना के कायल हैं । यही कारण है कि इस कविता की भाषा रोजमर्रा की चालू भाषा है । उसमें साफगोई है, सपाटबयानी है, किन्तु इसका यह अर्थ मान लेना अनुचित होगा कि वह प्रेषणीयता और व्यंजकता के गुणों से भी विरहित है । भाषा की सादगी का अर्थ शब्दों के चुनाव की सादगी से है; उनके सयोजन से निर्मित वाक्यांशों या कविताशों में प्रेषणीयता भरपूर है । यों यह ठीक है कि इस काव्यधारा की भाषा अभिधात्मक अधिक है; लाक्षणिक कम किन्तु इस भाषा का मिजाज परिवेश के मिजाज से अभिन्न है । इस काव्य धारा के कवियों ने भाषा की 'क्राफ्टमैनशिप' को नगण्य माना है और चालू भाषा के मुहावरे में गहरा अर्थ भरने की सफल कोशिश की है । यह एक महत्तम उपलब्धि है जिसके तहत कविता और आदमी दोनों एक दूसरे की साँस की गंध महसूस कर सकते हैं । भाषा के इस प्रयोग से हुई ईमानदार अभिव्यक्तियाँ प्रभावित करती हैं और आम आदमी महसूस करता है कि वह खुद की कविता पढ रहा है या अपनी जिन्दगी की अभिव्यंजना को करीब से महसूस कर रहा है । प्रवृत्ति विवेचन में दिये गये अधिकाश उदाहरण मेरे इस मंतव्य की पुष्टि कर सकते हैं । आज की कविता जिस भाषा में लिखी जा रही है वह अनुभव की भाषा है जिसके पहले सफल प्रयोक्ता कबीर थे, दूसरे निराला, तीसरे अज्ञेय, मुक्तिबोध और सर्वेश्वर है तो चौथे सफल प्रयोक्ताओं में प्रतिनिधि साठोत्तर कवियों को लिया जा सकता है । यहाँ तो पूरी की पूरी पीढ़ी

ही अनुभव की भाषा लिख रही है जो न तो कृत्रिम है और न अकाव्यात्मक ही। कारण अनुभव की भाषा कभी भी कृत्रिम नही हो सकती है। आज का कवि जिस परिवेश, व्यवस्था और असतोष जनित स्थितियो के बीच जी रहा है वहाँ वह व्यवस्था को तोडने के साथ-साथ उस काव्य भाषा के ढाँचे को भी तोडना चाहता है जो वर्षों से आदमी की जुबान को बोभिल और कधो को इनथ बनाती रही है। इसी से आज के कवि की भाषा सपाट, खुरदरी और प्रहारक बन गई है। उसके शब्दो का मिजाज कोमल नही रह गया है। वे अपने रूप, आकार और स्वभाव मे पैने, छोटे और मारक हो गये हैं। चाहे 'आत्महत्या के विरुद्ध' की भाषा हो; चाहे 'मायादर्पण की, चाहे पटकथा, मोचीराम और ससद से सडक तक की भाषा हो, सभी मे सपाटबयानी, और अनुभव की आंच मे तपकर लिखी गई भाषा को पढा जा सकता है। बिना दुराव के, बिना सकोच के लिखी गई भाषा की अर्थवत्ता सब कही देखी जा सकती है •

1 "न कोई छोटा है/ न कोई बडा है/
मेरे लिए हर आदमी एक जोडी जूता है/ जो मेरे सामने/
मरम्मत के लिए खडा है/" [धूमिल]

2. "साला लाल फूलो वाला पेड/ जिसमे पत्तियाँ नहीं हैं /
मुझे प्रभावित करता है / मुझसे प्रभावित नहीं होता मुझे मालूम है/
बुर्जुआ है / प्रतिक्रियावादी है / साला है वह और सौ दफा है" /
[नरेश सक्सेना]

3 'मेरे इस देश मे / हर बार वही होता है / वही कि आदमी के कद
का जो नेता है / अपने पेट मे कछुआ बोता है" / [श्याम विमल]

4 मैं अनुभव कर रहा हूँ सब कुछ / बस छूकर चला जाता है" /
"हर जगह हाजिर था लेकिन दस्तखत कहीं नहीं" [श्रीकात वर्मा]

5 "अधजली लाशें नोचकर खाते रहना
श्रेयस्कर है जीवित पडोसियों को खाजाने से"
[राजकमल चौधरी]

स्पष्ट ही भाषा की इस सपाटबयानी और ईमानदार अभिव्यजना ने इन कवियो को एक ऐसे विन्दु पर ला खडा किया है जहाँ बिम्बो का मोह टूट गया है, प्रतीको का मूल्य कम हो गया है। जिस तरह समय की माँग ने कवि को सघर्ष, विद्रोह और अस्वीकार के लिए प्रेरित किया, उसी प्रकार अनुभव की आंच मे तपाकर और जिन्दगी के सीधे साक्षात्कार से प्रेरित होकर लिखी गई कविता ने उसे उकसाया नगी, सरल, बेलौस और जनभाषा के प्रयोग के लिये। आज कविता मे नूतन शब्द आते जा रहे हैं। वह विचार बोभिल होने से गद्याभास भी देती है; किन्तु वह अपने अभिव्यजित रूप में पूरी ईमानदार और सही है। यह ठीक है कि इस कविता मे कतिपय अभिव्यजना रूढियाँ भी विकसित हो गई है किन्तु वह और भी

ठीक है कि *युवा कविता ने समकालीन स्थितियों में टकराकर आदमी; जिन्दगी और* परिवेश से सीधा साक्षात्कार किया है। उसने बता दिया है कि आज आदमी, देश और उसकी व्यवस्था किस तरह अपने दिन गिन रही है। साठोत्तर कविता की भाषा में एक नयी शक्ति है। वह अभिधात्मक तो है ही, व्यंजनात्मक भी कम नहीं है। मामूली से रोजमर्रा के शब्द उसमें प्रतीक बने हैं और सीधी-सच्ची स्थितियाँ ही उसकी अलकृति है। सैर जो भी हो, यह सच है कि इस भाषा में आदमी को केन्द्र में रखकर लाया गया है। आदमी की इस उपस्थिति से भाषा का स्वरूप आत्मीय, व्यग्यपरक आक्रोशयुक्त, अस्वीकार-पुष्ट और तनावपूर्ण हो गया है। इन कवियों ने शब्द-शब्द की तह में प्रवेश किया है, उसकी आत्मा को टटोला है और यह साबित कर दिया है *कि चिकने और परिष्कृत शब्दों से एक भव्यता का अहसास तो हो सकता है;* पर उस यथार्थ परिवेश की भयावहता, त्रासदी और विडम्बनाओं के भूगोल को शब्द नहीं दिये जा सकते हैं जो हमारे आस-पास बिखरा पड़ा है।

समकलन

साठोत्तर कविता समकालीन जीवन का पूरा भूगोल प्रस्तुत करने वाली कविता है। उसमें साठोत्तर भारत का सही मानचित्र सही रेखाओं द्वारा प्रकट किया गया है। परिवेश का इतना सच्चा, निर्मम यथार्थ और साक्षात्कृत जीवन किसी दूसरी कविता में कहाँ है? वस्तुत ये कवि आज के परिवेश और प्रशासन में व्याप्त झूठी भाषा को सही शब्द दे रहे हैं। इन्होंने चौराहे पर खडे होकर झूठी शक्लें देखी हैं; नकली नकाब देखे हैं, बदलते दृश्य देखे हैं। दुनियाँ के नक्शे में अपनी, अपने देश की और अपने नक्शे में *दुनियाँ की बदलती स्थितियों को पढ़ा है, गरीबों की आह देखी* है, धनवानों के ठहाके देखे हैं, शासकों का दभ देखा है शासितों की विवशता पहचानी है, आदमी को कागज, चीज और मुहर बनते देखा और जाना है वह सब कि कैसे एक आदमी दूसरे आदमियों की गर्दनों पर पैर रखते हुए ऊँची कुर्सी पा जाता है? कैसे एक ईमानदार रात भर में बेईमान 'निकम्मा और अपराधी हो जाता है और कैसे पल भर में छद्मी ईमानदारी का प्रमाण पत्र पा जाता है? धूल, गर्द, गुबार और कीचड को फाँकते-नापते आदमी की जिन्दगी की समूची दैनदिनी साठोत्तर कविता के पृष्ठों पर अंकित हुई है। इस कविता में आदमी का पूरा चेहरा है; पूरी जिन्दगी है और वह सब है जो उसे यह शक्ल देरहा है। कुल मिलाकर यही कि साठोत्तर कविता मोहभग, आक्रोश, अस्वीकार, तनाव और विद्रोह की कविता है। उसका मुहावरा नया है, शैली बेपर्द है और इसके साथ ही उसमें जिजीविषा का रग गहरा है।